भारत सरकार

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

नौवीं रिपोर्ट

सामाजिक पूंजी

– एक सांझी नियति

अगस्त 2008

भूमिका

"एक सरकार अपनी प्रतिष्ठा का निर्माण शासितों की प्रत्यक्ष स्वैच्छिक एसोसिएशन के आधार पर करती है"

- महात्मा गांधी

"सरकारी नियंत्रण, धोखाधड़ी, सच्चाई को दबाने, काला बाजारी के तीव्रीकरण और कृत्रिम अभाव को उत्पन्न करता है। इन सभी के अतिरिक्त, यह लोगों को हतोत्साहित करता है और उन्हें पहल करने से वंचित करता है, यह स्व: सेवा की भावना को समाप्त करता है। "

- महात्मा गांधी

राबर्ट पुटनम ने, जो "सामाजिक पूंजी" शब्द के एक प्रवर्तक हैं, इसकी परिभाषा निम्न प्रकार की है:

"जब कभी भौतिक पूंजी का संदर्भ वस्तुओं से और मानव पूंजी का संदर्भ व्यक्तियों की विशेषताओं से है, सामाजिक पूंजी को संदर्भ व्यक्तियों के बीच संबंधों से है - सामाजिक नेटवर्क और पारस्परिकता व भरोसे के मानदण्ड जो उनसे उत्पन्न होते हैं। उस दृष्टि से सामाजिक पूंजी, उससे निकटत: समबद्ध है जिसे कु व्यक्तियों द्वारा "सिविक सदगुण" कहा जाता है। अन्तर इतना है कि "सामाजिक पूंजी" इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करती है कि पारस्परिक सामाजिक संबंधों के एक नेटवर्क में पिरोए जाने पर सिविक सदगुण सर्वाधिक सशक्त होते हैं। अनेक गुणों से सम्पन्न सोसायटी, किन्तु व्यक्तियों से अलग-थलग अनिवार्यत: सामाजिक पूंजी से समृद्ध नहीं है। "

- पुटनम 2000

"सामाजिक पूंजी परम्पराओं का मात्र जोड़ नहीं है जो सोसायटी को आधार प्रदान करती हैं - यह वह सरेस है जो उन्हें इक्ट्ठा रखती है।"

- (विश्व बैंक, 1999)

स्वैच्छिक कार्य और परोपकारिता तथा साथ ही अपने सदस्यों के सामाजिक और आर्थिक कल्याण के लिए गठित व्यावसायिक निकायों और सहकारिताओं दोनों ही क्षेत्रों में भारत का एक समृद्ध इतिहास और परम्परा है। यद्यपि उपनिवेशी शासन के दौरान इन पारम्परिक संस्थानों में ह्रास हुआ है किन्तु आजादी की लड़ाई के दौरान गांधी जी के दृढ़ प्रभाव के अन्तर्गत इन निकायों में पुन: रुचि उत्पन्न हुई जिन्होंने पश्चिम में प्रमुख अर्थशास्त्रियों द्वारा एक प्राचल को अपनाए जाने से पहले स्वैच्छिक कार्यवाही और लघु सरकार का आजीवन समर्थन किया।

भारतीय संदर्भ में, जिन प्रमुख संस्थानों के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सामाजिक पूंजी के विकास में योगदान दिया, इनमें आवासीय कल्याण एसोसिएशन स्वयंसेवी समूह और भिन्न-भिन्न किस्म की सहकारिताओं जैसी आधार स्तरीय समुदाय आधारित संस्थाओं से लेकर स्वैच्छिक संगठन, धर्मादा सोसायटियां तथा न्यास और साथ ही मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया, बार काउन्सिल आदि जैसे स्व: विनियामक व्यावसायिक संगठन सम्मिलित हैं। जहाँ तक कारपोरेट क्षेत्रक का संबंध है, सामाजिक मूल्यों के साथ व्यवसाय प्रचालनों का तालमेल, जो कारपोरेट सामाजिक दायित्व (सी एस आर) का निचोड़ है, आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास में योगदान करने की इसकी समर्थता एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। इसके अन्तर्गत कम्पनी की व्यवसाय नीतियों और कार्यवाहियों में पणधारियों के हित को ध्यान में रखा जाता है। सोसायटी, पर्यावरण और व्यवसाय के लिए कारपोरेट का योगदान, बुद्धिमत्तापूर्ण स्व: हित द्वारा मार्गदर्शित होने पर, सभी के जीवन की कोटि में सुधार करता है। सी एस आर के अन्तर्गत, कम्पनी की सामाजिक पर्यावरणीय और वित्तीय सफलता पर - तथाकथित तिहरी निचली रेखा - व्यवसाय सफलता प्राप्त करने के साथ-साथ सामाजिक विकास प्राप्त करने के उद्देश्य से, बल दिया जाता है।

इन बातों से देखते हुए कि करोड़ों भारतीय गरीबी रेखा से नीचे रह रहे हैं - स्तम्भ के सबसे नीचे-"ऐसी कम्पनियों पर बल देने की हाल ही की यू एन डी पी पहल से लगभग 4 बिलियन लोगों को सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं, जो एक डालर प्रतिदिन पर गुजारा करते हैं तथा इस प्रक्रिया में उनके खुद के लिए नए व्यवसाय अवसर पैदा हो सकते हैं, गरीबों के विरूद्ध भारत के संघर्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण है।" "सभी के लिए मूल्यों का सृजन-गरीबों के साथ व्यवसाय करने की कार्यनीतियां" नामक रिपोर्ट में भी कम्पनियों के लिए अपनी पारम्परिक व्यवसाय प्रथाओं से परे अपना विस्तार करने के लिए और संवृद्धि तथा सम्पदा सृजन में भागीदारों के रूप में विश्व के गरीबों को शामिल करने के लिए कार्यनीतियां और साधन सुझाए गए हैं।

रिपोर्ट के अन्त में कहा गया है कि "गरीबों के पास खपत, उत्पादन, नूतनता और उद्यमी कार्यकलाप की बडी अनखोजी क्षमता है" तथा इससे भारत जैसे देशों के लिए महत्वपूर्ण अन्तदृष्टि प्राप्त होती है, जहां लगभग* 25 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे है तथा सरकार समावेशी वृद्धि प्राप्त करने के लिए कठोर प्रयास कर रही है ताकि उन्हें मुख्य धारा के अन्तर्गत लाया जा सके। रिपोर्ट पाँच कार्यनीतियों का उल्लेख किया गया है जिनका निजी व्यवसाय ने, गरीबों के साथ व्यवसाय करते समय बाधाओं पर काबू पाने के लिए सफलतापूर्वक अपनाया है। इनमें सम्मिलित हैं : उत्पादों और सेवाओं को गरीबों की जरूरतों के अनुकूल बनाना; बाजार बाधाओं को दूर करने के लिए अवस्थापना और प्रशिक्षण में निवेश करना; गरीबों की शक्ति का लाभ उठाना; इसी प्रकार के व्यवसायों और गैर-लाभ वाले संगठनों के साथ काम करना और नीति संवादों का आयोजन करना। इन कार्य नीतियों के अन्तर्गत गरीबों की अन्तर्निहित कार्यनीतियों का दोहन करने की जरूरत, उनकी उद्यमशीलता और साथ ही उनकी पारम्परिक निपुणताओं और सामाजिक नेटवर्क को स्वीकारा गया है जिससे कि उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने के लिए मदद मिल सके। एक प्रकार से, इस नीति का

* भारत सरकार द्वारा वर्ष 2004-05 के संबंध में जारी गरीबी के अनुमानों के अनुसार यू आर पी (यूनिफार्म रिकाल पीरियड) के अनुसार 27.5 प्रतिशत और एम आर पी (मिक्स्ड रिकाल पीरियड) आधार पर 21.5 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे है।

उद्देश्य भारतीय समाज में, विशेष रूप से इन अल्पसुविधा-प्राप्त समूहों के बीच उपलब्ध सामाजिक पूंजी का लाभ उठाना है ताकि उन्हें गरीबी से उठाया जा सके।

कारपोरेट क्षेत्रक में, सांझी नियति की अवधारणा का, सभी पणधारियों को एक साथ लाने और कार्यनीति संरचना-प्रणालियों के पारम्परिक प्रबंधन दर्शन से, प्रयोजन-प्रक्रिया-जन की ओर बढने के लिए अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है। वस्तुत: "सांझी नियति" की अवधारणा का पूरे समाज में सामाजिक पूंजी की एक लहर पैदा करने के लिए समावेश किया जाना चाहिए जिससे भारत को एक आर्थिक पावर हाउस में बदला जा सके बल्कि एक एकीकृत, शान्तिपूर्ण, देखभाल व कु देने वाली सोसायटी में भी बदला जा सके।

भारत की सामाजिक पूंजी का गठन करने वाले विविध स्तर राष्ट्र की भौतिक सम्पदा और प्रगति पर महत्व देते हैं तथा एक व्यापक रूप से अधिक वास्तविक दृष्टि से लोगों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण में योग देते हैं। शैक्षिक अनुसंधान में भी कु साक्ष्य उपलब्ध है जिनसे पता चलता है कि भारत के अन्दर, सामाजिक पूंजी की राज्य की सम्पदा गरीबी को कम करने और विकास कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने की उस राज्य की समर्थता को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक पूंजी पर इस रिपोर्ट में आयोग ने संस्थानों के विकास और वृद्धि का पता लगाया है जो भारत में सामाजिक पूंजी का आधार बनाते हैं; विशेष रूप से सोसायटियों, न्यासों, धर्मादा संस्थानों वक्फों और धर्मस्व निधियों, आधार स्तरीय स्वैच्छिक संगठनों के संदर्भ में, जैसे कि स्वयंसेवी समूह, स्व: विनियामक प्राधिकरण और सहकारिताएं, आयोग ने वर्तमान कानूनी महत्व है और उनके संस्थागत डिजाइनों, सरकार व अन्य पणधारियों के साथ उनकी अन्योन्यक्रिया ; उनकी अपनी-अपनी भूमिकाओं और कार्यों, उनकी शक्तियों और कमजोरियों तथा सुधार एजेण्डे के संदर्भ में इन संस्थानों की जाँच की जो इन संस्थानों के संबंध में तैयार किया जाना चाहिए। आयोग द्वारा की गई सिफारिशों में, इन संस्थानों में आजादी, एकीकरण, पारदर्शिता, विश्वसनीयता और गतिशीलता लाने के लिए, कानूनी संरचना और साथ ही प्रशासनिक ढांचे और सरकारी नीतियों में अपेक्षित परिवर्तनों का भी उल्लेख किया गया है।

M. Veerappa Moily

नई दिल्ली
8.8.2008

(एम. वीरप्पा मोइली)
अध्यक्ष

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 31 **अगस्त**, 2005

सं. के-11022/9/2004-आर सी - राष्ट्रपति, लोक प्रशासन पद्धति की पुनर्संरचना के संबंध में एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करने के लिए एक जाँच आयोग, जिसे द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ए.आर.सी) कहा जाएगा, सहर्ष गठित करते हैं।

2. आयोग में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :

(i) श्री वीरप्पा मोइली - अध्यक्ष
(ii) श्री वी. रामचन्द्रन - सदस्य
(iii) डा. ए.पी. मुखर्जी - सदस्य
(iv) डा. ए.एच. कालरो - सदस्य
(v) डा. जयप्रकाश नारायण - सदस्य *
(vi) श्रीमती विनीता राय - सदस्य-सचिव

3. आयोग, सरकार के सभी स्तरों पर, देश के लिए एक सक्रिय, प्रतिक्रियाशील, जवाबदेह, संधारणीय और कुशल प्रशासन प्राप्त करने के संबंध में उपायों का सुझाव देगा। अन्य बातों के साथ-साथ आयोग निम्नलिखित पर विचार करेगा:

(i) भारत सरकार का संगठनात्मक ढांचा
(ii) शासन में नैतिकता
(iii) कार्मिक प्रशासन की पुनर्संरचना
(iv) वित्तीय प्रबंधन प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण
(v) राज्य स्तर पर प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
(vi) प्रभावी जिला प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
(vii) स्थानीय स्व:शासन/पंचायती राज संस्थान
(viii) सामाजिक पूँजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सरकारी सेवा प्रदान करना
(ix) नागरिक-केन्द्रिक प्रशासन
(x) ई-अधिशासन प्रोत्साहित करना
(xi) संघीय राजतंत्र के मुद्दे
(xii) संकट प्रबंन्धन
(xiii) सार्वजनिक व्यवस्था

प्रत्येक शीर्ष के अन्तर्गत जिन मुद्दों की जाँच की जाएगी उनमें से कुेक का उल्लेख विचारार्थ विषयों में किया गया है जो इस संकल्प की अनुसूची के रूप में संलग्न हैं।

4. आयोग, रक्षा, रेलवे, विदेश कार्य, सुरक्षा और आसूचना के प्रशासन की और साथ ही केन्द्र-राज्य संबंधों, न्यायिक सुधारों आदि जैसे विषयों को भी अपनी विस्तृत जाँच से अलग रख सकता है, जिनकी पहले ही अन्य निकायों द्वारा जाँच की जा रही है। तथापि, आयोग, सरकार अथवा इसकी किसी सेवा एजेन्सी के तंत्र के पुनर्गठन की सिफारिशें करते समय, इन क्षेत्रकों की समस्याओ को ध्यान में रखने में स्वतंत्र होगा।

5. आयोग, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करने की जरूरत पर समुचित रूप से ध्यान देगा।

6. आयोग, अपनी स्वयं की प्रक्रियाएं तय करेगा (राज्य सरकारों के साथ परामर्श सहित, जो आयोग द्वारा उपयुक्त समझी जाएं) तथा अपनी सहायतार्थ समितियाँ, परामर्शदाता/सलाहकार नियुक्त कर सकता है। आयोग, इस विषय पर उपलब्ध विद्यमान सामग्री और रिपोर्टों को ध्यान में रख सकता है और सभी मुद्दों पर प्रारंभ से विचार करने के प्रयास की बजाए, उन्हीं पर अपनी राय आधारित कर सकता है।

7. भारत सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग आयोग को ऐसी जानकारी और दस्तावेज तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराएंगे जो आयोग द्वारा अपेक्षित हों। भारत सरकार को भरोसा है कि राज्य सरकारें व सभी अन्य संबंधित लोग/संगठन आयोग को अपना पूर्ण सहयोग और सहायता प्रदान करेंगे।

8. आयोग, अपनी रिपोर्ट/रिपोर्टें अपने गठन के एक वर्ष के अन्दर कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार को प्रस्तुत करेगा।

ह/-
(पी.आई. सुवराथन)
अपर सचिव, भारत सरकार

---

* डा. जयप्रकाश नारायण, सदस्य ने 1 सितम्बर, 2007 से त्याग पत्र दे दिया (संकल्प सं. के.11022/26/2007-एआर, दिनांक 17.8.2007)

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 24 जुलाई, 2006

सं. के-11022/9/2004-आरसी (खण्ड-II) - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि एक वर्ष के लिए 31.8.2007 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(राहुल सरीन)
अपर सचिव, भारत सरकार

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 17 जुलाई, 2007

सं. के-11022/26/2007-ए आर - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि सात महीने के लिए 31.3.2008 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(शशि कान्त शर्मा)
अपर सचिव, भारत सरकार

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 14 फरवरी, 2008

सं. के-11022/26/2007-ए आर - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि : महीने के लिए 30.9.2008 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(ध्रुव विजय सिंह)
अपर सचिव, भारत सरकार

गठन

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

1. श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष
2. श्री वी. रामचन्द्रन, सदस्य
3. डा ए.पी. मुखर्जी, सदस्य
4. डा. ए.एच. कार्लो, सदस्य
5. श्रीमती विनीता राय, सदस्य-सचिव

आयोग के अधिकारीगण

1. श्री ए.बी. प्रसाद, संयुक्त सचिव
2. श्री पी.एस. खरोला, संयुक्त सचिव
3. श्री आर.के. सिंह, अध्यक्ष के निजी सचिव
4. श्रीमती रूचिका चौधरी गोविल, निदेशक *
5. श्री संजीव कुमार, निदेशक
6. श्री शाही संजय कुमार, उप सचिव

---

* निदेशक के पद को अस्थाई तौर पर 4.2.2008 से 8.10.2008 तक की अवधि के लिए कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया था।

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
अध्याय 1	**प्रस्तावना**	1
अध्याय 2	**विकास और संवृद्धि**	9
	2.2 सामाजिक कार्रवाई समूह और स्वंयसेवी अभियान	9
	2.3 कारपोरेट फाउन्डेशन्स	10
	2.4 सामाजिक - राजनीतिक आन्दोलन और संविधानवाद तथा साम्यता का विकास	10
	2.5 सहकारिताएं	11
	2.6 विद्यमान कानून	12
	2.7 सामाजिक पूंजी संगठन और भारत का संविधान	13
	2.8 सरकारी नीति	13
	2.9 एक प्रमुख आर्थिक बल के रूप में सिविल सोसायटी	15
	2.10 स्वैच्छि क्षेत्रक -इसका वर्गीकरण	16
	2.11 अन्य देशों में सामाजिक पूंजी/सिविल सोसायटी संस्थानों की विधिक स्थिति	17
अध्याय 3	**सोसायटियों न्यास/धर्मादा संस्थान/वक्फ और धर्मादा**	19
	3.1 कानूनी और संस्थागत संरचना	19
	3.2 तृतीय क्षेत्रक का राजस्व	48
	3.3 धर्मादा संगठन और कर कानून	55
	3.4 विदेशी अंशदान का विनियमन	62
अध्याय 4	**स्थानीय स्तर पर तृतीय क्षेत्रक संगठन – स्वयं–सेवी समूह**	76
	4.1 सामान्य	76
	4.2 वित्तीय समावेशन - देश में वर्तमान स्थिति	76
	4.3 भारत में एस एच जी अभियान का विकास	81
	4.4 अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव	98

	4.5	ग्रामीण जीवन पर प्रभाव	101
	4.6	एस एच जी अभियान के मुद्दे	104
अध्याय 5	**स्व: विनियामक प्राधिकरण**		129
	5.1	प्रस्तावना	129
	5.2	व्यावसायिक शिक्षा को स्व:विनियामक प्राधिकरणों से अलग करना	131
	5.3	व्यावसायिक उन्नयन	137
	5.4	नैतिक शिक्षा और प्रशिक्षण	138
	5.5	व्यवसाय में नामांकन	139
	5.6	पंजीकरण का नवीकरण/पुनर्वैधकरण	141
	5.7	अनुशासनात्मक प्रणाली	141
	5.8	संरचना	144
	5.9	जवाबदेही और संसदीय निगरानी	149
अध्याय 6	**सहकारिताएं**		151
	6.1	प्रस्तावना	151
	6.2	भारत में सहकारिताओं का इतिहास	151
	6.3	विद्यमान कमजोरियां	154
	6.4	संवैधानिक संदर्भ	157
	6.5	विधायी रूपरेखा	162
	6.6	उत्पादक कम्पनियां	168
	6.7	सहकारी ऋण और बैंकिंग संस्थान	174
अध्याय 7	**एक एकीकृत सामाजिक नीति की दिशा में**		182
	निष्कर्ष		186
	सिफारिशों का सारांश		188

तालिकाओं की सूची

तालिका सं. शीर्षक

3.1	न्यास, सोसायटी के बीच तुलना और कम्पनी अधिनियम की धारा 25	30
3.2	संगठनों द्वारा प्राप्त विदेशी अंशदान का वर्ष वार विवरण (2001-05)	72

4.1	औपचारिक ाोतों से ऋण प्राप्त करने वाले कृषक परिवारों (एच एच) की लाख संख्या	78
4.2	गैर-परम्परागत किसान परिवारों का अनुपात (राज्यवार)	79
4.3	ऋणग्रस्त किसान परिवारों का अनुपात	80
4.4	एस एच जी-बैंक संयोजन कार्यक्रम-31.3.2007 को भौतिक और वित्तीय प्रगति का क्षेत्रीय प्रसार	82
4.5	वित्त पोषित एस एच जी का वर्षवार विवरण	84
4.6	भारत में एस एच जी-बैंक संयोजन कार्यक्रम की प्रवृत्तियां तथा प्रगति	86
4.7	आर एम के निष्पादन-एक सिंहावलोकन	87
4.8	"सिडबी" द्वारा लघु ऋण के अन्तर्गत सहायता	90
4.9	केरल में एन एच जी और बचत व ऋण की स्थिति रिपोर्ट	95
4.10	केरल में नाबार्ड के संयोजन बैंकिंग कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण	96
4.11	एस एच जी अभियान का देश के ऋण अभाव वाले क्षेत्रों तक विस्तार करना	106
4.12	जन्म और मृत्यु दरों पर आधारित उत्प्रवास के अनुमान और आबादी में कुल वृद्धि	109
4.13	दिल्ली में प्रवासियों की संरचना (2006-07)	110
4.14	एस एच जी के लिए उपलब्ध कराए गए ऋण की मात्रा	112
5.1	1 अप्रैल 2006 से 31 मार्च 2007 तक (बार काउन्सिल आफ इण्डिया) आयोजित अनुशासन समिति की बैठकें, निपटाए गए मामले तथा आदेशों की प्रकृति	142
5.2	विनियामक प्राधिकरणें की प्रणाली और संरचना	145

चित्रों की सूची

चित्र सं.	शीर्षक	
4.1	माडल I : एस एच पी आई की सक्रिय सहायता से बैंक-एस एच जी संयोजन।	111
4.2	माडल II : बैंक -एस एच जी प्रत्यक्ष संयोजन।	113
4.3	माडल III : बैंक- एस एच पी आई-एस एच जी संयोजन	114
4.4	माडल IV : बैंक-संघ-एस एच जी संयोजन	114

बाक्सों की सूची

बाक्स सं.	शीर्षक	
3.1	सी एस आर की परिभाषा	50
4.1	"सेवा" के ग्यारह प्रशन	81
4.2	देश में स्वयंसेवी समूह अभियान की कु विशेषताएं (वर्ष 2005-06)	85
4.3	आन्ध्र प्रदेश में एस एच जी - बैंक संयोजन	91
4.4	एस एच जी और महिलाओं का सशक्तीकरण	102
4.5	एस एच पी आई की भूमिका	112
4.6	ब्याज की दर तथा एम एफ आई की वसूली प्रथाएं	121
5.1	यू एस ए और यू के में व्यावसायिक पुनर्वैधकरण	140

संलग्नकों की सूची

संलग्नक I	(1)	श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष, प्र.सु.आ. का सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा, सेवा प्रदान करने पर राष्ट्रीय चर्चा में भाषण।	201
संलग्नक I	(2)	सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा प्रदान करने पर राष्ट्रीय चर्चा में प्रतिभागियों की सूची।	207
संलग्नक I	(3)	सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा प्रदान करने पर राष्ट्रीय चर्चा में कार्य समूहों द्वारा की गई सिफारिशें	210
संलग्नक I	(4)	सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा प्रदान करने पर प्रश्नावली	228
संलग्नक III	(1)	सोसायटियों, न्यासों, वक्फों व अन्य धर्मादाओं के लिए कानून	241
संलग्नक III	(2)	सोसायटियों के संबंध में विभिन्न राज्य विधानों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण	248

संकेताक्षरों की सूची

संकेताक्षर	पूर्ण फोर्म
ए डी एस	क्षेत्र विकास सोसायटी
ए आई सी टी ई	अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद
ए पी एल	गरीबी रेखा से ऊपर
ए आर सी	प्रशासनिक सुधार आयोग
ए एस एस ई एफ ए	एसोसिएशन आफ सर्व सेवा फार्म्स
ए एस एस ओ सी एच ए एम	एसोसिएटिड चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री इन इण्डिया
बी सी आई	बार काउन्सिल आफ इण्डिया
बी पी एल	गरीबी रेखा से नीचे
बी आर आई	बैंक रकायत इण्डोनेशिया
सी ए	चार्टर्ड लेखाकार
सी ए एफ	चेरीटीज एड फाउन्डेशन
सी ए पी ए आर टी	काउन्सिल फार एडवांसमेंट आफ पीपिल्स एक्शन एण्ड रूरल टेक्नालोजी
सी बी ओ	समुदाय-आधारित संगठन
सी डी एस	सामुदायिक विकास सोसायटी
सी एफ	कोहेसन फाउन्डेशन
सी ओ ए	दि काउन्सिल आफ आर्किटेक्चर
सी पी सी	सिविल प्रक्रिया संहिता
सी पी ई	सतत व्यावसायिक शिक्षा
सी आर आई एस आई एल	क्रेडिट रेटिंग इन्फोर्मेशन सर्विसिज आफ इण्डिया लि.
सी एस आर	कारपोरेट सोशल रेस्पोन्सिबिलिटी
सी एस डब्ल्यु बी	केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड
डी ए एन आई डी ए	डेनिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी
डी सी सी बी	जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक
डी एफ आई डी	अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग (यू के)

डी आर डी ए	जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी
ई सी एस	इलैक्ट्रानिक मंजूरी सेवाएं
एफ सी आर ए	विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम
एफ आई सी सी आई	फेडरेशन आफ इण्डियन चेम्बर्स आफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्री
एफ एम एस एफ	वित्तीय प्रबंधन सेवा फाउन्डेशन
एफ डब्ल्यु डब्ल्यु बी	फ्रेण्ड्स आफ वीमेन्स वर्ल्ड बैंकिंग
जी एम सी	जनरल मेडिकल काउन्सिल (यू.के)
जी ओ आई	भारत सरकार
जी टी जेड	ड्युश्चे गेसेलस्काफ्ट फर टेक्नीशे जुसामेनारबी
एच डी एफ सी	आवास विकास वित्त निगम
एच यु डी सी ओ	आवासन और शहरी विकास निगम
आइ सी ए आई	इन्स्टि्यूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स आफ इण्डिया
आई सी एस आई	इन्स्टिट्यूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स आफ इण्डिया
आई सी डब्ल्यु ए आई	इन्स्टिट्यूट आफ कास्ट एण्ड वर्क्स एकाउन्टेन्ट्स आफ इण्डिया
आई एफ ए डी	इन्टरनेशनल फन्ड फार एग्रीकल्चरल डवलपमेंट
आई आर ए एच ई	इन्डीपेन्डेंट रेगुलेटरी आथोरिटी फार हायर एज्युकेशन
आई आर एम ए	इन्स्टिट्यूट आफ रूरल मेनेजमेंट, आनंद
आई टी	सूचना प्रौद्योगिकी
आई टी सी	इण्डिया टूबेको कम्पनी
जे सी एस	जन चेतना संस्थान
के वी आई सी	खादी और ग्रामोद्योग आयोग
एल पी जी	लर्निंग गारंटी प्रोग्राम
एम ए एल ए आर	महालिर एसोसिएशन फार लिटूसी, अवेयरनैस एण्ड राइट्स
एम सी आई	मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया
एम एफ डी ई एफ	माइक्रो फाइनेंस डवलपमेंट एण्ड इक्विटी फंड
एम एफ आई	लघु वित्त संस्थान

एम ओ ए	संस्था ज्ञापन-पत्र
एम ओ यू	सहमति ज्ञापन-पत्र
एन ए बी ए आर डी	राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक
एन ए सी	राष्ट्रीय सलाहकार परिषद
एन बी एफ सी	नान-बैंकिंग वित्त कम्पनी
एन बी जे के	नवभारत जाग्रति केन्द्र
एन बी टी ए	नेशनल बोर्ड आफ ट्रायल एडवोकेसी (यू एस ए)
एन जी ओ	गैर-सरकारी संगठन
एन एच जी	निकटवर्ती समूह
एन आई पी सी सी डी	राष्ट्रीय सार्वजनिक सहयोग और बाल विकास संस्थान
एन एम एफ एस पी	राष्ट्रीय लघु वित्त सहायता कार्यक्रम
एन ओ आर ए डी	नार्वेयाई विकास सहयोग एजेन्सी
एन पी ए	गैर-निष्पादक परिसम्पतियां
एन पी ओ	गैर-लाभ संगठन
एन आर ई जी एस	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम
एन एस एस ओ	राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन
पी ए सी एस	प्राथमिक कृषि ऋण सोसायटियां
पी आर ए डी ए एन	प्रोफेशनल असिस्टेंस फार डवलपमेंट एक्शन
पी आर एफ	पोर्टफोलिओ रिस्क फन्ड
पी आर आई ए	पार्टिसिपेटरी रीसर्च इन इण्डिया
पी टी आर	पब्लिक ट्रस्ट्स रजिस्टर
आर एम के	राष्ट्रीय महिला कोष
आर आर बी	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
आर टी जी एस	रीयल टाइम ग्रास सेटलमेंट सिस्टम
आर टी आई	सूचना का अधिकार
एस सी बी	राज्य सहकारी बैंक

एस सी	अनुसूचित जातियां
एस ई आर पी	सोसायटी फार इलिमिनेशन आफ रूरल पावर्टी
एस ई डब्ल्युए	सेल्फ-एम्प्लायड वीमेन्स एसोसिएशन
एस एफ एम सी	"सिडबी" फाउन्डेशन फार माइक्रो क्रेडिट
एस जी एस वाई	स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना
एस एच जी	स्वयं-सेवी समूह
एस एच पी आई	स्वयं सेवी प्रोन्नयन संस्थान
एस आई डी ए	स्वीडिश इन्टरनेशनल डवलपमेंट कारपोरेशन एजेन्सी
एस आई डी बी आई	भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक
एस के एस	स्वंय कृषि संगम
एस एम ई	लघु और मझौले उद्योग
एस आर एफ एस	संघमित्रा ग्रामीण वित्त सेवांए
एस टी सी सी एस	अल्पावधि ग्रामीण सहकारी ऋण प्रणाली
एस टी	अनुसूचित जनजातियां
एस यू डी ए	राज्य शहरी विकास एजेन्सी
टी ए एन डब्ल्यु ए	तमिलनाडु महिला कृषि कार्यक्रम
टी एन डब्ल्यु डी पी	तमिलनाडु महिला विकास परियोजना
टी एस ओ	तृतिय क्षेत्रक संगठन
यू.के	यूनाइटिड किंगडम
यू.एस.ए	संयुक्त राज्य अमेरिका
वी ओ	स्वैच्छि संगठन
डब्ल्यु टी ओ	विश्व व्यापार संगठन

1

प्रस्तावना

1.1 सामूहिक प्रयास और सहकारी कार्य सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से मनुष्य के व्यवहार का एक भाग रहे हैं । ऐसे सामूहिक कार्य से धीरे-धीरे छोटी बस्तियों, समुदायों, गावों और उसके बाद बड़े शहरों और महानगरों का निर्माण हुआ । उनके जरिए जटिल सामाजिक समूहों और शासन संगठनों का सृजन हुआ। समय पा कर, सरकार और समाज बहुत बड़े और औपचारिक हो गए तथा कुछ हद तक आम आदमी से दूर हो गए । इससे मुद्दों के हल के लिए पारस्परिक नेटवर्किंग और परस्पर कार्यवाही की जरूरत पैदा हुई।

1.2 "सामाजिक पूंजी" शब्द का उपयोग पहली बार 1916 में विर्जीनिया के ग्रामीण स्कूल के राजकीय अधीक्षक, आई. जे. हेनीफैन द्वारा किया गया । उन्होंने इसका इस्तेमाल स्कूलों के सफलतापूर्ण संचालन में समुदाय के शामिल होने के सन्दर्भ में किया[1] । एक संकल्पना के रूप में, इसका प्रवेश समाज विज्ञान साहित्य में 1980 के दशक में हुआ । शीघ्र ही इसने आर्थिक अर्थ धारण कर लिया और विकास के सिद्धांत में उत्पादन के घटक के रूप में स्वीकार कर लिया गया । यह उन संस्थाओं, सम्बन्धों और प्रतिमानों का उल्लेख करता है, जो किसी समाज की अन्तर्क्रिया की गुणवत्ता और मात्रा का निर्माण करते हैं । इसमें वह विश्वास, आपसी समझ और संझे मूल्य और व्यवहार शामिल हैं, जो किसी समुदाय के सदस्यों को आपस में जोड़ते हैं और सहकारी कार्य को बनाते हैं । बुनियादी आमुख यह है कि ऐसी पारस्परिक क्रिया लोंगों को समुदायों का निमार्ण करने, उन्हें एक-दूसरे के साथ प्रतिबद्ध करने और सामाजिक ताने-बाने को बुनने में समर्थ बनाती है। एक दूसरे से सम्बन्धित होने की भावना और सामाजिक नेटवर्किंग का ठोस अनुभव (और उससे उत्पन्न होने वाला विश्वास और सहिष्णुता का सम्बन्ध) लोगों को बहुत बड़ा लाभ पहुंचा सकता है ।

सामाजिक पूंजी अब विकास के सिद्धांत का एक आवश्यक तत्व स्वीकार की जा चुकी है । बहुत से मामलों में, यह आर्थिक नीतियों की विफलता का तर्कपूर्ण स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है । यह धारणा कि उपयुक्त संस्थाओं द्वारा समर्थित मेक्रो-आर्थिक नीतियां अर्थव्यवस्था को अवश्यमेव रूपान्तरित कर देंगी, प्राय: वास्तविक रुप से कार्य नहीं करती । नीतियां और संस्थाएं एक ऐसी समष्टि के रुप में कार्य करती हैं, जो समाजवैज्ञानिक प्राचलों द्वारा बहुत अधिक अनुकूलित होती है । सामाजिक-सांस्कृतिक तत्व राजनैतिक और आर्थिक घटकों को उन तरीकों से व्यवहार करने के लिए प्रभावित करते हैं, जो आर्थिक प्रक्रियाओं

[1]राबर्ट डी. पुटनम - 'बाउलिंग एलोन'

की गति में काफी अधिक बदलाव लाते हैं। सामाजिक पूंजी और विश्वास समाज और उद्यमशीलता में सम्बद्धता एवं संसक्ति के तत्व हैं और वे उन प्रक्रियाओं की शुरूआत करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अवसरों का विस्तार करती हैं । उनके जरिए विषेश समूहों और संगठनों की रचना होती है, जिन्हें सामान्यता: सामाजिक पूंजी संस्थाओं अथवा तीसरे क्षेत्रक के रुप में जाना जाता है ।

1.3 सैद्धान्तिक रुप से, सामाजिक पूंजी संस्थाओं से समाज में चार निर्णायक भूमिकांए निभाने की अपेक्षा की जाती है[2] :

(i) सेवा भूमिका:- यह लोंगों को किसी सार्वजनिक समस्या से प्राथमिक स्तर पर निपटने के लिए प्रोत्साहित करती है। लोगों में नाजुक सार्वजनिक आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर देने में लाभ-निरपेक्ष संस्थाओं को मार्ग प्रशस्त करने की छूट देने की प्रवृति होती है । इस प्रकार लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक रक्षा की प्रथम पंक्ति, एक लचीले तंत्र के रुप में कार्य करता है, जिसके जरिए किसी सामाजिक अथवा आर्थिक समस्या से सरोकार रखने वाले लोग अपने साथी नागरिकों की बहुसंख्या को कायल किए बिना कि इस समस्या के लिए अधिक सामान्य, सरकारी अनुक्रिया की आवश्यकता है, कार्रवाई करना शुरू कर सकते हैं । लाभ-निरपेक्ष संगठन लोगों के उन उप-समूहों के लिए भी उपलब्ध होते हैं, जो ऐसी बहुत-सी सार्वजनिक वस्तुओं को चाहते हैं, जो उन वस्तुओं से अधिक होती हैं, जो सरकार अथवा समाज मुहैया करने के लिए राज़ी हो । अस्पतालों, समाज सेवा अभिकरणों और सिविल संगठनों की योजना बनाने में लाभ-निरपेक्ष संगठनों की पहले से बनी-बनाई भूमिका होती है ।

(ii) मूल्य संरक्षक भूमिका:- लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक की भूमिका समाज में सार्वजनिक भलाई के लिए वैयक्तिक पहलों पर जोर देने वाले बुनियादी मूल्य के उदाहरणों और मूर्त रुप में "मूल्य संरक्षक" के तौर पर कार्य करना है, जिस प्रकार प्राइवेट आर्थिक उद्यम निजी भलाई के लिए वैयक्तिक पहल को बढ़ावा देने वाले साधन के रुप में कार्य करते हैं । इस प्रक्रिया में, लाभ-निरपेक्ष निकाय बहुलवाद, विविधता और स्वतंत्रता को बढ़ावा देते हैं । ये मूल्य स्वास्थय में सुधार करने अथवा स्कूलों में दाखिलों को बढ़ावा देने जैसे प्रयोजनों से बहुत आगे बढ़ जाते हैं । वे इस बात की अभिव्यक्ति के रुप में महत्वपूर्ण हैं, जिसे आधुनिक समाज की केन्द्रीय विशिष्टता समझा जाता है - अर्थात गैर-सरकारी कार्रवाई का क्षेत्र, जिसके जरिए व्यक्ति पहल कर सकते हैं, वैयक्तिकता को अभिव्यक्त कर सकते हैं, और विचार-अभिव्यक्त करने

[2]नान-प्राफिट आर्गनाइजेशन्स: 'अमेरिकान् इनविजिबल सेक्टर' - लेस्टर एम. सेल्मन, सेंटर फार सिविल सोसाइटी स्टडीज़, जान आपकिन्स यूनीवर्सिटी

और कार्य करने की स्वतंत्रता का उपयोग कर सकते हैं ।

(iii) समर्थन/समाजिक सुरक्षा वाल्व भूमिका:- लाभ-निरपेक्ष संगठन सामाजिक समस्याओं और आवश्यकताओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने में भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे ऐसे प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से समुदाय अपने सरोकारों को व्यक्त करते हैं। वास्तव में, ऐसे सबसे अधिक सामाजिक अभियानों ने, जिन्होंने पिछली शताब्दी में पश्चिमी समाज को अनुप्राणित किया है - जैसे महिलाओं के मताधिकार का आन्दोलन, नागरिक अधिकारों की सुरक्षा और पर्यावरण की रक्षा करने की पहल - लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक में रुप धारण किया। सामाजिक और राजनैतिक सरोकारों को उजागर करके, कम प्रतिनिधित्व वाले लोगों की भावनाओं को मुखर बनाकर और इन परिप्रेक्ष्यों को सामाजिक और राजनैतिक जीवन में जोड़ कर, ये संगठन एक तरह के सुरक्षा-वाल्व के रुप में कार्य करते हैं, जो लोकतंत्र का परिरक्षण करने और समकालीन राज्यतंत्र और समाज में शान्ति बनाए रखने में सहायता देते हैं ।

(iv) समुदाय निर्माण भूमिका:- अन्त में, लाभ-निरपेक्ष संगठन विश्वास और आदान-प्रदान के बंधनों के जरिए सामाजिक मेल-मिलाप उत्पन्न करने और उसे बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, जो किसी लोकतांत्रिक समाज और मार्किट अर्थव्यवस्था के सुचारु रूप से कार्य करने के लिए मूलभूत रूप से आवश्यक है ।

1.4 ऐसे बहुत से तरीके हैं, जिनके जरिए सामाजिक पूंजी सरकार के कार्य-निष्पादन में सुधार कर सकती हैं । सबसे पहले, यह सरकार की उत्तरदायिता का विस्तार कर सकती है; सरकार को संकीर्ण साम्प्रदायिक हितों की बजाय आम नागरिकों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए । दूसरे, यह उन मामलों में समझौता कराने में सहायता दे सकती है, जहां राजनैतिक तरजीहें बिल्कुल विपरीत ध्रुवों पर हों । तीसरे, यह नीति-निर्माण में नव परिवर्तन उत्पन्न करती है । अन्त में, यह निवासियों के सम्मिलन के जरिए स्थानीय स्तर पर बहुत सी सेवाओं की सुपुर्दगी करने में अधिक कुशलता लाती है ।

1.5 सरकार की उत्तरदायिता सर्वाधिक महत्वपूर्ण तरीका है, जिसके द्वारा सामाजिक पूंजी सरकार के कार्य-निष्पादन को प्रभावित करती है । विश्वास और नागरिकों के हित वाली प्रवृत्ति राजनैतिक भागीदारी के स्तर और स्वरुप को प्रभावित करके, "किराया वसूली" को घटा कर और लोक-हित वाले व्यवहार को बढ़ाकर सरकार के कार्य-निष्पादन में सुधार कर सकती है ।

1.6 सामाजिक पूंजी महत्वपूर्ण मुद्दों पर विभिन्न खिलाड़ियों में अभिसरण ला सकती है । विकसित क्षेत्रों में राजनैतिक नेता विरोधियों के विचारों के साथ समझौता करने के लिए अधिक रजामंद होते है । जहां विश्वास और आदान-प्रदान के प्रतिमान अधिक सशक्त होते हैं, वहां इस बात की अधिक संभावना होती है कि विरोधी विचारों वाले लोग इकठ्ठे मिल बैठेंगे और अपने विवादों को तय कर लेंगे । दूसरी ओर, जहां जानकार रहने के नागरिक दायित्व और राजनैतिक जीवन में भाग लेने की अभिप्रेरणा वाले लोग कम होते हैं, वहां दो विरोधी पक्षों में विवाद के तय होने के अवसर कमजोर होते हैं ।

1.7 सामाजिक पूंजी नीति निर्धारित करने में अधिक नवीनता और लचीलापन लाती है । नागरिकता की अधिक भावना वाले क्षेत्र समुदाय और राज्य की समस्याओं और चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में कम नागरिकता वाले क्षेत्रों की अपेक्षा बहुत अधिक सफल होते हैं ।

1.8 लोक सेवा सपुर्दगी का कार्य अधिक कुशलतापूर्वक किया जा सकता है, यदि सामाजिक नेटवर्क समूह कार्यशील हों और सामान्य मुद्दों के प्रति लोंगो के जुटा सकते हों। आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में महिला स्व-सहायता समूह/माइक्रो ऋण संस्थाएं और केरल में कुदुम्बश्री सामूहिक भागीदारिता के बढ़िया उदाहरण हैं, जिनसे इन राज्यों में विकास के कार्यक्रम का बेहतर कार्यान्वयन हुआ है।

1.9 मोटे शब्दों में, सामाजिक पूंजी की संवृद्धि से स्वस्थ नागरिक समाज का विकास होता है, जो सरकारी क्षेत्रक (सरकार) और व्यापार (मार्केटों) के बीच के क्षेत्र में एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रुप में उभरता है, जिसे प्राय: तीसरा क्षेत्रक अथवा लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक कहा जाता है । नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) की शक्ति और सजीवता के आधार पर, तीसरे क्षेत्रक के संगठन निम्नलिखित चार रूप धारण कर सकते हैं:-

(क) अल्प निधिपोषण के साथ लधु समुदाय-आधारित पहलें, जैसे निवासी कल्याण संध। ऐसा नेटवर्क आम तौर पर समूह के विशुद्ध रूप से स्वैच्छिक कार्य पर निर्भर होता है । लेकिन, यह समूह अपने कार्यों का विस्तार करना चाहे, तो उसे बाहरी वित्तीय सहायता की आवश्यकता होगी।

(ख) सुपरिभाषित संगठनात्मक पद्धतियों और लक्ष्यों वाले बड़े ढांचे वाले समूह । उनका प्रकट रूप से कोई लाभ का अभिप्राय: नहीं होता, लेकिन वे सामान्य रूप से वित्तीय रूप से संधारणीय आधार पर कार्य करते हैं । ऐसे संगठन का स्वयं अपना वित्तीय आधार होता है, लेकिन वे प्राय: बाह्य अभिकरणों, जैसे सोसाइटियों, न्यासों और वक्फों से भी काफी सहायता प्राप्त करते हैं।

(ग) संगठनों की एक तीसरी श्रेणी भी है, जो व्यापार में कार्य करती है, लेकिन कतिपय सुपरिभाषित सामाजिक उद्देश्यों के साथ । ऐसे संगठनों में, अधिशेष को वापस काम में लाया जाता है और उनका निवेश स्वयं कार्य में किया जाता है । उन्हें सरकार के साथ अन्तर्क्रिया करने की आवश्यकता हो सकती है, जैसे सहकारी समितियां।

(घ) चौथे प्रकार की सामाजिक पूंजी संस्थाएं विनियमनकारी व्यावसायिक समूह/संध होती हैं, जिनमें योग्यताप्राप्त लोग शामिल होते हैं, जो अपने व्यवसाय का संचालन कुछ निर्धारित सिद्धान्तों और नीतियों के अनुसार करने के लिए इकठ्ठे होते हैं, जैसे बार कांउसिल आफ इंडिया और इंस्टिट्यूट आफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स।

1.10 यद्यपि, मानव उद्यमशीलता के एक तत्व के रुप में सामाजिक पूंजी पश्चिमी जगत के ध्यान के केन्द्र-बिन्दु में केवल पिछले दो दशकों के दौरान आई है, लेकिन सम्बद्धता और सामुदायिक संस्थाएं भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से हमारे देश के जीवन और संस्कृति का भाग रही हैं । मोहेंजदारो और हड़प्पा के पुरातत्वीय अवशेषों से सामुदायिक जीवन के ऐसे उन्नत स्वरूप के अस्तित्व का संकेत मिलता है, जिसमें लोग सामाजिक और आर्थिक दोनों तरह से एक दूसरे से बहुत व्यापक और घनिष्ट रुप से जुड़े हुए थे । ग्रामीण समुदायों, गलियों, सिंचाई तालाबों, जलाशयों, आदि का प्रबन्ध प्रधान रुप से सहकारिता और पारस्परिक सहायता की भावना पर आधारित था। मौर्य और गुप्त साम्राज्यों ने सभाओं और ग्राम परिषदों के रुप में प्रभावशाली सामुदायिक संगठनों के अभ्युदय को देखा, जिनमें स्थानीय नागरिक परस्पर समझदारी और परामर्श के जरिए अपनी बहुत-सी समस्याओं को सुलझा सकते थे । सुदूर दक्षिण में, संगमकाल में, जो 200 ई.पू. से 500 ई. तक रहा, अन्तर्सामुदायिक और अन्तरा-सामुदायिक प्रणालियां और राज्य व्यवस्था की धारणा उभर कर सामने आई । बाद की अवधियों में चालुक्यों, पल्लवों, चोलाओं और पांड्यों के शासन के दौरान व्यापारियों, शिल्पियों और कृषकों ने संयुक्त रुप से "नाडु" और "पेरिनाडु" की कार्रवाइयों में भाग लिया और नए सामुदायिक और सामाजिक संगठनों की रचना की, जो विजयनगर शासन के अन्तर्गत 15वीं शताब्दी तक प्रकट रुप से दृष्टिगोचर थे ।

1.10.1 साम्राज्यों के उत्थान और पतन के दौरान, परस्पर अन्तर्क्रिया और सहकारी व्यवहार का वातावरण बना रहा और बहुत बड़ी हद तक इसे उप-महाद्वीप में सामाजिक और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के बीज बोने का श्रेय दिया जा सकता है ।

1.11 "सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारितापूर्ण लोक सेवा सपुर्दगी" के सम्बन्ध में अपने विचारणीय विषयों (वि.वि. संख्या 8) में, आयोग से निम्नलिखित की जांच करने के लिए विशिष्ट रुप से कहा गया है:-

(क) सरकार की प्रभावकारिता बढ़ाने के साधन के रूप में सरकार के सभी स्तरों पर सामाजिक पूंजी का निवेश करने और उसे बढ़ावा देने के तरीके ।

(ख) स्थानीय समुदाय के साथ, विशेष रूप से दूरस्थ क्षेत्रों में, सक्रिय रुप से भागीदारी करने के लिए प्रशासन के सामर्थ्य में सुधार करना और उसे बढ़ाना ।

(ग) सरकार और नागरिकों की संस्थाओं के बीच बेहतर सहक्रिया ।

(घ) प्रशासनिक कार्य-पद्धतियों की लोक-केन्द्रस्थता को बढ़ाना ।

(ङ) कार्यक्रमों की संकल्पना बनाने और उनके कार्यान्वयन में लोगों के प्रतिनिधियों और सामान्य समुदाय के अधिक मात्रा में शामिल होने की सुनिश्चित व्यवस्था करना ।

1.12 आयोग ने इस रिपोर्ट में मद (क), (ख) और (ग) की जांच काफी विस्तारपूर्वक की है । सभी प्रकार की सामाजिक पूंजी संस्थाओं पर, जो इस समय राज्यों के अधिनियमों अथवा केन्द्रीय विधियों के आधार पर अस्तित्व में हैं, उनके संस्थात्मक डिज़ाइन, विनियमनकारी पर्यावरण और सरकार के साथ उनके सम्पर्क के सन्दर्भ में चर्चा की गई है । इस रिपोर्ट के अध्याय 3 में सोसाइटियों और न्यासों से सम्बन्धित मुद्दों पर विचार किया गया है। आयोग ने एक माडल कानून तैयार करने का सुझाव दिया, जिसे राज्य सरकारों द्वारा छोटे-मोटे उपान्तरों के साथ अधिनियमित किया जा सकता है । इस रिपोर्ट में आयकर अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अन्तर्गत इन निकायों के पंजीकरण और उससे छूट के बारे में कुछ परिवर्तनों के सुझाव भी दिए गए हैं । आयोग ने विदेशी अभिदाय विनियमन अधिनियम (एफ.सी.आर.ए.), 1976 और विदेशी अभिदाय विनियमन विधेयक, 2006 की भी विस्तृत रुप से जांच की है और उत्तरोक्त में कुछ संशोधनों का सुझाव दिया है । एक प्रमुख सिफारिश में यह कहा गया है कि एक वर्ष के दौरान 10 लाख रुपए के बराबर अथवा उससे कम विदेशी अभिदाय (इस राशि का पुनरीक्षण समय-समय पर किया जाना अपेक्षित है) प्राप्त करने वाले संगठनों को पंजीकरण और रिपोर्ट देने की अन्य अपेक्षाओं से छूट दी जानी चाहिए । इसके स्थान पर, इन संगठनों से यह कहा जाना चाहिए कि वे वर्ष के अन्त में उनके द्वारा प्राप्त किए गए विदेशी अभिदाय और उसके उपयोग के बारे में एक वार्षिक विवरणी दायर करें । इस कदम से प्राधिकारी अधिक मात्रा में विदेशी निधियां प्राप्त करने वाले संगठनों की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे । इस अध्याय में यह भी प्रस्तावित किया गया है कि स्वैछिक क्षेत्रक के लिए एक स्वतंत्र प्रत्यायन अभिकरण स्थापित करने की आवश्यकता है। इस रिपोर्ट के अध्याय 4 में भारत में स्व-सहायता समूह अभियान के विकास और विस्तार के बारे में विचार किया गया है । यहां आयोग ने सिफारिश की है कि कम वित्तीय समावेश वाले क्षेत्रों में ऐसे अधिक से अधिक समूह बनाने के प्रयासों को बढ़ाया जाना चाहिए।

इसके साथ-साथ नाबार्ड नेटवर्क का समुचित विस्तार किया जाना चाहिए। आयोग ने माइक्रो-वित्तीय क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 के बारे में विभिन्न सिविल सोसाइटी/पणधारी समूहों द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को भी ध्यान में रखा है और सुझाव दिया है कि इस विधेयक के कुछ उपबन्धों को उपान्तरित करने की आवश्यकता है । इस रिर्पोट के अध्याय 5 में बार कांउसिल आफ इंडिया, मेडिकल कांउसिल आफ इंडिया, दि इंस्टिट्यूट आफ चार्टर्ड अकांउटेंट्स आफ इंडिया, दि इंस्टिट्यूट आफ कौस्ट ऐण्ड वर्क्स अकांउटेंट्स आफ इंडिया, आदि जैसे स्वत: विनियमनकारी प्राधिकरणों के कार्यकरण पर विचार किया गया है । रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि व्यावसायिक शिक्षा को उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखने की आवश्यकता है । उनके कार्यकरण में पारदर्शिता और विश्वसनीयता लाने के लिए, यह सुझाव दिया गया है कि इन संगठनों के प्रबन्ध निकायों में "साधारण (ले)" सदस्यों को नामजद किया जाए। आयोग ने अध्याय 6 में सहकारी समितियों पर विचार किया है। यह रिपोर्ट वेद्यनाथन समिति द्वारा सुझाए गए विभिन्न उपायों को पूरा समर्थन देती है। आयोग ने उत्पादक समितियों के मुद्दे पर भी विचार किया है और सुझाव दिया है कि उन्हें सशक्त बनाए जाने की आवश्यकता है, ताकि अधिक से अधिक मौजूदा सहकारी समितियां और अन्य संयुक्त उद्यम संगठन अपने आपको यथोचित समय के अन्दर उत्पादक कम्पनियों के रूप में बदल सकें।

विचारणीय विषयों की मद 8.3 और 8.4 (पैरा 1.11 की घ और ङ) का सम्बन्ध मुख्य रुप से शासन में नागरिकों के शामिल होने के मुद्दों से है और आयोग द्वारा "नागरिक केन्द्रित प्रशासन" सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट में उन पर अलग से विचार किया जाएगा।

1.13 भारत में सामाजिक पूंजी संस्थाओं के कार्यकरण से सम्बन्धित मुद्दों पर विभिन्न पणधारियों के विचारों का पता लगाने के लिए, आयोग ने इंस्टिट्यूट आफ रूरल मेनेजमेंट, आनन्द, गुजरात के सहयोग से आनन्द में दिसम्बर, 2006 में इस विषय पर एक राष्ट्रीय कार्यशाला आयोजित की थी। इस कार्यशाला का व्योरा अनुलग्नक-1 में दिया गया है। आयोग को इस कार्यशाला में भाग लेने वाले विद्वानों, बुद्धिजीवियों, सक्रिय कार्यकर्त्ताओं और सरकारी प्रतिनिधियों द्वारा उपलब्ध कराई गई निविष्टियों से बहुत लाभ हुआ। आयोग उन सबके प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहता है। बाद में, आयोग ने और उसके पदाधिकारियों ने भारतीय चिकित्सा परिषद, बार कांउसिल, महाराष्ट्र और गुजरात के पूर्त (चेरिटी) आयुक्तों, और पूर्त संगठनों के कई प्रतिनिधियों के साथ अलग-अलग चर्चाएं की। आयोग को अपनी सिफारिशें तैयार करते समय उनके विचारों और सुझावों से बहुत अधिक सहायता मिली है। आयोग वित्त मंत्रालय के वित्तीय सेवा विभाग के सचिव और अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत बहुमूल्य निविष्टियों के लिए उनका आभारी है। आयोग स्वैच्छिक संगठनों को विदेशी अभिदाय के मुद्दे के बारे में गृह मंत्रालय की निविष्टियों के लिए उस मंत्रालय को भी अपना धन्यवाद देता है। आयोग दो नोडल संस्थाओं - (क) ग्रामीण प्रबन्ध संस्थान,

आनन्द, और (ख) इंस्टिट्यूट फार सोशल ऐण्ड इकोनामिक चेंज, बंगलुरु द्वारा उन अति महत्वपूर्ण मुद्दों की पहचान करने के लिए किए गए प्रयासों की सराहना करता है, जिनका उपयोग इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए किया गया है। इस सम्बन्ध में, आयोग श्रीमती नीलिमा खेतान और प्रोफेसर देबी प्रसाद मिश्र (दोनों आई.आर.एम.ए. के) और डा. सत्यनारायण संगिता (आई.एस.ई.सी., बंगलुरु से) के योगदान के प्रति अपना आभार प्रकट करता है। आयोग श्री विजय महाजन, बी.ए.एस.आई.एक्स., श्री रामारेड्डी, को-आपरेटिव डवेलपमेंट फाउंडेशन, हैदराबाद और श्री एन.वी. बेलावाडी, राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड को अपना धन्यवाद देता है, जिन्होंने क्रमश: माइक्रो वित्त, सहकारी समितियों और उत्पादक कम्पनियों के बारे में आयोग को महत्वपूर्ण निविष्टियां प्रदान कीं ।

2

विकास और संवृद्धि

2.1 जैसाकि पहले बताया गया है, समाजिक पूंजी शब्द पश्चिमी शब्द-कोश में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान आया था, किन्तु भारत में हमारी सभ्यता के प्रारम्भ के दिनों से ही यह कृषि जीवन का एक आवश्यक तत्व रही है। ऋगवेद में सामूहिक सामाजिक उद्यमशीलता के कुछ तत्वों का उल्लेख किया गया है, जो जागरूक मानव के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व के परोपकार/आस्था आधारित जीवन-दर्शन के रुप में प्रकट हुए। मौर्य और गुप्त वंशों के शासनकाल (चौथी शताब्दी ई.पू. से 5वीं शताब्दी ई.) के दौरान और उसके बाद भी, सामूहिक उद्यमशीलता और सामाजिक सम्बद्धता पर आधारित ग्राम समुदाय का अस्तित्व देश भर में था। सामाजिक पूंजी की आधुनिक संकल्पना को आंशिक रुप से (i) परोपकार/आस्था आधारित जीवन-दर्शन, और (ii) सशक्त और संसक्तिशील सामुदायिक जीवन की एक शाखा समझा जा सकता है।

2.2 सामाजिक कार्य समूह और स्व–सहायता अभियान

2.2.1 बाद के वर्षों में, यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के उभाड़ से, समानता, मानव अधिकारों और समाज कल्याण के राजनैतिक विचारों के परिणामस्वरुप बौद्धिक समूहों का और उसके पश्चात संगठनों का निर्माण हुआ, जिन्होंने सामाजिक सरोकार के मुद्दों को उठाना शुरू किया। भारत में, ऐसे सामाजिक कार्य समूहों ने 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में रूप धारणा शुरु कर दिया। 19वीं शताब्दी के भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्जागरण औपनिवेशक शासन के समय शुरू हुआ, लेकिन इसके द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ[3] । राष्ट्रीय भावना से जुड़े सामाजिक सुधार के विचार से ब्रह्म समाज, आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज, प्रार्थना सभा, इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस, आदि जैसी सोसाइटियों और सभाओं का गठन हुआ। राजा राम मोहन राय, केशव सेन, दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फुले और महादेव रानाडे जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक विभूतियों ने सामाजिक कट्टरता, महिलाओं की असमान स्थिति, जाति प्रथा, अयुक्तिसंगत विश्वासों और अंधविश्वास पर आधारित प्रथाओं के मुद्दे उठाने और इनका विरोध करने के आन्दोलनों को नेतृत्व प्रदान किया। अहमदिया और अलीगढ़ आन्दोलन, सिंह सभा और रहनुमाई मज्देआसन सभा, क्रमश: मुसलमानों, सिक्खों और पारसियों में सुधार की भावना के प्रतीक थे । चूंकि धर्म उस काल की सबसे प्रबल विचारधारा थी, इसलिए उसने कुछ हद तक, देश में सुधार के आन्दोलन के प्रसार को प्रभावित किया । किन्तु, कुल मिलाकर, उस समय के सामाजिक कार्य समूह मूल रुप से

[3] श्री बिपिन चन्द्र द्वारा लिखित पुस्तक 'इंडियाज़ स्ट्रगल फार इंडीपंडन्स'

बौद्धिक और युक्तिसंगत विचारों से अनुप्रेरित थे। उन्होंने ऐसे संगठनात्मक ढांचों का निर्माण किया, जो ठोस रुप से सामाजिक समर्थन और भागीदारिता पर आधारित थे।

2.2.2 स्वतन्त्रता संधर्ष के दौरान, गांधी जी के आन्दोलन का समूचा जोर स्व-सहायता और सहकारिता पर था। सहकारिता के आन्दोलन ने स्व-सहायता के ऐसे लोकाचार के भाग के रूप में गति पकड़ी जो स्वतंत्रता के आन्दोलन में गड़ा हुआ था। गांधीजी के लिए स्वदेशी आन्दोलन "देश में सबसे बड़ा रचनात्मक और सहकारी आन्दोलन" था। उन्होंने खादी और ग्रामोधोगों के प्रचार-प्रसार को "भारत की बढ़ती हुई कंगाली के लिए रामबाण औषधि" और "सहकारिता का एक सोद्देश्य सबक" पाया[4]। गांधीजी ने सहकारिता को एक नैतिक आन्दोलन के रूप में देखा।

2.3 निगमों के प्रतिष्ठान

2.3.1 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में, भारत में निगम समुदाय ने भी सुविधावंचित लोगों के कल्याण और विकास के लिए समर्पित संगठनों की स्थापना करना शुरू कर दिया। हमारे देश में जे.एन.टाटा धर्मादा ट्रस्ट की स्थापना 1892 में की गई थी, अर्थात उस समय से बहुत पहले, जब राकफेलर और कारनेगी ने संयुक्त राज्य अमेरिका में अपने लोकोपकारी प्रतिष्ठानों की स्थापना की थी। इस धर्मादा ट्रस्ट का एक प्रमुख योगदान बंगलुरु में इंडियन इंस्ट्टियूट आफ सांइस की स्थापना करना था। बाद के वर्षों में, व्यापारिक लोकोपकार से कला, सामाजिक कार्य, और शिक्षा के क्षेत्रों में काफी काम हुआ और अगले पचास वर्षों के दौरान देश के प्रमुख औधौगिक और व्यापार केन्द्रों में बहुत से निगम न्यासों और सोसाइटियों की स्थापना हुई। जे.जे. स्कूल आफ आर्ट्स, टाटा इंस्टिट्यूट आफ सोशल साइंस, टाटा इंस्टिट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बिड़ला इंस्टिट्यूट आफ टेक्नोलाजी, श्रीराम कालेज आफ कामर्स और ऐसी बहुत सी अन्य संस्थाओं की स्थापना देश के महानगरों में की गई।

2.4 सामाजिक–राजनैतिक आन्दोलन और संविधानवाद तथा साम्या की संवृद्धि

2.4.1 सामाजिक-राजनैतिक मोर्चे पर, विनोबा भावे का भूदान और जय प्रकाश नारायण का सर्वोदय आन्दोलन स्वैच्छिक कार्य की दो प्रमुख पहलें थीं, जिन्होंने 1950 और 1960 के दशकों में देश में लोगों का ध्यान आकर्षित किया । ये दोनों आन्दोलन अनेकानेक नि:स्वार्थ और समर्पित कार्यकर्त्ताओं के एक बड़े समूह पर आधारित थे, जो उपर्युक्त दो महान व्यक्तियों की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित थे।

2.4.2 1970 और 1980 के दशकों के अन्त के समय संविधानवाद की संवृद्धि और आर्थिक उदारीकरण के उद्भव ने साम्या, मानव अधिकारों और आर्थिक अवसरों के विस्तार के विचारों को प्रज्वलित किया । उदारीकरण के वातावरण के परिणामस्वरूप इस बात को मान्यता मिली कि लोगों को सामाजिक कार्य के

[4] श्री बी. के. सिन्हा द्वारा "महात्मा गांधी और सहयोग आंदोलन" नामक पुस्तक

नेटवर्क के जरिए सशक्त बनाए जाने की आवश्यकता है। इससे देश में परोपकारी और स्वैच्छिक कार्य समूहों की नई श्रेणियों के उभरने को बल मिला। इस समय, इनमें से सर्वाधिक संगठन सामाजिक और सामुदायिक उन्नति; मानव अधिकारों को बढ़ाना देने; लोक स्वास्थ्य, प्रसूति और बाल स्वास्थ्य देखभाल; शिक्षा के विस्तार; वैज्ञानिक संवर्धन; संस्कृति, कला और विरासत; अव्यवसायी खेलों; पर्यावरण संरक्षण, बाल अधिकारों और शहरी क्षेत्रों में सेवा प्रदान करने में सुधार के क्षेत्रों में सक्रिय है। इन संगठनों ने देश में नागरिक और सरकार के बीच के सम्पर्क के सभी पहलुओं पर सकारात्मक प्रभाव डाला है।

2.5 सहकारी समितियां

2.5.1 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्षों में, सरकार ने किसानों को स्वैच्छिक समूहों में संगठित करने का विचार किया, जो सामूहिक आधार पर सस्ता कृषि ऋण प्राप्त कर सकें और इस प्रकार अपने आपको ऋणदाताओं की सूदखोरी प्रथाओं से बचा सकें। इस प्रकार सहकारी समितियों का जन्म हुआ। 1904 में "सहकारी ऋण समितियां अधिनियम, 1904" नाम का कानून बनाया गया। इस अधिनियम की प्रेरणा यूरोप में सहकारी आन्दोलन की सफलता से प्राप्त हुई थी। यद्यपि, इस दिशा में पहले कदम सरकार द्वारा उठाए गए थे, लेकिन इस संकल्पना को ग्रामीण भारत से बहुत अधिक समर्थन प्राप्त हुआ और कुछ वर्षों के अन्दर ही देश के बहुत बड़े हिस्से में सहकारी समितियां अस्तित्व में आ गईं। उक्त अधिनियम को 1912 में और आगे संशोधित किया गया । मुम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और बंगाल जैसे राज्यों ने अपने इलाकों में सहकारी समितियों का विस्तार करने के भरसक प्रयास किए और 1912 के अधिनियम के अनुरूप स्वयं अपने अधिनियम बनाए। भारतीय रिजर्व बैंक का, जिसकी स्थापना 1934 में की गई थी, एक प्राथमिक कार्य कृषि ऋण था और उसने ग्रामीण सहकारी समितियों को पुनर्वित्त की सुविधा प्रदान करके सहकारिता आन्दोलन को देश के सभी कोनों तक फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । स्वतंत्रता के पश्चात, अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सहकारी समितियां सर्वेक्षण समिति (1951-54) की रिपोर्टों ने और 1960 के दशक में जिला तथा शीर्ष सहकारी बैंकों के निर्माण ने इस क्षेत्रक को और बढ़ावा दिया।

2.5.2 स्वैच्छिक संगठनों को कानूनी मान्यता देने के उद्देश्य से, तत्कालीन सरकार ने 19वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में कानून बनाए। इस श्रृंखला में पहला कानून 1860 का समिति पंजीयन अधिनियम था, जो एक कोमल कानून था, जिसके अन्तर्गत समितियां, यदि वे चाहतीं तो अपने आपको पंजीयित करा सकती थीं। इन विधान के बाद 1863 का धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1882 का भारतीय न्यास अधिनियम, और 1890 का पूर्त विन्यास अधिनियम बनाए गए। ये अधिनियम भी अपेक्षाकृत नरम थे, क्योंकि उस समय सरकार का आशय केवल ऐसी संस्थाओं की मौजूदगी को दर्ज करना था; उसका इरादा कोई कड़ा

विनियमनकारी नियंत्रण लागू करना नहीं था। 20वीं शताब्दी के शुरू के समय, ब्रिटिश सरकार ने इस सूची में दो और विधान जोड़ दिए: (i) पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920; और (ii) व्यवसाय संघ (ट्रेड यूनियन) अधिनियम, 1926।

2.6 मौजूदा कानून

2.6.1 स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात, केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों ने सार्वजनिक न्यासों, वक्फों, उत्पादक कम्पनियों, अन्य स्वैच्छिक क्षेत्रों/सिविल सोसाइटी संगठनों और सहकारी समितियों के बारे में बहुत से कानून बनाए। आज की तारीख को, इस विषय पर मौजूदा प्रमुख कानून ये हैं:

- समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860
- भारतीय न्यास अधिनियम, 1882
- पूर्त विन्यास अधिनियम, 1890
- व्यवसाय संघ अधिनियम, 1926
- पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920
- बम्बई सार्वजनिक न्यास अधिनियम, 1950
- वक्फ अधिनियम, 1954
- कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 25
- पुराने राज्य सहकारी समितियां अधिनियम और नए परस्पर सहायताप्राप्त सहकारी समितियां अधिनियम (नौ राज्यों में लागू)
- बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम, 2002
- स्वत: विनियमनकारी प्राधिकरणों के बारे में कानून, जैसे भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956; दि एड्वोकेट्स अधिनियम, 1961; दि चार्टर्ड अधिनियम, 1949; दि कौस्ट ऐण्ड वर्क्स अधिनियम, 1959; और वास्तुविद् अधिनियम, 1972।
- विभिन्न राज्यों द्वारा 1947 के बाद अधिनियमित अधिनियम/संशोधन ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की अवधि में, बहुत से राज्यों ने समितियों, न्यासों और सहकारी समितियों के बारे में स्वयं अपने कानून बनाए हैं/संशोधित किए हैं।

2.6.2 इसके अलावा, शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन और खेलों जैसी सेवाओं की व्यवस्था पर लागू होने वाले कानून भी उन संगठनों पर लागू होते हैं, जो उन क्षेत्रों में काम करते हैं

2.7 सामाजिक पूंजी संगठन और भारत का संविधान

2.7.1 भारत का संविधान (क) एसोसिएशनें अथवा संघ बनाने के अधिकार वाले अपने अनुच्छेद 19(1)(ग) के जरिए; (ख) अनुच्छेद 43 के जरिए, जो ग्रामिण क्षेत्रों में सहकारी समितियों को बढ़ावा देने का प्रयास करने वाले राज्यों के बारे में है; और (ग) अनुसूची 7 में की गई प्रविष्टियों में किए गए सुस्पष्ट उल्लेख के जरिए सामाजिक पूंजी/ सिविल सोसाइटी संस्थाओं के लिए विशिष्ट कानूनी स्थान की व्यवस्था करता है।

राज्य सूची - प्रविष्टि 323 - सूची I में विनिर्दिष्ट निगमों, और विश्वविद्यालयों, गैर-निगमित व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य समितियों और एसोसिएश्नों; सहकारी समितियों से भिन्न निगमों का निगमन, विनियमन और विघटन।

संध सूची-प्रविष्टि 43 - "व्यावसायिक निगमों का, जिनमें बैंकिंग, बीमा और वित्तीय निगम शामिल हैं, लेकिन सहकारी समितियां शामिल नहीं हैं, निगमन, विनियमन और विधटन।"

प्रविष्टि 44 - "निगमों का, चाहे वे व्यावसायिक हों अथवा न हों, जिनके उद्देश्य एक राज्य तक सीमित न हों, लेकिन जिनमें विश्वविद्यालय शामिल न हों, निगमन, विनियमन और विधटन।"

समवर्ती सूची - प्रविष्टि 10 - "न्यास और न्यासी"

प्रविष्टि 28 - "पूर्त कार्य और पूर्त संस्थाएं, पूर्त और धार्मिक विन्यास और धार्मिक संस्थाए।

2.7.2 चूंकि एसोसिएशनें बनाना भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ग) के अन्तर्गत एक संवैधानिक अधिकार है, इसलिए ऊपर उल्लिखित किसी भी प्रविष्टि के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के पंजीयन अथवा मान्यता के बिना किसी लाभ-निरपेक्ष/स्वैच्छिक संगठन का निर्माण करना संभव है। वस्तुत: कुछ समुदाय आधारित संगठन, जैसे ग्राम सभाएं, छोटे समूह और बहुत-सी निवासी कल्याण एसोसिएशनें इसी तरीके से कार्य करती हैं। किन्तु, जब आयकर अधिनियम के अन्तर्गत छूट पाने और सरकार से कुछ अन्य लाभ प्राप्त करने की बात आती है, तो औपचारिक पंजीयन पर जोर दिया जाता है।

2.8 सरकारी नीति

2.8.1 केन्द्रीय सरकार ने "स्वैच्छिक क्षेत्रक" के बारे में अपनी राष्ट्रीय नीति में (जो योजना आयोग द्वारा तैयार की गई थी और जिसे केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा मई, 2007 में अनुमोदित किया गया था) यह शर्त

लगाई है कि "स्वैच्छिक संगठनों का अर्थ नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, लोकोपकारी अथवा वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विचारों पर आधारित लोकसेवा में कार्यरत संगठनों को शामिल करना है। स्वैच्छिक संगठनों में औपचारिक और अनौपचारिक समूह, जैसे समुदाय-आधारित संगठन, गैर-सरकारी विकास संगठन, पूर्त संगठन, सहायता संगठन, नेटवर्क अथवा ऐसे संगठनों की फेडरेशनें, और इसके अलावा व्यावसायिक सदस्यता वाली ऐसोसिएशनें शामिल हैं।

2.8.2 इस प्रक्रिया में एक पहले कदम के रुप में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि भारत में लाभ-निरपेक्ष/तीसरा क्षेत्रक वास्तव में क्या है। हम ऐसे विभिन्न किस्मों के संगठनों की परिकल्पना कर सकते हैं, जो कर से छूट पाने के हकदार हैं, जिनमें व्यापार एसोसिएशनों से लेकर पूर्त संगठन और सामाजिक क्लबें शामिल हैं। लेकिन लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक की परिभाषा के अन्तर्गत इस व्यापक पटल के पीछे पांच महत्वपूर्ण विशेषतांए हैं, जो इन सभी हस्तियों अथवा संगठनों के पास हैं। इसलिए लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक का भाग समझे जाने के लिए, किसी संगठन में ये विशेषताएं होनी चाहिएं:[5]-

- संगठनात्मक, अर्थात कुछ सार्थक ढांचे और स्थायित्व वाली कोई संस्था;
- गैर-सरकारी, अर्थात सरकार के तंत्र का भाग न हो;
- लाभ का वितरण न करने वाली, - अर्थात उसे उसके स्वामियों अथवा निदेशकों को लाभ वितरित करने की अनुमति न हो। उनके लिए लाभ को वापस संगठन में लाना अपेक्षित है।
- स्व-शासी, अर्थात संगठन से बाहर की किसी हस्ती द्वारा नियंत्रित नहीं; और
- किसी लोक प्रयोजन का समर्थक।

2.8.3 यद्यपि वे सभी संगठन, जो इन पांच कसौटियों को पूरा करते हैं, व्यापक लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक के भाग हैं, लेकिन उन्हें औपचारिक रूप से दो पृथक श्रेणियों में रखा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में विशुद्ध रूप से सदस्य-केन्द्रित निकाय शामिल हैं। जबकि वे किसी लोक प्रयोजन के लिए कार्य करते हैं, लेकिन उनका अस्तित्व मुख्य रूप से स्वयं अपने सदस्यों के हितों, आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए होता है। उनके उदाहरण हैं, सामाजिक/कल्याण क्लबें, व्यापार संध, श्रमिक संध, व्यावसायिक निकाय और राजनैतिक दल। दूसरी श्रेणी में लोगों की सेवा करने वाले संगठन शामिल हैं, जो सामान्य जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं। उनके उदाहरण हैं, पूर्त अनुदान देने वाली संस्थाएं, धार्मिक संस्थाएं, और शैक्षणिक, वैज्ञानिक और अन्य सम्बन्धित सेवा संगठनों की व्यापक श्रृंखला, जिनके क्रियाकलापों में अनाथालयों और वृद्ध गृहों के संचालन से लेकर चालू मुद्दों का पक्षपोषण करने वाले समूहों का प्रबन्ध करना शामिल है।

[5]"नाइदर मार्केट नान स्टेट - दि डच नान-प्राफ्रिट सेक्टर इन ए कम्पेरेटिव पर्सवेक्टिव" - एरी बर्गर, पाल डेक्कर

2.8.4 संगठनों के उपर्युक्त दो समूहों के बीच के भेद को अधिकतर देशों के कानून में औपचारिक रूप से स्वीकार किया जाता है और उनका नियंत्रण कराधान के भिन्न-भिन्न उपबन्धों द्वारा किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, लोक सेवा करने वाले संगठन एक विशेष कानूनी श्रेणी - यू.एस. कर संहिता की धारा 501(ग)(3) - के अन्तर्गत आते है, जो उन्हें न केवल फेडरल आय कर और अधिकतर राज्य और स्थानीय करों से छूट पाने का हकदार बना देती हैं, बल्कि व्यक्तियों और निगमों से कर-कटौती योग्य उपहारों के लिए हकदार बना देती है। भारतीय आयकर अधिनियम के अन्तर्गत भी, "लोक सेवा केन्द्रित स्वैच्छिक क्षेत्रक" के लिए अधिनियम की धारा 10 और 11 के रूप में इसी प्रकार का उपबन्ध मौजूद है।

2.9 सिविल सोसाइटी एक प्रमुख आर्थिक बल के रूप में

2.9.1 अर्थव्यवस्था के उदारीकरण और वैश्वीकरण से पिछले कुछ दशकों में समूचे विश्व में गैर-सरकारी संगठनों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई है। विशेषज्ञों का कहना है कि भारत में बीस लाख से अधिक गैर-सरकारी संगठन हैं। रूस में हर वर्ष चार लाख और कीनिया में 240 गैर-सरकारी संगठन बनाए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में अनुमानत: बीस लाख लाभ-निरपेक्ष संगठन हैं, जिन्होंने ग्यारह मिलियन से अधिक लोगों को नियोजित कर रखा है, जो उस राष्ट्र के कुल कार्यबल[6] के लगभग आठ प्रतिशत के बराबर हैं। बहुत बड़ी संख्या में गैर-वेतनभोगी स्वयंसेवकों (लगभग छ: मिलियन) द्वारा उनकी और सहायता की जाती है, जिनमें सशक्त वैयक्तिक पहल है और सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए प्रतिबद्धता है। गैर-सरकारी संगठनों की मौजूदगी सिविल सोसाइटी में गहराई और लचीलापन सुनिश्चित करती है। यह नागरिकों की आवाज को अभिव्यक्ति देती है। यह उन्हें इस बात की जिम्मेदारी लेने में समर्थ बनाती है कि उनका समाज किस प्रकार कार्य-निष्पादन कर रहा है और उन्हें अपनी सरकार के साथ संगठित तरीके से बात करने की छूट देती है। भारत में भी, यह क्षेत्रक तेज गति से उभर रहा है।

2.9.2 चूंकि भारत में लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक के संगठनों के पास सूचना एकत्र करने और उसका प्रसार करने के लिए कोई शीर्ष संगठन (कोई फेडरेशन अथवा यूनियन) नहीं है, इसलिए उनकी संख्या अथवा उनके क्रियाकलापों के क्षेत्र के रूप में उनके कार्यों के पैमाने को आंकना बहुत कठिन है। जैसाकि पहले बताया गया है, इस प्रकार के दो मिलियन से अधिक संगठन हैं, जो देश में समितियां/न्यास अधिनियमों के तहत पंजीयित हैं। इनमें अत्यधिक विविध प्रकार के युवा क्लब, महिला मंडल, प्राइवेट स्कूल, वृद्ध गृह और अस्पताल शामिल हैं। यह अनुमान लगाना बहुत कठिन है कि इनमें से कितने वास्तव में कार्य कर रहे हैं। हाल के वर्षों में, सरकारी संगठनों, जैसे डी.आर.डी.ए. और जिला स्वास्थ्य सोसाइटी को भी समितियों के रूप में पंजीयित किया गया है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, कापार्ट और सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा रखे गए आंकड़ों, आदि से पता चलता है कि वे देश में

[6]वायस आफ अमेरिका न्यूज, 25 मई, 2007

अनुमानत: 10,000 विविध स्वैच्छिक संगठनों का निधिपोषण करते रहे हैं। 1994 में एक सरकारी सर्वेक्षण (आर्थिक संगणना, 1994) में यह अनुमान लगाया गया था कि इनमें से साठ प्रतिशत संगठन चार राज्यों, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में संकेन्द्रित थे[7] ।

2.9.3 इस बात का अनुमान लगाना भी कठिन है कि इस क्षेत्रक द्वारा संसाधनों की कितनी मात्रा का उपयोग किया जा रहा है। 31.3.2006 को 32,144 एसोसिएशनें विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम, 1976 के तहत पंजीयित की गई थीं, जिनमें से 18,570 संगठनों ने रिपोर्ट दी थी कि उन्हें वर्ष 2005-06 के दौरान 7,877.57 करोड़ रुपए का विदेशी अभिदाय प्राप्त हुआ था (श्रोत: वार्षिक रिपोर्ट, 2005-06, गृह मंत्रालय, भारत सरकार)। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों ने बहुत अधिक स्कीमें शुरू की हैं, जो स्वैच्छिक कार्य का निधिपोषण करती हैं (योजना आयोग द्वारा जनवरी 2002 में तैयार की गई 10वीं पंचवर्षीय योजना के लिए स्वैच्छिक कार्य सम्बन्धी संचालन समिति की रिपोर्ट)। गैर-सरकारी क्षेत्रक इन सरकारी विभागों और अभिकरणों से, जिनमें द्विपक्षीय और बहुपक्षीय एजेंसियों द्वारा निधिपोषित बड़ी विकास परियोजनाएं शामिल हैं, बहुत अधिक धन प्राप्त करता है (वर्ष 2000-01 के दौरान 7,000 करोड़ रुपए प्राप्त होने का अनुमान है)। इसके अलावा, भारत में स्वैच्छिक कार्य करने और वैयक्तिक रूप से देने की लम्बी परम्परा थी। गैर-सरकारी क्षेत्रक को इस श्रोत से भी काफी अधिक प्राप्ति होती है। वर्ष 2001-02 में पी.आर.आई.ए. द्वारा लोकोपकार के बारे में किए गए सर्वेक्षण से पता चला था कि भारत में इस विशाल और विविधतापूर्ण सिविल सोसाइटी क्षेत्रक का कुल वार्षिक परिव्यय कुल मिलाकर 20,000 करोड़ रुपए प्रति वर्ष हो सकता है।

2.9.4 सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं का यह विशाल जाल (नेटवर्क) बहुत से मुख्य सरकारी नीतिगत उद्देश्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है:-

(i) यह उत्पादकता और प्रतियोगिता-क्षमता को बढ़ाने में सहायता दे सकता है,

(ii) यह समावेशी सम्पत्ति सृजन में योगदान दे सकता है,

(iii) सरकार की लोक-केन्द्रस्थता को बढ़ा सकता है।

2.10 स्वैच्छिक क्षेत्रक – इसका वर्गीकरण

2.10.1 तीसरा क्षेत्रक/सिविल सोसाइटी संगठन पारस्परिक सम्बद्धता, सामान्य कार्यपद्धति और नेटवर्किंग के जरिए दो अथवा उससे अधिक व्यक्तियों के बीच सहयोग को बढ़ावा देते हैं। लोकतंत्र स्वाभाविक रूप से ऐसे सहयोगात्मक आचरण को प्रोत्साहित करता है। भारत का संविधान सुस्पष्ट रूप से "बोलने

[7]http://www.pria.org/showarticles.php ?articleid=6&allow=1

और विचारों को अभिव्यक्त करने और एसोसिएशनें और यूनियनें बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार" को अनुच्छेद 19(1) के अन्तर्गत अपने नागरिकों के मूल अधिकारों में से एक अधिकार मानता है और इसलिए सिविल सोसाइटी समूह और सामुदायिक संगठन का बनाने को प्रोत्साहन देता है।

2.10.2 आर्थिक विकास के मौजूदा माडल में, स्वैच्छिक/सिविल सोसाइटी क्षेत्रक को न्यायसंगत, संधारणीय और समावेशी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक प्रमुख और महत्वपूर्ण खिलाड़ी माना गया है। विकास के राजकीय और मार्केट के नेतृत्व वाले दोनों माडलों को अपर्याप्त पाया गया है और इस बात को अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में स्वैच्छिक क्षेत्रक को सक्रिय रूप से भाग लेने की आवश्यकता है। उन्हें अब प्रगति के भागीदार समझा जाता है। सिविल सोसाइटी संगठन राज्य और मार्केट दोनों के रूढ़िगत स्थान से बाहर कार्य करते हैं, लेकिन उनमें इन दोनों संस्थाओं को नागरिकों की जरूरतों और अधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने के लिए उनसे बातचीत करने, उन्हें मनाने और उन पर दबाव डालने की क्षमता है।

2.10.3 उस कानून के आधार पर, जिसके अन्तर्गत वे कार्य करते हैं और वे जिस प्रकार के क्रियाकलाप हाथ में लेते हैं, उसके आधार पर, हमारे देश के सिविल सोसाइटी संगठनों को मोटे रूप से निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) विशिष्ट प्रयोजनों के लिए बनाई गई पंजीयित समितियां

(ख) पूर्त संगठन और न्यास

(ग) स्थानीय पणधारी समूह, माइक्रो ऋण और बचत उद्यम, स्व-सहायता समूह

(घ) व्यावसायिक स्व-विनियमनकारी निकाय

(ङ) सहकारी समितियां

(च) ऐसे निकाय, जिनका कोई औपचारिक संगठनात्मक ढ़ांचा नहीं होता

(छ) सरकार द्वारा समर्थित तीसरे क्षेत्रक के संगठन

2.11 अन्य देशों में सामाजिक पूंजी/सिविल सोसाइटी संस्थाओं की कानूनी स्थिति

2.11.1 विश्व में सामाजिक पूंजी/तीसरे क्षेत्रक के संगठनों की कानूनी स्थिति भिन्न-भिन्न है।

2.11.1.1 संयुक्त राज्य अमेंरिका के कानूनों के तहत लाभ-निरपेक्ष संगठन/पूर्त संस्थाएं बनाने का अधिकार एक बुनियादी अधिकार समझा जाता है और वह सरकारी अनुमोदन पर निर्भर नहीं करता।

इसलिए संगठन लाभ-निरपेक्ष हैसियत का दावा करने और कर सुविधांए प्राप्त करने के लिए, जिनके लिए वे हकदार हैं, अपने आपको किसी सरकारी प्राधिकरण के पास पंजीयित कराने के लिए बाध्य नहीं है। इस श्रेणी में लगभग 7,50,000 संगठन आते हैं; अमेरिका के लाभ-निरपेक्ष क्षेत्रक का लोक-लाभ सेवा भाग 1996 में 443 बिलियन डालर खर्च कर रहा था। यदि संगठनों का यह समूह एक राष्ट्र होता, तो इसकी अर्थव्यवस्था दस राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को छोड़ कर सबसे बड़ी होती, यहां तक कि आस्ट्रेलिया, भारत, मेक्सिको और नीदरलैंड की अर्थव्यवस्था से भी बड़ी होती। इसके अलावा, यदि इसमें उस स्वैच्छिक श्रम को जोड़ दें, जिसका उपयोग इन संगठनों द्वारा किया जाता है, तो अमेरिका में इन संगठनों के कुल आर्थिक क्रियाकलापों का व्यय 80-100 बिलियन डालर और बढ़ जाएगा[8]।

2.11.1.2 यू.के. के कानून भी सामाजिक पूंजी/तीसरे क्षेत्रक के संगठनों के लिए अनुकूल वातावरण मुहैया करते हैं। इंग्लैंड और वेल्ज़ में पूर्त संस्थाओं का पंजीयन अनिवार्य है, जब तक कि पंजीयन से विशिष्ट रूप से छूट प्राप्त न हो। पूर्त आयुक्त द्वारा उनका पर्यवेक्षण और विनियमन करने के लिए अन्य प्रबन्ध पहले से मौजूद हैं। इनके उदाहरणों में विश्वविद्यालय, अनुरक्षित स्कूल, संग्रहालय और वीथियां (गैलरीज़) शामिल हैं। किसी पूर्त संस्था को भी पंजीयन से छूट प्राप्त है, यदि उसके पास (क) स्थाई विन्यास न हो, (ख) किसी भूमि (इमारतों सहित) का उपयोग अथवा अधिभोग न हो; (ग) सभी श्रोतों से होने वाली उसकी वार्षिक आय एक हजार पाउंड से अधिक न हो।

2.11.1.3 पंजीयन का अर्थ यह है कि जब तक संगठन पूर्त संस्थाओं के सरकारी रजिस्टर में बना रहेगा, उसे कानूनी रूप से एक पूर्त संस्था समझा जाएगा और उसे आन्तरिक राजस्व जैसी एजेंसियों द्वारा पूर्त संस्था माना जाएगा।

2.12 सिविल सोसाइटी क्षेत्रक ने पिछले छ: दशकों में गांवों में छोटी पुस्तकालय क्लबों और स्कूलों से, छोटे कस्बों में चेरिटी गृहों और शिक्षा संस्थाओं तक, महानगरों में काम करने वाली बड़ी गैर-सरकारी इकाइयों और वहां से बड़े बजट वाले निगम प्रतिष्ठानों तक लम्बी छलांग लगाई है। इसने प्रारम्भिक शिक्षा, ग्रामीण प्रौद्योगिकी के विस्तार, प्राथमिक स्वास्थ्य परिचर्या और शहरी विकास के मुद्दों जैसे क्षेत्रों में सरकार के प्रयासों की अनुपूर्ति की है। अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, हमारे देश में तीसरा क्षेत्रक तेजी से विस्तार के मार्ग पर बढ़ रहा प्रतीत होता है; वह पेय जल की आपूर्ति, भू-संरक्षण, बच्चों की देखभाल, लैंगिक समानता, कौशल प्रशिक्षण, उद्यमशीलता विकास, माइक्रो वित्त, आदि जैसे लोगों के सरोकार के और बहुत से मुद्दों पर सकारात्मक योगदान देने का प्रयास कर रहा है। इन संगठनों को अपनी और अधिक संवृद्धि के लिए जिस चीज की आवश्यकता है, वह है समर्थन का वातावरण।

[8]लेस्टर एम. सेल्मन - नान-प्राफिट आर्गनाइजेंशन्स - आमेरिकाज़ इनविज़िबल सेक्टर (सेंटर फार सिविल सोसाइटी स्टडीत, जान हापकिन्स यूनिवर्सिटी)

3

समितियां, न्यास/पूर्त संस्थाएं, वक्फ और विन्यास

3.1 कानूनी और संस्थात्मक ढांचा

3.1.1 कानूनी सन्दर्भ

3.1.1.1 भारत में समितियों, न्यासों, वक्फों और अन्य विन्यासों से सम्बन्धित कानून को तीन स्थूल समूहों में रखा जा सकता है:

(i) समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860 और 1947 के बाद उसमें विभिन्न राज्यों द्वारा किए गए संशोधनों के तहत पंजीयित समितियां;

(ii) विशुद्ध रूप से धार्मिक और पूर्त कार्य करने वाली समितियां, जो धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863; पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920; और वक्फ अधिनियम, 1995 और इसी प्रकार के अन्य राज्य अधिनियमों के अन्तर्गत पंजीयित हों;

(iii) भारतीय न्यास अधिनियम, 1882; पूर्त विन्यास अधिनियम, 1890; बम्बे लोक न्यास अधिनियम, 1950; और इसी प्रकार के अन्य राज्य अधिनियमों के अन्तर्गत पंजीयित न्यास और पूर्त संस्थाएं।

इन अधिनियमितियों की मुख्य विशेषताओं की जानकारी अनुलग्नक III(1) में तालिका में दी गई हैं।

3.1.1.2 कानून की आवश्यकताओं को पूरा करने के अलावा, जिनकी सूची अनुलग्नक III(1) की तालिका में दी गई है, पूर्त संगठनों के लिए यह भी जरूरी है कि वे कानून के उन उपबन्धों का पालन करें, जो उनके कार्य के क्षेत्रों में लागू होते हैं। उदाहरण के लिए जो संगठन स्वास्थ्य क्षेत्रक में काम करते हैं, उनके लिए उस क्षेत्रक में लागू कानूनों का पालन करना जरूरी है। इसी प्रकार, पर्यावरण सुरक्षा के बारे में कार्य करने वाले संगठनों को जल (प्रदूषण का निवारण और नियंत्रण) अधिनियम, 1981; और वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980, आदि का पालन करना होगा।

3.1.1.3 समितियां

3.1.1.3.1 इंग्लिश लिटरेरी ऐण्ड साइंटिफिक इंस्टिट्यूशन्स एक्ट, 1854 के माडल पर, भारत में समितियां पंजीयन अधिनियम बनाया गया था। 19वीं शताब्दी में मध्य में, 1857 की घटना के समय के आस-पास,

देश में राजनीति, साहित्य, कला और विज्ञान के समकालीन मुद्दों पर बहुत से संगठन और समूह स्थापित किए गए थे। उपर्युक्त कानून आंशिक रूप से ऐसे संगठनों को कानूनी स्थिति प्रदान करने के लिए और आंशिक रूप से औपनिवेशिक सरकार द्वारा उन संगठनों पर नजर रखने के लिए बनाया गया था। किन्तु यह कानून अनुचित रूप से हस्तक्षेप करने वाला बिल्कुल नहीं था और यह उन संगठनों/समितियों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करता था, जो सरकार के पास पंजीयित कराना पसन्द करती थीं।

समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत समितियां बनाने का प्रयोजन

यह अधिनियम साहित्यिक, वैज्ञानिक अथवा पूर्त प्रयोजन के लिए अथवा किसी ऐसे प्रयोजन के लिए, जिसका वर्णन अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत किया गया है, कोई समिति बनाने की व्यवस्था करता है। धारा 20 के अनुसार, निम्नलिखित समितियां इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीयित की जा सकती हैं:

> *"पूर्त समितियां, सैनिक अनाथ निधियां अथवा भारत के बहुत-से महाप्रान्तों में स्थापित समितियां, विज्ञान, साहित्य अथवा ललित कलाओं के संवर्धन, उपयोगी ज्ञान के प्रसार (राजनैतिक शिक्षा के प्रसार) के लिए स्थापित समितियां, पुस्तकालयों अथवा वाचनालयों की स्थापना और अनुरक्षण करने के लिए जो सदस्यों के सामान्य उपयोग के लिए हों अथवा आम लोगों के लिए खुलें हों, अथवा सार्वजनिक संग्रहालयों और चित्रों और अन्य कलाकृतियों की गैलरियों, प्रकृति विज्ञान, यांत्रिक और दार्शनिक आविष्कारों, उपकरणों और डिजाइनों के संग्रहालयों की स्थापना करने वाली समितियां"*

3.1.1.3.2 बहुत से राज्यों ने ऐसी समितियों के पंजीयन और पर्यवेक्षण के लिए अलग प्राधिकरणों की स्थापना की थी। अधिनियम के अनुसार, कोई भी सात व्यक्ति, जो संगम ज्ञापन के हस्ताक्षरकर्त्ता हों, समिति पंजीयित करा सकते हैं। ज्ञापन में समिति का नाम, उसके उद्देश्य, ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों और इसके अलावा पंजीयन होने पर गठित की जाने वाली प्रबन्ध समिति के सदस्यों के नाम, उनके पते और व्यवसाय, शामिल होने चाहिएं। संगम ज्ञापन के साथ समिति के नियमों और विनियमों की एक प्रति होनी चाहिए - इसमें सदस्य बनाने और सदस्यों को हटाने की प्रकिया, प्रबन्ध निकाय बनाने की प्रक्रिया, बैठकों के संचालन, पदाधिकारियों के निर्वाचन, उन्हें हटाने की प्रक्रिया, वार्षिक महासभा की बैठक संचालित करने की प्रक्रिया, आदि का व्योरा होना चाहिए। समिति की सदस्यता उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए खुली (अथवा आमंत्रण द्वारा) रखी जानी चाहिए, जो उसके लक्ष्यों और उद्देश्यों का समर्थन करता हो; सदस्यता के लिए शुल्क लिया जा सकता है। यद्यपि समिति दावा कर सकती है और समिति पर दावा किया जा सकता है, लेकिन सदस्यों की देनदारी सीमित है, क्योंकि किसी भी डिक्री को समिति के सदस्यों

की निजी परिसम्पत्तियों पर लागू नहीं किया जा सकता। समिति का अस्तित्व निरन्तर होता है और उसकी एक सामान्य मुद्रा (सील) होती है, और वह न उसके नियमों में यथानिर्धारित पदाधिकारी के नाम से दावा कर सकती है और उसी पदाधिकारी के नाम से उस पर दावा किया जा सकता है। इससे वह सार्वजनिक जीवन में प्रभावकारी ढंग से भाग ले सकती है।

3.1.1.3.3 लोकतंत्र का एक सशक्त भाव समूचे अधिनियम में प्रवाहित है। एसोसिएशन के प्रयोजन में कोई परिवर्तन, विस्तार अथवा न्यूनन अथवा विलय के बारे में कोई निर्णय केवल तभी किया जा सकता है, जब ऐसे किसी प्रस्ताव का अनुमोदन इस प्रयोजन के लिए यथोचित नोटिस देने के बाद आयोजित की गई विशेष बैठक में उपस्थित सदस्यों में से तीन-पंचम सदस्यों द्वारा किया जाए। समिति के विघटन के लिए भी, इसी प्रकार के अनुमोदन की आवश्यकता होती है। समिति द्वारा रजिस्ट्रार के पास दायर किए गए सभी दस्तावेजों को किसी भी व्यक्ति द्वारा देखा जा सकता है। इससे पारदर्शिता और लोकतांत्रिक नियंत्रण की व्यवस्था होती है। समिति की सम्पत्ति को क्षति पहुंचाने के दोषी सदस्यों को कैद अथवा जुर्माने का दण्ड दिया जा सकता है।

3.1.1.3.4 1947 तक इस अधिनियम में कोई मुख्य परिवर्तन नहीं हुआ था; पंजीयन अधिकांशत: एक स्वैच्छिक प्रयास बना रहा। इस अवधि में गठित की गई अधिकतर समितियों की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं थी और वे मुख्य रूप से इन समितियों की स्थापना करने वाले सदस्यों के मजबूत इरादे और अध्यवसाय से चल रहीं थीं। कभी-कभी उन्हें किसी श्रोत से वित्तीय सहायता प्राप्त हो जाती थी, किन्तु इन समितियों की स्थिति कुल मिला कर उन संगठनों की तुलना में कुछ भी नहीं थी, जिनकी स्थापना भारी धन-सम्पत्ति और भू-सम्पत्ति के विन्यास के साथ न्यासों के रूप में की गई थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, 1948/50 के आदेशों के अपनाए जाने के परिणामस्वरूप, यह अधिनियम संविधि के रूप में बना रहा, लेकिन "समितियां" राज्य सूची के अन्तर्गत होने के कारण, यह राज्य सरकारों की विधायी क्षमता के अन्तर्गत आ गया।

3.1.1.3.5 हालांकि, मूल अधिनियम ऐसी संस्थाओं के कार्यों में राज्य द्वारा किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किए जाने के बारे में बिल्कुल स्पष्ट था, सिवाय वार्षिक विवरण दाखिल करने के नेमी मामलों में; लेकिन बहुत से राज्य विधानमंडलों ने (स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के संशोधनों के जरिए) इन समितियों के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार और अकरण के मामलों में कार्रवाई करने के लिए व्यापक सरकारी नियंत्रण स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़े। कानूनी उपायों में राज्य द्वारा जांच और अन्वेषणा करने; पंजीयन और उसके परिणामस्वरूप समितियों का विघटन करने की शक्ति; शासी निकाय का अधिक्रमण करने; प्रशासक की नियुक्ति करने, विघटन; और मृतप्राय संगठनों का नाम काटने की शाक्ति शामिल थी। इस विषय के बारे में राज्य सरकारों के विधानों में बहुत भिन्नता थी। कनार्टक अधिनियम की धारा 25 के

तहत और मध्य प्रदेश अधिनियम की धारा 32 के अन्तर्गत, रजिष्ट्रार स्वयं अपने आप अथवा शासी निकाय के सदस्यों की बहुसंख्या के आवेदन पर अथवा समिति के एक-तिहाई से अन्यून सदस्यों के आवेदन पर समिति के गठन, कार्यचालन और उसकी वित्तीय स्थिति की जांच कर सकता है अथवा जांच करने का प्राधिकार दे सकता है।

3.1.1.3.6 कुछ अन्य राज्य, जिन्होंने मूल अधिनियम में प्रमुख संशोधन किए हैं, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश हैं। संशोधन मुख्यत: इन चार मुद्दों के बारे में हैं:

1. प्रयोजन, जिसके लिए समिति बनाई जा सकती है
2. संगम ज्ञापन, उप-नियमों में परिवर्तन, सम्पत्ति और निवेश के अन्य-संक्रमण, विलय और निकाय के विघटन के बारे में विनियामक शाक्तियां
3. वार्षिक विवरणियां प्रस्तुत करने के बारे में शाक्तियां
4. अधिक्रमण, विघटन अथवा पंजीयन के रद्दकरण के बारे में राज्य सरकार की शाक्तियां

3.1.1.3.7 1860 के मूल अधिनियम की तुलना में, राज्यों के संशोधनों ने उन प्रयोजनों की सूची का, जिनके लिए समितियां बनाई जा सकती थीं, काफी अधिक विस्तार कर दिया है और समितियों के कार्यों में राज्यों के हस्तक्षेप के दायरे को भी बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए, कर्नाटक का अधिनियम विज्ञान, साहित्य, अथवा शिक्षा के लिए ललित कलाओं को बढ़ावा देने, उपयोगी जानकारी के प्रसार के मूल प्रयोजनों से बहुत आगे चला गया है, और उसमें बहुत से क्रियकलाप शामिल हैं, जिनका सम्बन्ध प्राकृतिक संसाधनों और अत्यल्प अवसंरचनात्मक सुविधाओं जैसे भूमि, विद्युत, जल, वन, आदि के संरक्षण और उपयोग से है। इसी प्रकार, संगम-ज्ञापन में परिवर्तन, उप-नियमों, सम्पत्ति के अन्यसंक्रमण, निवेश, विलय और विघटन; वार्षिक विवरणियों के प्रस्तुत किए जाने; और अधिक्रमण, विघटन और पंजीयन के रद्द किए जाने के बारे में राज्य ने व्यापक शक्तियां प्राप्त कर ली हैं। मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और केरल तीन अन्य राज्य हैं, जिन्होंने इस अधिनियम को एक मजबूत राज्य-केन्द्रित अधिनियम के रूप में बदल लिया है। राज्यों के कानूनों का एक विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण इस रिपोर्ट के अनुलग्नक III(2) में दिया गया है।

3.1.1.4 न्यास, धार्मिक विन्यास और वक्फ

3.1.1.4.1 न्यास, विन्यास और वक्फ, सुनिश्चित पूर्त और धार्मिक प्रयोजनों के लिए समर्पित सम्पत्ति के प्रबन्ध/ बन्दोबस्त की पद्धति के रूप में कानूनी रूप से स्थापित किए जाते हैं। उनके निगमन, संगठनात्मक

ढांचे और कार्यों का वितरण और शक्तियों का विनियमन उस विशिष्ट कानून के उपबन्धों द्वारा किया जाता है, जिसके अन्तर्गत वे पंजीयित किए जाते हैं। मोटे रूप से, ऐसे संगठन निम्नलिखित पांच तरीकों से एक कानूनी इकाई का रूप धारण कर सकते हैं:

1. सम्बन्धित राज्य लोक न्यास अधिनियम, जैसे बम्बई पब्लिक ट्रस्ट्स अधिनियम, 1950; गुजरात लोक न्यास अधिनियम, राजस्थान लोक न्यास अधिनियम, आदि के अन्तर्गत पूर्त आयुक्त/ पंजीयन महानिरीक्षक के समक्ष औपचारिक पंजीयन के जरिए;
2. सिविल प्रकिया संहिता की धारा 92 और 93 के तहत किसी न्यास का प्रबन्ध करने के लिए स्कीमें निर्धारित करने के लिए दीवानी न्यायालयों के हस्तक्षेप की प्रार्थना करके;
3. पंजीयन अधिनियम, 1908 के तहत लोक पूर्त न्यास का न्यास विलेख पंजीयित करके;
4. किसी संगठन को उन पूर्त न्यासों और धार्मिक विन्यासों की सूची में अधिसूचित करके, जिनका पर्यवेक्षण राज्य के विन्यास आयुक्त द्वारा अथवा पूर्त विन्यास अधिनियम, 1980 के अन्तर्गत अथवा हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यासों सम्बन्धी अन्य राज्य कानूनों के अन्तर्गत बनाई गई प्रबन्ध समिति द्वारा किया जाता है; और
5. वक्फ का निर्माण करके, जिसका प्रबन्ध वक्फ अधिनियम, 1995 के उपबन्धों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

3.1.1.4.2 न्यास

3.1.1.4.2.1 न्यास एक विशेष प्रकार का संगठन है, जो वसीयत से उत्पन्न होता है। वसीयत करने वाला व्यक्ति किसी सम्पत्ति के स्वामित्व का अनन्य रूप से अन्तरण किसी विशेष प्रयोजन के लिए इस्तमाल किए जाने के लिए करता है। यदि प्रयोजन कुछ विशेष व्यक्तियों को लाभ पंहुचाना हो, तो यह एक निजी (प्राइवेट) न्यास बन जाता है और यदि इसका सरोकार सामान्य लोगों अथवा समुदाय के किसी प्रयोजन के लिए हो तो इसे लोक (पब्लिक) न्यास कहा जाता है।

3.1.1.4.2.2 भारत में न्यासों के बारे में पहला कानून 1882 में बना, जिसे भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 कहा जाता है; यह बुनियादी रूप से निजी न्यासों के लिए था।

3.1.1.4.2.3 संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 ने भी अपनी धारा 92 और 93 के जरिए उभरते हुए पूर्त परिदृश्य को ध्यान में लिया। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अनुसार, किसी न्यास का

प्रबन्ध करने की स्कीमें निर्धारित करने के लिए सिविल न्यायालयों से हस्तक्षेप की प्रार्थना की जा सकती है, यदि न्यास की मूल शर्तों के उल्लंधन का आरोप हो। यह कार्य महाधिवक्ता द्वारा अथवा दो अथवा दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों द्वारा वाद दायर करके किया जा सकता है, जो न्यास से हितबद्ध हों। ऐसे वादों का निर्णय करते समय, न्यायालय को न्यास के मूल प्रयोजनों में परिवर्तन करने और ऐसे न्यासों की सम्पत्ति और आय को, न्यायालय द्वारा निर्धारित तरीके से प्रभावकारी उपयोग किए जाने के लिए किसी अन्य व्यक्ति अथवा न्यासियों को निहित करने की शक्ति प्राप्त है। धारा 93 कलेक्टर को राज्य सरकार के पूर्वानुमोदन से जिले में इन शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति प्रदान करती है।

3.1.1.4.2.4 भारत के संविधान की अनुसूची 7 के अन्तर्गत "न्यास और न्यासी" विषय का उल्लेख समवर्ती सूची की प्रविष्टि संख्या 10 में है। "पूर्त कार्य और पूर्त संस्थाओं, पूर्त और धार्मिक विन्यास और धार्मिक संस्थाओं" का उल्लेख इस सूची की प्रविष्टि संख्या 28 में है। इस विषय पर पहले कानून तत्कालीन बम्बई राज्य द्वारा 1950 में बनाया गया था। इसका नाम बम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 था, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक, धार्मिक अथवा पूर्त प्रयोजनों अथवा इन दोनों प्रयोजनों के लिए अभिव्यक्त अथवा आन्वयिक न्यास और धार्मिक अथवा पूर्त प्रयोजन अथवा दोनों के लिए बनाई गई और समिति पंजीयन अधिनियम, 1860 धारा 2(13) के अन्तर्गत पंजीयित किसी समिति के बारे में कार्रवाई करना था।

3.1.1.4.2.5 जब भूतपूर्व बम्बई प्रान्त 1960 में महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों के रूप में विभाजित किया गया तो इन दोनों राज्यों में अपने अधिकार-क्षेत्रा में पड़ने वाले न्यासों और अन्य पूर्व संस्थाओं को विनियमित करने वाले इस कानून को अपना लिया। मध्य प्रदेश और राजस्थान, देश के दो अन्य राज्य हैं, जिन्होनें स्वयं अपने लोक न्यास कानून बनाए हैं। अन्य राज्यों में ऐसे विशिष्ट लोक न्यास विधान नहीं हैं। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल में मन्दिर-सम्पत्तियों का प्रबन्ध करने के लिए अपने अलग धार्मिक विन्यास अधिनियम हैं। बहुत से राज्यों में विशेष न्यासों/पूर्व संस्थाओं का प्रबन्ध करने के लिए विशिष्ट कानून हैं। अन्य सभी मामलों में, पूर्व कार्यों के बारे में कार्रवाई करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 लागू होती है।

3.1.1.4.3 धार्मिक विन्यास

3.1.1.4.3.1 धार्मिक विन्यास और वक्फ उन न्यासों के रूपभेद हैं, जो धार्मिक प्रयोजनों के लिए बनाए जाते हैं, जैसे हिन्दुओं और मुसलमानों में आराध्य देवता, पूर्त कार्यों और धर्म से सम्बन्धित समारोहों के लिए सहायता प्रदान करना । लोक न्यासों के विपरीत, यह जरूरी नहीं कि उनका आविर्भाव औपचारिक पंजीयन से हुआ हो, और न ही वे विशिष्ट रूप से दाता, न्यासी और लाभभोगी के बीच त्रिकोणीय सम्बन्ध

होने पर जोर देते हैं। धार्मिक विन्यास सम्पत्ति को धार्मिक प्रयोजनों के लिए समर्पित करने से बनते हैं। मुस्लिम सम्प्रदाय में समनुरूप कार्य के परिणामस्वरूप वक्फों का निर्माण होता है। वक्फ सम्पत्ति को बांध लेते हैं और भोगाधिकार लोगों को दे देते हैं।

3.1.1.4.3.2 इस दिशा में पहला विधान उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आया। धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 बुनियादी रूप से ऐसे निजी विन्यासों सम्बन्धी कानून था, जो एक वसीयत के अन्तर्गत सम्पत्ति को कुछ पूर्व-निर्धारित लाभभोगियों के लिए न्यासी/न्यासियों के प्रबन्धाधीन रख देती है। ब्रिटिश शासन के बाद के भाग में, बहुत जमींदारों और व्यापारियों ने ऐसे विन्यासों का निर्माण किया। बहुत से मामलों में, समय बीतने के साथ, ये प्रबन्ध धुंधले हो गए। सरकार ने पूर्त विन्यास अधिनियम, 1890 नामक एक नया कानून ला कर हस्तक्षेप किया। इस अधिनियम ने पूर्त विन्यासों के कार्यकरण की निगरानी करने के लिए प्रत्येक राज्य में कोषाध्यक्ष का एक पद स्थापित करके स्थिति में कुछ विनियमन पैदा किया। यह पूर्त कार्यों पर राज्य के विनियमन की दिशा में एक पहला कदम था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के समय तक, देश के बहुत से मन्दिरों और मठों ने काफी अधिक भू-सम्पत्ति और धनराशि प्राप्त कर ली थी। इसके परिणामस्वरूप पड़ोसी इलाकों में सामाजिक तनाव की घटनाएं और दीवानी विवाद पैदा होने लगे। इस स्थिति से निपटने के लिए, सरकार ने "पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920" के रूप में एक नया कानून बनाया, जिसने ऐसे धार्मिक निकायों के अस्तित्व को सामाजिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए बनाए गए विन्यास न्यासों से भिन्न तत्वों के रूप में मान्यता दी। ऐसे निकायों के न्यासियों को न्यास की आय और मूल्य को प्रकट करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया। दीवानी अदालतों को सम्पत्ति के प्रबन्ध के सम्बन्ध में स्वत: सक्रिय होने की शक्तियां प्रदान की गईं। लेकिन तब सरकार द्वारा अपने पदाधिकारियों, जैसे डिप्टी कमिश्नरों/कलेक्टरों और अन्य पदाधिकारियों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने का विचार नहीं था।

3.1.1.4.3.3 1947 के बाद यह स्थिति बदल गई। धन के दुरूपयोग को रोकने और ऐसी धार्मिक और पूर्त संस्थाओं के प्रबन्धन के लिए एक एकसमान संगठनात्मक ढांचा सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, बहुत सी राज्य सरकारों ने स्वयं अपने विन्यास अधिनियम बनाए और सरकारी अधिकारियों को न्यासियों और प्रबन्धकों के रूप में नियुक्त करके प्रबन्ध वस्तुत: अपने हाथ में ले लिया। इनके उदाहरण हैं, मद्रास हिन्दू धार्मिक और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1951; ट्रावनकोर-कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थाएं अधिनियम, 1950, बोध गया मन्दिर अधिनियम, 1949; आन्ध्र प्रदेश पूर्त और हिन्दू धार्मिक संस्थाएं और विन्यास अधिनियम, 1966; और कर्नाटक हिन्दू धार्मिक संस्थाएं और पूर्त विन्यास अधिनियम, 1997।

3.1.1.4.3.4 भारत का संविधान धार्मिक कार्यों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता को अपने नागरिकों का एक मूलभूत अधिकार मानता है। अनुच्छेद 26 के अनुसार "सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अध्यधीन प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी भाग को:

(क) धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाएं स्थापित करने और उनका अनुरक्षण करने;

(ख) धर्म के मामलों में उसके अपने कार्यों का प्रबन्ध करने;

(ग) चल और अचल सम्पत्ति प्राप्त करने; और

(घ) ऐसी सम्पत्ति का प्रबन्ध कानून के अनुसार करने का अधिकार होगा।"

यद्यपि उपर्युक्त उपबन्ध धार्मिक प्रयोजनों के लिए न्यास/पूर्त संस्थाएं स्थापित करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है, किन्तु यह ऐसी सम्पत्ति का प्रबन्ध "कानून के अनुसार" करने की शर्त लगा देता है - अनुछेद 26(घ)।

3.1.1.4.4 भारत में वक्फ

3.1.1.4.4.1 भारत में मुस्लिम शासन के अन्तर्गत,वक्फ की धारणा को बहुत व्यापक रूप से कुरान द्वारा समर्थित परोपकार की भावना के साथ जुड़ा हुआ समझा जाता था। वक्फ का अभिप्राय: है, किसी मुसलमान द्वारा चल अथवा अचल अथवा मूर्त या अमूर्त सम्पत्ति का खुदा को इस आधार पर विन्यास कि अन्तरण से जरूरतमन्द को लाभ होगा। एक कानूनी लेनदेन के रूप में वकीफ (भुगतान करने वाला) विन्यास विलेख में वक्फ (पूर्त न्यास) का प्रबन्ध करने के लिए अपने आपको अथवा किसी अन्य विश्वस्त व्यक्ति को मुतवल्ली (प्रबन्धक) नियुक्त करता है।

3.1.1.4.4.2 चूंकि इसका आशय खुदा को सम्पत्ति समर्पित करना है, इसलिए वक्फ विलेख अपरिवर्तनीय और चिरस्थायी होता है।

3.1.1.4.4.3 इस्लाम की भावना के अनुरूप, भारतीय मुसलमान शासकों ने मस्जिदों, मकबरों, यतीमखानों, मदरसों, आदि के अनुरक्षण के प्रयोंजन से बनाए गए वक्फों को बड़ी उदारता से सम्पत्ति, जैसे भूमि और उसके राजस्व अधिकार समर्पित किए थे। कबरिस्तान बनाने के लिए भूमि वक्फ में दी जा सकती थी। बहुत से मामलों में, किसी वक्फ को दान इस्लाम के सिद्धान्तों का प्रसार करने के लिए दिए गए थे। मुस्लिम शासन के अधीन, काजियों के पर्यवेक्षण में इस्लामी अदालतों की मौजूदगी ने यह सुनिश्चित किया कि मुतवल्ली अपने कर्त्तव्यों का पालन उचित रूप से करें। वक्फ की सम्पत्ति के दुष्प्रबन्ध को उन पर किए गए विश्वास का उल्लंधन करना समझा जाता था, जिसके लिए उन्हें उपयुक्त रूप से दंड दिया जाता था।

3.1.1.4.4.4 चौदहवीं शताब्दी में, सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने बहुत से मुतवल्लियों को कठोर रूप से दण्डित किया। अकबर ने शेख हुसैन द्वारा वक्फ के धन को गबन करने के आरोंपों की जांच करने के लिए एक जांच अधिकारी नियुक्त किया और उसे मुतवल्ली के पद से हटा दिया। आइने-अकबरी में एक धटना का वर्णन है, जब अकबर ने बहुत से काजियों को बरखास्त कर दिया था, जिन्होंने वक्फ भूमि के धारकों से रिश्वतें ली थीं[9]।

3.1.1.4.4.5 मुगल साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के बाद, बहुत लम्बे समय तक, वक्फ प्रशासन का नियंत्रण बहुत ढीला रहा। भारत में ब्रिटिश शासन के पहले दौर में, औपनिवेशिक हकूमत ने भी, विन्यासों पर नजर रखने के अलावा, इस मुद्दे की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उन्हें इस्लामी कानूनी पद्धति की जानकारी बहुत कम थी। 1857 के बाद, जब अंग्रेजों ने देश में कामन ला (सामान्य कानून) व्यवस्था का प्रसार करना शुरू कर दिया, तो उन्होंने वक्फों के ऊपर नियंत्रण करना शुरू कर दिया। उनका हस्तक्षेप अधिकतर वक्फ सम्पत्तियों के प्रबन्ध में भ्रष्टाचार के आरोपों पर था। 1857 के विद्रोह के तत्काल बाद, ब्रिटिश सरकार ने वक्फ सम्पत्तियों को, जैसे दिल्ली में जामा मस्जिद और फतेहपुरी मस्जिद को जब्त कर लिया उन्हें सरकार द्वारा 1863 में पूर्त और धार्मिक विन्यास अधिनियम बनाए जाने के बाद ही न्यासियों (मुतवल्लियों) को फिर से सौंपा गया। एक अन्य प्रथा, जिस पर ब्रिटिश सरकार ने जोर से प्रहार किया, वह थी, उन धनाढ्य मुसलमान परिवारों द्वारा पारिवारिक वक्फ बनाना था, जो अपनी सम्पत्ति को परिवार के अन्दर सुरक्षित रखना चाहते थे, ताकि बाद में उनकी गैर-जिम्मेदार सन्तान उसे बेच न दे। 1894 में, प्रीवी काउंसिल ने इन प्रयासों को परिवार को सम्पन्न बनाने के छिपे हुए तरीके बताया, और नोट किया कि परोपकार के लिए उनकी व्यवस्था इतनी भ्रामक है कि जब तक दाता परिवार की वंशावली बनी रहती है, तब तक गरीबों को वक्फ से एक रूपया भी पाने का अवसर प्राप्त नहीं होता।

3.1.1.4.4.6 इस विषय पर पहला विशिष्ट कानून 1913 में आया, जब ब्रिटिश सरकार ने "मुसलमान वक्फ वैधीकरण अधिनियम, 1913" अधिनियमित किया। उसके बाद, भारत में वक्फ प्रबन्धन को चुस्त-दरूस्त बनाने के लिए बहुत से कानून बनाए गए। 1913 से 1995 तक की अवधि में इस विषय पर बनाए गए महत्वपूर्ण कानूनों की सूची नीचे दी गई है:

(i) मुसलमान वक्फ वैधीकरण अधिनियम, 1913; (ii) मुसलमान वक्फ अधिनियम, 1923; (iii) बंगाल वक्फ अधिनियम, 1934; (iv) हैदराबाद विन्यास विनियम, 1939; (v) उत्तर प्रदेश मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1936; (vi) दिल्ली मुस्लिम वक्फ अधिनियम, 1943; (vii) बिहार वक्फ अधिनियम, 1947; (viii) बम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950; (ix) दरगाह ख्वाजा साहेब अधिनियम, 1955; (x) केन्द्रीय वक्फ अधिनियम,

[9]ऐसा एक विश्लेषण सुमन्त बनर्जी के "बियोण्ड नक्सलबाडी" में किया गया है।

1954 (xi) वक्फ संशोधन अधिनियम, 1959; (xii) उत्तर प्रदेश मुस्लिम अधिनियम, 1960; (xiii) दरगाह ख्वाजा साहेब वक्फ संशोधन अधिनियम, 1964; (xiv) वक्फ संशोधन अधिनियम, 1969; (xv) वक्फ संशोधन अधिनियम, 1984; (xvi) वक्फ अधिनियम, 1995

3.1.1.4.4.7 इस समय, भारत में वक्फ अधिनियम, 1995 के विभिन्न उपबन्धों के अन्तर्गत 3,00,000 वक्फों का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर और दरगाह ख्वाजा साहेब, अजमेर के सिवाय समूचे देश में लागू है। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रबन्ध के ढांचे में प्रत्येक राज्य में एक शीर्ष निकाय के रू में एक वक्फ बोर्ड होता है। प्रत्येक वक्फ बोर्ड एक न्यायिककल्प निकाय होता है, जिसे वक्फ सम्बन्धी विवादों को तय करने की शक्ति होती है। राष्ट्रीय स्तर पर, एक केन्द्रीय वक्फ परिषद् है, जो सलाहकार की हैसियत से काम करती है।

3.1.1.5 लाभ–निरपेक्ष कम्पनियां (कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 25)

3.1.1.5.1 कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 में ऐसे तंत्र की व्यवस्था की गई है, जिसके जरिए किसी एसोसिएशन को सीमित देनदारी वाली कम्पनी के रूप में पंजीयित किया जा सकता है, यदि वह एसोसिएशन वाणिज्य, कला, विज्ञान, धर्म अथवा किसी अन्य उपयोगी उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए बनाई गई हो और उसका उद्देश्य अपने लाभ/अपनी आय को अपने उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करना हो। इस उपबन्ध का उद्देश्य ऐसी एसोसिएशनों को निगम का व्यक्तित्व प्रदान करना है, लेकिन उसके साथ-साथ उन्हें बोझिल कानूनी आवश्यकताओं से छूट देना भी है। यह धारा इस प्रकार है -

"25(1) जहां केन्द्रीय सरकार की तसल्ली के लिए यह प्रमाणित हो जाए कि कोई एसोसिएशन-

वाणिज्य, कला, विज्ञान, धर्म, लोकोपकार अथवा किसी अन्य उपयोगी उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में बनाई जाने वाली है,

उसका इरादा अपने लाभ, यदि कोई हो, अथवा अन्य आय का उपयोग अपने उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए करने का, और अपने सदस्यों को कोई लाभाशं अदा न करने का है;

केन्द्रीय सरकार, लाइसेंस द्वारा, निवेश दे सकती है कि ऐसोसिएशन को, उसके नाम के आगे "लिमिटेड" अथवा "प्राइवेट लिमिटेड" शब्द जोड़े बिना, सीमित देनदारी वाली कम्पनी के रूप में पंजीयित किया जाए"।"

3.1.1.5.2 उपर्युक्त उपबन्ध के अन्तर्गत पंजीयित एसोसिएशन को सभी विशेषाधिकार प्राप्त होंगे और वह लिमिटेड कम्पनियों के सभी दायित्वों के अध्यधीन होगी। किन्तु, इन एसोसिएशनों को कम्पनी अधिनियम

के उन उपबन्धों से छूट प्राप्त होगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 25(6) के अन्तर्गत अधिसूचित किए जाएंगे। मौजूदा लिमिटेड कम्पनियों को भी धारा 25(3) के अन्तर्गत लाभ-निरपेक्ष कम्पनी के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इस उपबन्ध के अन्तर्गत पंजीयित कम्पनियां उन शर्तों और विनियमों के अधीन होगा, जो सरकार उपयुक्त समझती है और निदेश दिए जाने पर, उनके लिए यह जरूरी होगी कि वे इन शर्तों का समावेश अपने ज्ञापनों में करें। केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति भी प्राप्त है कि वह कम्पनी को अपनी बात कहने का अवसर देने के बाद, इस धारा के अन्तर्गत दिए गए पंजीयन को रद्द कर सकती है [धारा 25(7)] ।

3.1.1.5.3 इस उपबन्ध के अन्तर्गत पंजीयित लाभ-निरपेक्ष कम्पनियों को कम्पनी अधिनियम की धारा 25(6) के अन्तर्गत जारी अधिसूचना के जरिए इस अधिनियम के बहुत से उपबन्धों से छूट दी गई है, जिनमें अन्यों के साथ ये शामिल हैं:

- नामों, आदि के प्रकाशन से छूट (धारा 147);
- सार्वजनिक छुट्टियों वाले दिन अथवा काम के घंटों से भिन्न समय पर आम सभा की बैठक करने की छूट [धारा 166(2)];
- बैठक के नोटिस की अवधि को 21 दिनों के स्थान पर घटा कर 14 दिन करना [धारा 171(1)];
- आठ वर्षों के स्थान पर पिछले चार वर्ष की लेखा-पुस्तकें रखने की आवश्यकता [धारा 209(4क)];
- निदेशकों की संख्या बढ़ानें के लिए सरकार की अनुमति लेने की आवश्यकता से छूट [धारा 259];
- तीन महीनों के स्थान पर छः महीनों में एक बार बोर्ड की बैठक बुलाने की ढील (धारा 285) और उसकी गणपूर्ति में ढील (धारा 287);
- धन उधार लेने, धनराशि का निवेश करने अथवा ऋण देने के बारे में बोर्ड को परिचालन के जरिए फैसला लेने की क्षमता (धारा 292);
- बोर्ड के गठन में परिवर्तन के ब्योरे की जानकारी रजिस्ट्रार को देने की अपेक्षा से छूट (धारा 303);

- ऋण की राशि अथवा शेयरों की खरीद के कार्यों में, जो कम्पनी द्वारा सरकार की पूर्वानुमति के बिना किए जा सकते हैं, ढील (धारा 370 और 372)।

3.1.1.6 किसी न्यास, किसी सोसाइटी और धारा 25 कम्पनी के बीच के अन्तरों का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसाकि तालिका 3.1 में दिया गया है।

3.1.1.6.1 एक समिति बुनियादी रूप से साहित्य, ललित कलाओं, विज्ञान, आदि को बढ़ावा देने के कुछ सामान्य उद्देशयों के लिए सात अथवा सात से अधिक व्यक्तियों द्वारा बनाई गई एक एसोसिएशन है। हो सकता है कि शुरू में उसके पास कुछ परिसम्पत्ति हो अथवा न हो, लेकिन समय बीतने पर समिति परिसम्पत्तियां प्राप्त कर सकती है।

तालिका 3.1 : न्यास, समिति और धारा 25 की कम्पनी के बीच तुलना

	लोक न्यास	**समिति**	**धारा 25 की कम्पनी**
संविधि/विधान	बम्बई लोक न्यास अधिनियम, 1950 जैसे लोक न्यास अधिनियम	समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860	कम्पनी अधिनियम, 1956
अधिनियम का अधिकार क्षेत्र	वह सम्बन्धित राज्य, जहां पंजीयित हो	सम्बन्धित राज्य, जहां पंजीयित हो	सम्बन्धित राज्य, जहां पंजीयित हो
प्राधिकारी	पूर्त आयुक्त	समिति रजिस्ट्रार	कम्पनियों का रजिस्ट्रार
पंजीयन	न्यास के रूप में	समिति के रूप में (और महाराष्ट्र और गुजरात में चूक द्वारा न्यास के रूप में भी)	संगम ज्ञापन और अनुच्छेद
स्टाम्प शुल्क	न्यास विलेख विहित मूल्य के गैर-न्यायिक स्टाम्प पेपर पर निष्पादित किया जाना होता है	संगम ज्ञापन और नियमों तथा विनियमों के लिए किसी स्टाम्प पेपर की आवश्यकता नहीं होती	संगम ज्ञापन और अनुच्छेदों के लिए किसी स्टाम्प पेपर की आवश्यकता नहीं होती
पंजीयन के लिए आवश्यक व्यक्तियों की संख्या	कम से कम दो न्यासी, कोई उच्चतम सीमा नहीं	कम से कम सात व्यक्ति, कोई उच्चतम सीमा नहीं	कम से कम सात, कोई उच्चतम सीमा नहीं
प्रबंन्ध बोर्ड	न्यासी	शासी निकाय अथवा परिषद/ प्रबन्ध अथवा कार्यकारी समिति	निदेशक बोर्ड/प्रबन्ध समिति
प्रबन्ध बोर्ड में उत्तराधिकार की रीति	आम तौर पर नियुक्ति द्वारा	आम तौर पर महासभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचन	आम तौर पर साधारण महासभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचन

स्त्रोत : www.asianphilanthropy.org

किसी न्यास के मामले में, उसके निर्माण का वास्तविक आधार किसी परिसम्पत्ति/ सम्पत्ति का अस्तित्व है, जो वसीयत करने वाले द्वारा किसी विशेष प्रयोजन, सामाजिक अथवा धार्मिक, के लिए दी गई हो। पूर्त और धार्मिक संस्थाएं विशेष प्रकार के न्यास होती हैं, जिनका विशेष धार्मिक आशय होता है। वक्फ न्यास की एक अन्य किस्म है, जिसमें दाता मुसलमान होता है। वे विषय, जिनके बारे में कोई समिति, समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860 के तहत पंजीयित की जा सकती है, वही होते हैं, जिनके लिए न्यास भी बनाया जा सकता है। समिति, प्रथम दृष्टया, एक लोकतांत्रिक इकाई होती है, क्योंकि उसके संचालन में उसके सदस्यों (जिनकी संख्या कम से कम सात होती है) का दखल एकसमान होता है, जबकि किसी न्यास में, सम्पत्ति पर नियंत्रण पूरी तरह से न्यासियों के हाथ में रहता है और वसीयत की स्पष्टता पर निर्भर रहते हुए, ऐसा प्रबन्ध बहुत लम्बे समय तक बना रहता है। सरकार केवल तब हस्तक्षेप करती है, जब न्यासियों में परिवर्तन होता है अथवा जब न्यास इतना पुराना हो जाता है कि उसका प्रबन्ध मूल वसीयत के अनुबन्धों के अनुसार किया जाना होता है, अथवा न्यास के भ्रष्टाचार अथवा दुरूपयोग के आधार पर हस्तक्षेप किया जाता है।

3.1.17 व्यवसाय संध (ट्रेड यूनियन)

3.1.1.7.1 व्यवसाय संध अधिनियम, 1926 की धारा 2 के अनुसार, "व्यवसाय संध का अर्थ है एक संयोजन जो मुख्य रूप से कामगारों और नियोजकों के बीच अथवा कामगारों और कामगारों के बीच अथवा नियोजकों और कर्मचारियों के बीच सन्बन्धों का विनियमन करने, अथवा किसी व्यवसाय अथवा व्यापार प्रतिबन्धात्मक शर्तों लागू करने के लिए, अस्थाई अथवा स्थाई रूप से बनाया गया है और उसमें दो अथवा दो से अधिक व्यवसाय संधों की कोई फेडरेशन शामिल होती है।"

3.1.1.7.2 व्यवसाय संध अधिनियम का उद्देश्य उसके परिभाषित व्यवसाय संधों को कानूनी सहायता और सुरक्षा प्रदान करना है। किसी व्यवसाय संध को इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे संध द्वारा अपने उद्देश्यों, धनराशियों के उपयोग, सदस्यों की सूची रखने, अपने सदस्यों और कार्यकारी अधिकारियों की नियुक्ति के तरीके, विघटन के तरीके, आदि के बारे में बनाए गए नियमों के साथ पंजीयित किया जा सकता है। कोई सम्बन्धित रजिस्ट्रार पंजीयन करने से इन्कार नहीं कर सकता, यदि आवेदन दायर करते समय सभी तकनीकी आवश्यकताएं पूरी की जा चुकी हों और यूनियन को गैर-कानूनी न ठहराया गया हो।

3.1.1.7.3 मूल अधिनियम में, किसी व्यवसाय संध के सात अथवा सात से अधिक सदस्य इस अधिनियम के तहत पंजीयन के लिए आवेदन दे सकते थे। लेकिन इसके परिणामस्वरूप, समय बीतने पर एक ही संस्थापना में कई व्यवसाय संध हो गए। इस समस्या से निपटने के लिए, 2001 में एक संशोधन किया

गया और यह उपबन्ध किया गया कि कोई व्यवसाय संध तब तक पंजीयित नहीं किया जाएगा, जब तक कि उस संस्थापना अथवा उद्योग में, जिसके साथ वह सम्बन्धित हो, काम करने वाले अथवा नियोजित कामगारों के कम से कम 10 प्रतिशत के बराबर कामगार, अथवा एक सौ कामगार, जो भी कम हो, उस तारीख को, जिस दिन पंजीयन के लिए आवेदन दायर किया गया हो, उस संध के सदस्य न हों। किसी व्यवसाय संध की सदस्यता के बारे में न्यूनतम आवश्यकता सम्बन्धी एक नई धारा 9 क अधिनियम में जोड़ी गई थी, जिसके अनुसार किसी पंजीयित व्यवसाय संध में हर समय, उस संस्थापना अथवा उद्योग में, जिसके साथ वह सम्बन्धित हो, काम करने वाले अथवा नियोजित कुल कामगारों के दस प्रतिशत से अन्यून, अथवा एक सौ कामगार, जो भी कम हो, पर न्यूनतम सात हो, सदस्य बने रहने चाहिएं।

3.1.1.7.4 व्यवसाय संधों के पदाधिकारियों और सदस्यों को व्यवसाय संध के उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए हाथ में ली जाने वाली कार्रवाइयों के लिए आपराधिक और सिविल देनदारियों से उन्मुक्ति प्रदान की गई है। लेकिन, इस अधिनियम के उपबन्धों का जानबूझ कर उल्लंधन करने, अथवा पंजीयन प्राप्त करने में छल-कपट अथवा गलत काम करने के मामले में दाण्डिक उपबन्धों का उपयोग किया जा सकता है और रजिस्ट्रार द्वारा पंजीयन प्रमाणपत्र वापस लिया जा सकता है और रद्द किया जा सकता है। सम्बन्धित सरकार (केन्द्रीय और राज्य) द्वारा प्रत्येक राज्य के लिए रजिस्ट्रार नियुक्त किया जाता है। उसकी सहायता अपर और उप-रजिस्ट्रार द्वारा की जाती है।

3.1.1.7.5 इस अधिनियम का एक प्रमुख उपबन्ध उन पदाधिकारियों के अनुपात के बारे में है, जो उस विशेष उद्योग से सम्बन्धित हों, जहां व्यवसाय संध बनाया गया है। व्यवसाय संध अधिनियम की धारा 22 के अनुसार, जो 2001 में शामिल की गई थी, किसी गैर-संगठित क्षेत्रक में प्रत्येक पंजीयित व्यवसाय संध में कुल पदाधिकारियों में से कम से कम आधे पदाधिकारी ऐसे व्यक्ति होंगे, जो उस उद्योग में संलग्न अथवा नियोजित होंगे, जिससे उस व्यवसाय संध का सम्बन्ध हो। अन्य मामलों में, किसी पंजीयित व्यवसाय संध के सभी पदाधिकारी, कुल पदाधिकारियों की संख्या के एक तिहाई से अनधिक अथवा पांच से अनधिक पदाधिकारियों के सिवाय, जो भी कम हों, ऐसे व्यक्ति होंगे जो उस संस्थापना में वास्तविक रूप से संलग्न होंगे, जिसके साथ व्यवसाय संध सम्बन्धित हो। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह उपबन्ध भी किया गया है कि केन्द्र अथवा राज्य सरकार की मंत्रि-परिषद् का कोई सदस्य अथवा लाभ का पद (जो उस संस्थापना अथवा उद्योग में, जिसके साथ व्यवसाय संध सम्बन्धित हो, नियुक्ति अथवा नियोजन न हो) धारण करने वाला कोई व्यक्ति पंजीयित व्यवसाय संध की कार्यकारिणी का सदस्य अथवा कोई अन्य पदाधिकारी नहीं होगा।

3.1.1.8 पूर्त संस्थाओं के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

3.1.1.8.1 संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रारम्भिक बस्तियों में छोटी-छोटी मिठाई की दूकानों से शुरू होकर, स्वैच्छिक संगठन पिछले दो सौ वर्षों से समूचे पश्चिमी जगत में एक अथवा किसी दूसरे रूप में अस्तित्व में हैं। इस अवधि में, सरकार और स्वैच्छिक क्षेत्रक के बीच एक सक्रिय सम्बन्ध विकसित हो गया है। यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, फ्रांस और यूरोप के अन्य देशों में इस क्षेत्रक का विनियमन करने और उसे बढ़ावा देने की एक भली-भांति विकसित प्रणाली है[10]।

- इनमें से अधिकतर देशों में, राजस्व अधिकारी शुरू में यह फैसला करते हैं कि क्या कोई संगठन पूर्त है अथवा नहीं। यह कार्यपद्धति इस दृढ़कथन पर आधारित है कि राजस्व अधिकारी पूर्त संस्थाओं के पंजीयन में निष्पक्ष होते हैं और कर-प्राधिकारी कर कटौती की प्रणाली का प्रशासन करने में और यह निर्धारित करने में कि कौन से संगठन कर से छूट पाने के हकदार हैं, सबसे बेहतर स्थिति में होते हैं।
- इंग्लैंड और वेल्स में पूर्त आयोग पूर्त अधिनियम को लागू करते हैं। यह अधिनियम आयोग को पूर्त संस्थाओं से सम्बन्धित सभी मामलों पर विनियमनकारी अधिकार का प्रयोग करने की शक्ति प्रदान करता है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में, पूर्त संस्था का पंजीयन करना राज्य की जिम्मेदारी है, लेकिन वित्तीय और कर विनियमन अन्तर्देशीय राजस्व द्वारा किया जाता है, जो एक फेडरल एजेंसी है।
- पूर्त संस्थाओं के डाटा तक आसान पहुंच है: (i) पूर्त संस्थाओं का एक सरकारी रजिस्टर है, और (ii) किसी स्वैच्छिक संगठन के लिए यह अनिवार्य है कि वह मांग किए जाने पर सूचना मुहैया करे।
- शिकायतें दूर करने की एक प्रभावकारी व्यवस्था है। निर्णयों के खिलाफ अपील करने के उपबन्ध हैं और कानूनों का उल्लंघन होने पर क्रमबद्ध दंड निर्धारित हैं।

3.1.1.8.2 संयुक्त राज्य अमेरिका में पूर्त संस्थाओं सम्बन्धी कानून

3.1.1.8.2.1 संयुक्त राज्य अमेरिका में पूर्त संस्थाओं की स्थापना राज्यों के कानून के तहत की जाती है, लेकिन वे फेडरल सरकार और राज्य सरकार दोनों के नियंत्रण के अधीन होती हैं। फेडरल स्तर पर पूर्त संस्था प्रशासन का प्रबन्ध फेडरल कर संहिता के तहत तरजीही कर व्यवहार के तरीके से किया जाता है।

[10]ए रीव्यू आफ चेरिटी आर्गनाइजेशन्स इन इंडिया: योजना आयोग, द्वारा प्रायोजित सम्प्रदान की रिपोर्ट

पूर्त संस्थाओं को फेडरल कर संहिता की धारा 501(ग)(3) के अन्तर्गत संगठनात्मक और प्रचालनात्मक शर्तों के अध्यधीन कर छूट की हैसियत प्रदान की जाती है। कर से छूट की मांग करने वाले संगठनों के लिए यह जरूरी है कि वे अपने उन अभिप्रेत पूर्त उद्देश्यों पर कड़ाई से जुटे रहें, जिनका उल्लेख सरकारी दस्तावेज में किया गया हो। कर संहिता विनियमन के प्रयोजन से सार्वजनिक पूर्त संस्थाओं और प्राइवेट प्रतिष्ठानों में भेद करती है। सार्वजनिक पूर्त संस्थाओं की तुलना में प्राइवेट प्रतिष्ठानों का विनियमन अधिक कड़ाई से किया जाता है। आन्तरिक राजस्व सेवा पूर्त संस्थाओं के प्रशासन और विनियमन के सम्बन्ध में फेडरल विनियम लागू करने के लिए जिम्मेदार है।

3.1.1.8.2.2 जैसाकि ऊपर बताया गया है, पूर्त संस्थाओं का निर्माण राज्यों के कानूनों के अन्तर्गत किया जाता है, जिनमें उनके निगमन और विनियमन के लिए व्यापक मार्गनिर्देश दिए गए हैं (विभिन्न राज्यों के उपबन्ध भिन्न-भिन्न हो सकते हैं)। राज्यों के कानून मुख्यत: इन बातों से सम्बन्धित होते हैं (क) पूर्त संस्थाओं का प्रयोजन, (ख) उनका संगठनात्मक ढांचा, और (ग) उनका आन्तरिक प्रशासन। राज्यों के कानूनों के अन्तर्गत पूर्त प्रयोंजनों की परिभाषा, कुल मिला कर, फेडरल कर संहिता के अन्तर्गत दी गई परिभाषा के अनुरूप होती है। राज्यों के महान्यायवादियों को पूर्त संगठनों सम्बन्धी कानूनों को लागू करने की शक्ति प्रदान की गई है।

3.1.1.8.3 यूनाइटेड किंगडम का कानून[11]

3.1.1.8.3.1 चेरिटीज़ अधिनियम, 2006 ने यूनाइटेड किंगडम में सरकार-स्वैच्छिक क्षेत्रक के सम्बन्ध को पूरी तरह से बदल दिया है। इस अधिनियम में इंग्लैंड और वेल्ज़ में पूर्त संगठनों के कार्यकरण को विनियमित करने और सहायता देने के लिए पूर्त आयोग नाम के एक स्वायत्त निकाय की स्थापना करने की व्यवस्था की गई है। पूर्त आयोग के आदेशों के खिलाफ अपीलें सुनने के लिए एक पूर्त न्यायाधिरण भी है। इस कानून ने पूर्त संस्थाओं के निर्माण और पंजीयन, उनके द्वारा धनराशियां जुटानें, क्रियाकलापों, लेखापालन की प्रक्रिया और विवरणियां प्रस्तुत करने के बारे में मार्गनिर्देश निर्धारित किए हैं। इस कानून की मुख्य विशेषताओं पर नीचे चर्चा की गई है:

पूर्त संस्था, पूर्त प्रयोजन और लोक हित, पंजीयन, लेखापरीक्षा, लेखे और विवरणियां

(क) पूर्त संस्था

(i) यू.के. अधिनियम "पूर्त संस्था" की परिभाषा इस प्रकार करता है "एक निकाय अथवा न्यास, जो किसी पूर्त प्रयोजन के लिए हो, जो लोगों को लाभ प्रदान करता हो", उसमें 13 क्रियाकलापों की सूची दी गई है, जो पूर्त प्रयोजन की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं।

[11]केबिनट आफिस, आफिस आफ दि थर्ड सेक्टर, यूनाइटेड किंगडम द्वारा प्रकाशित दस्तावेज "चेरिटीज़ एक्ट, 2006 - व्हट ट्रस्टीज़ नीड टू नो" पर आधारित

(ii) पूर्त संस्था के प्रयोजन (अथवा लक्ष्य) आम तौर पर स्वयं उसके अपने विनियमनकारी दस्तावेज में निर्दिष्ट कर दिए जाते हैं। अतीत में, चार प्रकार के पूर्त प्रयोजन होते थे (जिन्हें "शीर्ष" कहा जाता था)। वे थे गरीबी से राहत, शिक्षा की उन्नति, धर्म को आगे बढ़ाना और समुदाय के लाभ के लिए अन्य प्रयोजन। यह माना जाता था कि गरीबी में राहत देने वाली अथवा शिक्षा अथवा धर्म को आगे बढ़ाने वाली संस्थाएं लोगों को लाभ प्रदान करती हैं। 2006 का अधिनियम इस परिकल्पना को दूर करता है। अब हर पूर्त संस्था के लिए यह प्रदर्शित करना आवश्यक है कि वह लोगों को लाभ पंहुचाती है।

(ख) पूर्त प्रयोजन

(i) सूची में निम्नलिखित क्रियाकलापों का वर्णन पूर्त क्रियाकलापों के रूप में किया गया है:

- गरीबी का निवारण अथवा राहत;
- शिक्षा को आगे बढ़ाना;
- धर्म को आगे बढ़ाना;
- स्वास्थ्य को आगे बढ़ाना अथवा जान बचाना;
- नागरिकता अथवा सामुदायिक विकास को आगे बढ़ाना;
- कला, संस्कृति, विरासत अथवा विज्ञान की उन्नत्ति;
- अव्यवसायिक खेलों को आगे बढ़ाना;
- मानव अधिकारों को आगे बढ़ाना, झगड़ों को हल करना अथवा उनका समाधान, अथवा धार्मिक अथवा जातीय मेल-मिलाप को अथवा समानता और विविधता को बढ़ावा देना;
- पर्यावरण की सुरक्षा को बढ़ावा अथवा उसमें सुधार;
- युवावस्था, आयु, बीमारी, अशक्तता, वित्तीय कठिनाई अथवा अन्य असुविधा के कारण जरूरतमंद लोगों को राहत पहुंचाना;
- पशु कल्याण को आगे बढ़ाना;
- राज्य के सशस्त्र बलों की कार्य कुशलता अथवा पुलिस, अग्निशमन और बचाव सेवाओं अथवा एम्बुलेंस सेवाओं की कार्यकुशलता को बढ़ाना; और

- अन्य प्रयोजन जो सामान्यत: पूर्त समझे जाते हैं अथवा किसी ऐसे प्रयोजन की भावना में हों, जिन्हें इस समय पूर्त समझा जाता है।

(ग) पंजीयन

(i) सामान्यत: केवल उन पूर्त संस्थाओं को आयोग के पास पंजीयित कराने की आवश्यकता है, जिनकी वार्षिक आय 5,000 पाउण्ड से अधिक हो । यह दहलीज इसके 1,000 पाउण्ड के पिछले स्तर से बढ़ कर ऊंची हुई है। "छूट प्राप्त" और "वर्जित" पूर्त संस्थाओं की पंजीयन की आवश्यकताओं में भी परिवर्तन हो गया है।

(ii) 5,000 पाउण्ड से कम की वार्षिक आय वाली मौजूदा पंजीयित पूर्त संस्थांए रजिस्टर से हटाए जाने का अनुरोध कर सकती हैं, लेकिन वे फिर भी पूर्त संस्थाएं बनी रहेंगी और उन्हें पूर्त कानून का पालन करना होगा।

(घ) लेखापरीक्षा, लेखे और वार्षिक विवरणियां

(i) किसी पूर्त संस्था को, जो कम्पनी न हो, अपने लेखाओं की व्यावसायिक लेखापरीक्षा अवश्य करानी चाहिए, यदि निम्नलिखित शर्तें लागू होती हों:

- सकल वार्षिक आय 5,00,000 पाउण्ड से अधिक हो; अथवा
- यदि उसकी वार्षिक आय 1,00,000 पाउण्ड से अधिक हो और उसकी परिसम्पत्तियों का मूल्य 2.8 मिलियन पाउण्ड से अधिक हो;

अथवा इन शर्तों की ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा, यदि

- इसके विनियमनकारी दस्तावेज में यह कहा गया हो कि इसे व्यावसायिक लेखापरीक्षा अवश्य करानी चाहिए, अथवा
- यदि आयोग आदेश दे कि पूर्त संस्था के लेखाओं की व्यावसायिक लेखापरीक्षा कराई जाए।

(ii) 5,00,000 पाउण्ड से अधिक की वार्षिक आय और 2.8 मिलियन पाउण्ड से अधिक की परिसम्पत्तियों वाली पूर्त संस्थाओं को व्यावसायिक लेखापरीक्षा अवश्य करानी चाहिए;

(iii) उन सभी पंजीयित पूर्त संस्थाओं को, जिनके लिए आयोग को वार्षिक विवरणियां प्रस्तुत करनी पड़ती हैं, पूर्त संस्था के वित्तीय वर्ष के समाप्त होने के बाद दस महीनों के अन्दर

ऐसा अवश्य कर देना चाहिए। इससे पहले, ऐसी पूर्त संस्थाओं के न्यासियों को, जो वार्षिक विवरणियां, वार्षिक रिपोर्टें अथवा लेखे आयोग को प्रस्तुत करने में विफल रहते थे, दोषी ठहराया जा सकता था और उन पर जुर्माना किया जा सकता था। अधिनियम में अपराध की परिभाषा को बदल दिया गया है और वह किसी भी न्यासी पर लागू होता है, जो इनमें से एक अथवा एक से अधिक दस्तावेज भेजने में विफल रहता है, चाहे यह विफलता लगातार हो अथवा न हो, और इस अपराध के लिए जुर्माना बढ़ा दिया गया है। अपराध को अनदेखा कर दिया जाता है, यदि न्यासी यह प्रदर्शित करने में सफल रहते हैं कि उन्होंने अन्तिम तिथि तक विवरणियां, आदि प्रस्तुत करने के लिए सभी समुचित कदम उठाए थे।

(iv) गैर-निगमित पूर्त संस्थाओं के लेखापरीक्षकों की यह विशिष्ट जिम्मेदारी है कि यदि पूर्त कानूनों का दुरूपयोग किया गया हो अथवा कोई धोर उल्लंधन हुआ हो, ता वे इसकी रिपोर्ट आयोग को दें। यदि वे कोई विश्वास-भंग अथवा मानहानि का कार्य करें, तो उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई से उन्हें पहले से ही सांविधिक सुरक्षा प्राप्त है। नया अधिनियम इस कर्त्तव्य को मान्यता देता है और गैर-निगमित पूर्त संस्थाओं और पूर्त कम्पनियों के लेखाओं के लेखापरीक्षकों और रिपोर्ट देने वाले लेखाकारों तथा पूर्त लेखाओं के स्वतंत्र परीक्षकों के कर्त्तव्यों को सुरक्षा प्रदान करता है।

(ङ) संस्थात्मक प्रबन्ध

(क) पूर्त आयोग

(i) पूर्त संस्था अधिनियम, 1992 के उपबन्धों के अन्तर्गत, यू.के. का पूर्त आयोग अपनी भूमिका का विकास आधुनिक विनियमनकर्त्ता के रूप में कर सकता था। पूर्त संस्था अधिनियम, 2006 ने एक ऐसा ढांचा स्थापित करके, जो इसके उद्देश्यों के स्पष्ट करता है और यह भी स्पष्ट करता है कि उसे किस प्रकार प्रचालन करना चाहिए, इसे और समर्थन दिया है। आयोग का नेतृत्व अब एक अधिक बड़े और अधिक विविधतापूर्ण बोर्ड द्वारा किया जाता है, जो उस क्षेत्रक को बेहतर तरीके से प्रतिबिम्बित कर सकता है, जिसके साथ वह काम करता है।

(ii) 2006 के अधिनियम में आयोग के उद्देश्य और कृत्य निर्धारित किए गए हैं और इसे कुछ सामान्य कर्त्तव्य सौंपे गए हैं, जिनका उद्देश्य आयोग को उस समय मार्गदर्शन प्रदान करना है, जब वह अपने कार्यों का निष्पादन कर रहा हो।

(iii) आयोग के ये उद्देश्य हैं:

1. **लोक विश्वास का उद्देश्य:** पूर्त संस्थाओं में लोगों का विश्वास और भरोसा बढ़ाना।
2. **लोक लाभ उद्देश्य:** लोक लाभ की आवश्यकताओं के प्रचालन के बारे में जागरूकता और समझ बढ़ाना।
3. **दायित्व पालन उद्देश्य:** पूर्त संस्थाओं के न्यासियों को अपनी पूर्त संस्थाओं के प्रशासन के नियंत्रण और प्रबन्धन के अपने कानूनी दायित्वों का पालन करने के लिए प्रोत्साहित करना।
4. **पूर्त संसाधन उद्देश्य:** पूर्त संसाधनों के प्रभावकारी उपयोग को बढ़ावा देना।
5. **उत्तरदायिता उद्देश्य:** पूर्त संस्थाओं को अपने दाताओं, लाभभोगियों और जनता के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाना।

(iv) आयोग को निम्नलिखित सामान्य कार्य सौंपे गए हैं:

- यह निर्णय करना कि क्या संस्थाएं वास्तव में पूर्त हैं अथवा नहीं;
- पूर्त संस्थाओं का बेहतर प्रशासन करने को बढ़ावा देना और उसे सुविधाजनक बनाना;
- जब पूर्त संस्थाओं का कुप्रबन्ध अथवा दुरूपयोग किया जा रहा हो, तो उसका पता लगाना और उसकी जांच करना और पूर्त सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए स्थिति को सुधारने के वास्ते कार्रवाई करना;
- लोक संग्रह प्रमाणपत्र जारी करने की अपनी नई भूमिका निभाना;
- पूर्त संस्थाओं का एक सही और अद्यतन रजिस्टर रखना, और इसके कार्य को समर्थन देने के लिए और इसे अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता देने के लिए इस रजिस्टर का और अन्य सूचना का उपयोग करना; और
- इसके उद्देश्यों और कार्यों से सम्बन्धित मामलों के बारे में सम्बन्धित मंत्री को सूचना मुहैया करना और सलाह देना तथा प्रस्ताव प्रस्तुत करना।

(v) कर्त्तव्य: अपने कार्य में, आयोग को कुछ कर्त्तव्यों का पालन अवश्य करना चाहिए:

- आयोग को, जहां तक व्यवहार्य हो, इस तरीके से कार्य करना चाहिए, जो निम्नलिखित से मेल खाता हो:
  - उसके उद्देश्य और उन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए जो उपयुक्त हो; और
  - पूर्त कार्यों के लिए दान देने और पूर्त कार्यों में भाग लेने को प्रोत्साहन देना

- आयोग को, उपयुक्त मामलों में, इस बात की आवश्यकता पर विचार अवश्य करना चाहिए कि पूर्त संस्थाएं नवीनता लाने में और ऐसी नवीनताओं को समर्थन देने में सक्षम होनी चाहिएं, जो पूर्त कार्यों को सामान्यत: प्रभावित कर सकती हों।
- एक संगठन के रूप में, आयोग को अच्छे निगम प्रबन्ध के सिद्धान्तों की ओर तथा अपने संसाधनों का उपयोग सर्वाधिक कार्यकुशलतापूर्ण, प्रभावकारी और किफायती ढंग से करने की आवश्यकता की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

(vi) आयोग, अपने बड़े बनाए गए बोर्ड के साथ, एक नया निगम निकाय बन गया है। यह भी स्पष्ट कहा गया है कि वह मंत्री से स्वतंत्र है।

(vii) अधिनियम आयोग को चार तक नए गैर-कार्यकारी बोर्ड सदस्यों की भर्ती करने की अनुमति देता है अधिनियम यह भी अपेक्षा करता है कि बोर्ड के पास, समूचे रूप से पूर्त संस्थाओं के प्रचालन और विनियमन का और उस कानूनी ढांचे का, जिसमें वह कार्य करता है, व्यापक ज्ञान और अनुभव हो। बोर्ड के कम से कम एक सदस्य को वेल्ज की स्थितियों की विशेष जानकारी अवश्य होनी चाहिए । इससे यह सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी कि बोर्ड पूर्त क्षेत्रक की विविधता को प्रतिबिम्बित करता है।

(viii) अधिनियम में एक सांविधिक आवश्यकता चह निर्धारित की गई है कि बोर्ड को एक सार्वजनिक वार्षिक साधारण बैठक अवश्य आयोजित करनी चाहिए, जिसमें संसद को प्रस्तुत की जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट पर चर्चा की जानी चाहिए।

(ix) आयोग को वार्षिक रूप से संसद को अपने कार्य, उद्देश्यों को पूरा करने में हुई प्रगति, अपने सामान्य कर्त्तव्यों के निष्पादन और अपने कार्यों के प्रबन्ध के बारे रिपोर्ट प्रस्तुत करनी चाहिए।

(x) अधिनियम मंत्रियों और सरकारी विभागों से आयोग की स्वतन्त्रता का परिरक्षण करता है। इससे पूर्त संस्थाओं में लोगों के विश्वास को बढ़ावा मिलता है।

(ख) इसका प्रबन्ध

इस समय, यू.के. में आयोग के शासन की जिम्मेदारियों 9 गैर-कार्यकारी सदस्यों वाले एक बोर्ड पर हैं। निगम-निर्णय लेने का काम, जो आयोग के रोजमर्रा के कार्यों को प्रभावित करता है, एक कार्यकारी समूह को सौंप दिया गया है, जिसमें एक मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है, जिसकी सहायता चार निदेशकों कार्यात्मक अध्यक्षों द्वारा की जाती है।

(ग) पूर्त न्यायाधिकरण

इससे पहले, यदि पूर्त संस्थाएं पूर्त आयोग के किसी निर्णय से असन्तुष्ट होती थीं; तो वे उसके खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील कर सकती थीं। विशेष रूप से छोटे संगठनों के लिए यह कार्य अत्यन्त खर्चीला और जटिल था। 2006 के अधिनियम ने अपील के प्रथम स्तर के रूप में एक पूर्त न्यायाधिकरण स्थापित किया है। यह सुविधाजनक, सस्ता और कम औपचारिक है। यह प्रबन्ध छोटी पूर्त संस्थाओं को शिकायतों के समाधान का एक सुगम साधन मुहैया करता है। दूसरी अपील के लिए उच्च न्यायालय तक पहुंच अभी भी संम्भव है।

3.1.2 भारत में पूर्त संस्थाओं के लिए एक नए कानूनी ढांचे की आवश्यकता

3.1.2.1 भारत में पूर्त संस्था कानूनों की बहुलता ने इस क्षेत्रक में एक उपयुक्त संस्थात्मक ढांचे का विकास और संवृद्धि नहीं होने दी है। यद्यपि स्वैच्छिक संगठन विभिन्न कानूनी दायित्वों का पालन करने में प्राय: परेशानी महसूस करते हैं, लेकिन सरकार की संस्थाएं भी इस क्षेत्रक का विनियमन करने में और कानूनी पालन कराने में प्रभावकारी नहीं रही हैं। कर उपबन्धों के दुरूपयोग, धोखाधड़ी और घटिया नियंत्रण की घटनाएं बार-बार होती रही हैं। एक ऐसा कारगर संस्थात्मक तंत्र स्थापित किए जाने की आवश्यकता है, जो इस देश में पूर्त संस्थाओं की संवृद्धि और विकास के लिए सहायक वातावरण उपलब्ध कराए। इस सम्बन्ध में, हम शासन के उस ढांचे से सीख सकते हैं, जिसका वर्णन पैरा 3.1.1.8 में किया गया है। चूंकि भारत एक फेडरल संघ है, इसलिए एक विकेन्द्रीकृत संस्थात्मक ढांचा उपयुक्त प्रतीत होता है, जिस तरह का ढांचा संयुक्त राज्य अमेरिका में है। पंजीयन और निरीक्षण की शाक्ति राज्य सरकारों के पास होनी जरूरी है।

3.1.2.2 वर्ष 2004 में, भारतीय लोकोपकार केन्द्र सम्प्रदान ने योजना आयोग के तत्वाधान में भारत में पूर्त संस्थाओं के प्रशासन के बारे में एक सर्वेक्षण किया था। इस अध्ययन में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित चार माडलों का सुझाव दिया गया था:

- ***माडल 1 – मौजूदा संस्थात्मक प्रबन्धों को, जिस रूप में वे आज हैं, उसी रूप में कायम रखते हुए, यथास्थिति बनाए रखें****, लेकिन लोंगों के साथ अधिक सुविधाजनक सम्पर्क स्थापित करने, विनियमनकारी प्रक्रिया में अधिक पारदर्शिता लाने, बेहतर कार्यपालन के उपाय और बेहतर अपील प्रक्रिया के बारे में कतिपय सिफारिशों को अपना कर कार्य-निष्पादन के बढ़ाना।*
- ***माडल 2 – आयकर विभाग में अधिक कार्यों वाले पूर्त संस्था निदेशालय, और उसके अलावा राज्य स्तरीय पंजीयन एजेंसियों और एक एन.पी.ओ. सेक्टर एजेंसी की स्थापना करें।*** *पूर्त*

संस्था निदेशालय मुख्य विनियमनकारी अभिकरण होगा, जैसाकि कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिक में होता है, जो मानीटरिंग और कानून के पालन की देखरेख करेगा, जबकि राज्य स्तरीय पंजीयन एजेंसियां केवल पंजीयन के कार्य के लिए होंगी। इसके अलावा, पूर्त संस्था निदेशालय को सलाह देने के लिए एक एक एन.पी.ओ. एजेंसी होगी। इसमें एन.पी.ओ. क्षेत्रक के प्रतिनिधि और वकीलों तथा चार्टर्ड लेखाकारों जैसे व्यावसायिक व्यक्ति होगें। यह एजेंसी नीति सम्बन्धी मार्गदर्शन प्रदान करेगी, इस क्षेत्रक से फीडबैक प्राप्त करेगी और कानून पालन कराने के लिए एक समीक्षा तंत्र स्थापित करेगी।

- ***माडल 3 – एक पूर्त संस्था निदेशासलय और आदेशात्मक एन.पी.ओ. सेक्टर एजेंसी का निर्माण करें।*** *इस माडल और ऊपर उल्लिखित माडल के बीच अन्तर यह है कि एन.पी.ओ सेक्टर एजेंसी का सृजन सरकार द्वारा एक स्वायत निकाय के रूप में किया जाएगा। इसका एक अपना शासी निकाय होगा और अपना व्यावसायिक स्टाफ होगा और इसका सामान्य कार्य यह होगा कि संगठनों के बेहतर प्रबन्ध को प्रोत्साहित करके पूर्त संसाधनों के प्रभावकारी उपयोग को बढ़ावा दिया जाए, और न्यासियों को सूचना और सलाह प्रदान करके प्रबन्ध और विनियमन में सुधार किया जाए। इस पर शिक्षा के कार्यों को पूरा करने की भी जिम्मेदारी होगी। यह वार्तालाप का एक स्थाई मंच होगा, जिसकी मांग यह क्षेत्रक करता रहा है और सरकार और इस क्षेत्रक के बीच एक सम्पर्क सूत्र होगा।*

- ***माडल 4 – राज्य स्तरीय पूर्त संस्था आयोगों की स्थापना करें, जिनकी सहायता एन.पी.ओ. सेक्टर एजेंसी द्वारा की जाती हो।*** *यह माडल यू.के. माडल की तरह का पूर्त संस्था आयोग स्थापित करने का सुझाव देता है। इसका सरोकार न केवल वित्तीय विनियमन से होगा, बल्कि इस क्षेत्रक के संवर्धन और विकास से भी होगा।*

3.1.2.3 समितियों और न्यासों के लिए माडल कानून

3.1.2.3.1 हमारे देश में लाभ-निरपेक्ष/स्वैच्छिक संगठन अनेक प्रकार के मुद्दों के बारे में कार्य करते हैं, जिनमें सामाजिक-आर्थिक विकास और नीति के लगभग सभी पहलू शामिल हैं। ऐसे अलग-अलग कानून हैं, जिनके अन्तर्गत समितियां, न्यास, पूर्त संस्थाएं, धार्मिक विन्यास और वक्फ, आदि स्थापित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860 वह कानून है, जिसके अन्तर्गत भारत में विभिन्न प्रकार की समितियां स्थापित की जाती हैं। चूंकि "समितियां" एक राज्य विषय है, इसलिए 1860 के कानून को बारह राज्यों द्वारा संशोधनों के साथ अपनाया गया है। राजस्थान, कर्नाटक, पश्चिम

बंगाल, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, मणिपुर, मेधालय, जम्मू और कश्मीर और आन्ध्र प्रदेश, आदि राज्यों ने इस विषय पर स्वयं अपने कानून बनाए हैं। केरल, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु और बहुत से अन्य राज्यों में धार्मिक विन्यासों के नियंत्रण के लिए विशिष्ट कानून हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मध्य प्रदेश में उनके अधिकारक्षेत्र के अन्तर्गत सभी किस्मों के न्यासों और विन्यासों (धार्मिक/गैर-धार्मिक) के नियंत्रण के लिए विशिष्ट पब्लिक न्यास कानून हैं। इसके अलावा, विन्यास विशिष्ट -सापेक्ष हैं, जैसे बोध गया मन्दिर अधिनियम, 1949 । इन सभी उपर्युक्त विधानों के बावजूद, यदि कोई अस्पष्टता सामने आती है, तो न्यायालय सी.पी.सी. की धारा 92 का सहारा लेते हैं।

3.1.2.3.2 राज्यों में कानूनों की विविधता ने स्वैच्छिक संगठनों के प्रबन्धों में ऐसी प्रथाओं को जन्म दिया है, जो एक समान नहीं हैं। यदि एक राज्य में पंजीयित कोई संस्था अपने क्रिया कलापों का विस्तार किसी अन्य क्षेत्र में करना चाहती हो, तो उसे कानूनी आवश्यकताओं के एक विभिन्न समूह का पालन करना पड़ता है। आयोग का मत है कि किसी सिविल सोसाइटी संगठन का प्रबन्ध करना बहुत कम जटिल होगा, यदि पूर्त संस्थाओं के विनियमन के लिए समूचे देश के लिए कोई एक समान कानूनी व्यवस्था लागू की जाएगी। इस समय, "समितियां" संविधान की अनुसूची 7 की राज्य सूची (प्रविष्टि 32) का एक विषय है, जबकि "न्यास" समवर्ती सूची (प्रविष्टि 10) में शामिल है। "पूर्त कार्य और पूर्त संस्थाएं" भी समवर्ती सूवी (प्रविष्टि 28) मं शामिल हैं। राज्यों में एक एक-समान कानूनी वातावरण का सृजन करने के लिए, आयोग सुझाव देता है कि केन्द्रीय सरकार को समितियों और न्यासों दोनों को कवर करने वाला एक व्यापक माडल कानून बनाना चाहिए। यह माडल कानून राज्यों के पास भेजा जा सकता है, जो उसे उपयुक्त रूपभेद के साथ अपना सकते हैं। हालांकि यहां किसी विस्तृत प्रारूप का सुझाव देना सम्भव नहीं होगा, लेकिन कुछ निदर्शनात्मक मुद्दों के बारे में आयोग के विचारों और एक व्यापक ढांचे की जानकारी अगले पैराग्राफों में दी गई है।

3.1.2.4 नए कानून के कुछ मुख्य तत्व

3.1.2.4.1 प्रस्तावित कानून में निम्नलिखित तीन मुख्य तत्वों का स्पष्टीकरण किए जाने की जरूरत होगी:

(i) पूर्त कार्य और पूर्त प्रयोजन को परिभाषित करना

(ii) संस्थात्मक तंत्र

(iii) राज्य सरकार के साथ सम्पर्क

(i) पूर्त कार्य और पूर्त प्रयोजन को परिभाषित करना

नए कानून को मूल समितियां पंजीयन अधिनियम, 1860, राज्यों के विभिन्न संशोधित अधिनियमों, बम्बई पब्लिक न्यास अधिनियम, 1950, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 और आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 2(15) की विषय वस्तु के आधार पर एक सम्मिश्र परिभाषा तैयार करने की आवश्यकता होगी। यू.के. के कानून में "पूर्त कार्य" और "पूर्त प्रयोजन" की परिभाषा में, जिसकी जानकारी 3.1.1.8.3.1 में दी गई है, लगभग वे सभी उद्देश्य शामिल हैं, जिनकी सूची संध और राज्यों के मौजूदा कानूनों में दी गई हैं, और नया विधान बनाते समय उन्हें ध्यान में रखना चाहिए। विश्व भर का अनुभव यह दर्शाता है कि "पूर्त कार्य" और "पूर्त प्रयोजन" की परिभाषा करना एक जटिल कार्य है। आयोग का यह मत है कि एक समावेशी समिति स्थापित करने की आवश्यकता है, जा इस मुद्दे की जांच विस्तृत रूप से करेगी और एक उपयुक्त परिभाषा का सुझाव देगी, जो, अन्य बातों के साथ-साथ, पूर्त संस्थाओं और सरकार के बीच के सम्बन्धों को, विशेष रूप से कर सम्बन्धी मामलों में, मृदु बनाएगी।

(ii) संस्थात्मक तंत्र

पूर्त संस्थाओं सम्बन्धी मौजूदा प्रशासन के स्थान, जिसमें एक पूर्त आयुक्त/पंजीयन महानिरीक्षक शामिल होते हैं, जैसीकि राज्यों में स्थिति है, प्रस्तावित कानून प्रत्येक राज्य में तीन-सदस्यीय पूर्त आयोग के रूप में, जिसके पास आवश्यक सहायक स्टाफ होगा, एक नए शासी ढांचे की व्यवस्था करेगा। यह आयोग कानून द्वारा निर्मित एक स्वायत्त निकाय होगा। इसके निर्धारित कार्य और जिम्मेदारियां होगीं और यह एक नोडल मंत्री के माध्यम से राज्य विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होगा। आयोग का अध्यक्ष एक विधि अधिकारी होना चाहिए, जो जिला जजों के संवर्ग में से लिया गया हो। अन्य दो सदस्यों में से, एक सदस्य स्वैच्छिक क्षेत्रक से और दूसरा सदस्य राज्य सरकार का एक अधिकारी होना चाहिए। इस आयोग का कार्य इस क्षेत्रक का विनियमन करना और उसे सहायता देना होगा। कानून में प्रत्येक राज्य में एक पूर्त न्यासधिकरण स्थापित करने का उपबन्ध भी किया जाएगा, जिसे पूर्त आयोग के आदेशों के खिलाफ अपील सुनने का अधिकार होगा।

पूर्त आयोग के कृत्यों में निम्नलिखित कृत्य शामिल होंगे:

- लाभ-निरपेक्ष संगठनों (एन.पी.ओ.) का पंजीयन;
- लाभ-निरपेक्ष संगठनों का एक सार्वजनिक रजिस्टर रखना;
- लाभ-निरपेक्ष संगठनों से रिपोर्टें प्राप्त करना;
- लेखापरीक्षा और मानीटरन;

- स्वैच्छिक संगठनों में अच्छी पद्धतियों/अच्छे तरीकों के बारे में सूचना प्रसारित करना;
- सार्वजनिक चर्चाएं/परामर्श आयोजित करना;
- लोगों को लाभ-निरपेक्ष संगठनों के बारे में शिक्षित करने के लिए सरल प्रकाशन निकालना;
- नीति और विनियमन के मुद्दों पर क्षेत्रक के साथ वार्तालाप के एक स्थाई मंच के रूप में कार्य करना;
- कानून का पालन न किए जाने पर दण्ड देना और जुर्माना करना;
- शिकायतें सुलझाना।

पूर्त आयोग किसी अन्य लाभ-निरपेक्ष निगम की तरह अपना स्टाफ भर्ती करने और स्टाफ को प्रशिक्षण देने में स्वतन्त्र होना चाहिए और उसे लाभ-निरपेक्ष क्षेत्र की पद्धतियों के अनुसार पारिश्रमिक देने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इससे संगठन को स्थिरता प्राप्त होगी और उसके लिए यह सम्भव हो जाएगा कि वह ऐसे कर्मचारियों को रख सकेगा, जो लाभ-निरपेक्ष कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध होंगे।

(iii) राज्य सरकार के साथ सम्पर्क

इस समय, किसी लाभ-निरपेक्ष संगठन की राज्य के प्राधिकरणों के साथ अन्तर्क्रिया में निम्नलिखित बातें शामिल हैं - (क) ज्ञापन में परिवर्तन करने, सम्पति के अन्यसंक्रमण अथवा परिवर्तन रिपोर्ट को शामिल करने की अनुमति देने के बारे में सरकार की शक्ति; (ख) सरकार की निरीक्षण करने की शक्ति; (ग) पंजीयन को रद्द करने की शक्ति; (घ) प्रशासक नियुक्त करने की शक्ति; (ङ) शासी निकाय के निर्णय में फेरबदल करने/उसे रद्द करने की शक्ति; (च) संस्था का विघटन करने की शाक्ति; (छ) दंड लागू करने की शक्ति। राज्य तंत्र को उपलब्ध इन व्यापक शक्तियों को देखते हुए, लाभ निरपेक्ष संगठनों में यह भावना व्याप्त है कि यह क्षेत्रक वस्तुत: राज्य सरकार का एक अधीनस्थ संघटन बन गया है। आयोग का विचार है कि लाभ-निरपेक्ष क्षेत्र को अपने कार्यचालन में (ज्ञापन के आशय के अनुसार) स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। इन संगठनों के साथ सरकार का आमना-सामना न्यूनतम होना चाहिए और सरकार को केवल एक सुविधाप्रदाता और विकासकर्त्ता के रूप में कार्य करना चाहिए। राज्य सरकारों ने समय बीतने के साथ-साथ जो विवेकाधीन शक्तियां प्राप्त की हैं, उन्हें समाप्त किए जाने की आवश्यकता है।

3.1.2.4.2 उपर्युक्त के अलावा, प्रस्तावित कानून को निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्यात्मक मुद्दों का ध्यान रखना जरूरी होगा, जो स्वैच्छिक संगठनों के कार्यचालन के लिए महत्वपूर्ण है:

(क) **ज्ञापन में परिवर्तन –** समितियां पंजीयन अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार (जैसेकि वे गुजरात और अन्य राज्यों में लागू हैं) किसी समिति के संगम ज्ञापन में परिवर्तन केवल समिति कुल सदस्यों के 3/5 से अन्यून सदस्यों के बहुमत द्वारा समर्थित किसी विशेष संकल्प द्वारा ही किया जा सकता है। आयोग के ध्यान में यह लाया गया था कि यह उपबन्ध अत्यन्त अव्यावहारिक है। यदि किसी समिति की सदस्यता बहुत बड़ी और विविध है और बहुत बड़े भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई है, तो कुल सदस्यों के 3/5 के बराबर सदस्यों की उपस्थिति प्राप्त करना बहुत कठिन है। आयोग का मत है कि प्रस्तावित कानून को इस मुद्दे का ध्यान रखना चाहिए। एक अधिक व्यावहारिक तरीका यह होगा कि इस बात पर जोर दिया जाए कि इस प्रकार का विशेष संकल्प बैठक में समिति के कुल उपस्थित सदस्यों के 3/5 के बराबर सदस्यों द्वारा पारित किया जाए। यह कम्पनी अधिनियम, 1956 के उपबन्धों के अनुरूप होगा, जहां संकल्प को बैठक में उपस्थित शेयरधारियों के 3/4 के बराबर सदस्यों द्वारा पारित किया जा सकता है।

(ख) **परिवर्तन रिपोर्ट का अनुमोदन –** बम्बई न्यास अधिनियम, 1950 की धारा 22 का सम्बन्ध पब्लिक न्यास रजिस्टर में नाम, संघटन, संगठनात्मक ढांचे, अचल सम्पत्ति, आदि सम्बन्धी प्रविष्टियों में "परिवर्तन" से है। जब कोई संस्था पब्लिक न्यास रजिस्टर में परिवर्तन के लिए आवेदन देती है, तो उसे एक बोझिल और लम्बा समय लेने वाली प्रक्रिया का सामना करना पड़ता है। आवेदन को पूर्त आयुक्त के कार्यालय से अनुमोदन प्राप्त होने में प्राय: महीनों लग जाते हैं। आयोग का विचार है कि प्रक्रिया को सरल और समयबद्ध बनाए जाने की जरूरत है। प्रस्तावित विधान में एक ऐसा उपबन्ध होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत परिवर्तन रिपोर्ट के बारे में अनुमोदन एक विहित युक्तिसंगत समय-सीमा (जैसे 60 दिन) के भीतर दिया जाना जरूरी हो।

(ग) **अचल सम्पत्ति का अन्यसंक्रमण –** बम्बई पब्लिक न्यास अधिनियम, 1950 की धारा 36 का सम्बन्ध किसी "पब्लिक न्यास की अचल सम्पत्ति के अन्यसंक्रमण" से है। जब कोई लोक न्यास सम्पत्ति के अन्तरण का प्रस्ताव पूर्त आयुक्त के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करता है, तो उसको निपटाने में समय लगता है। एक मत यह है कि न्यासियों के पास सम्पत्तियों का प्रबन्ध संगठन के सर्वोत्तम हित में करने की पूरी शक्तियां होनी चाहिएं। लेकिन इसके विपरीत दिए जाने वाल तर्क में इस बात पर बल दिया जाता है कि ऐसे मामलों में जो बिलम्ब होता है, वह

केवल प्राधिकरण के हठीले रूख के कारण नहीं होता, बल्कि वह न्यासियों द्वारा निजी लाभ के लिए सम्मत्ति का मूल्य कम लगाने के प्रयासों के कारण भी होता है। आयोग का विचार है कि नए विधान में इन दोनों दृष्टिकोणों में सन्तुलन स्थापित किए जाने की जरूरत है। प्राधिकरण को दुष्प्रयोग को रोकने के लिए प्रस्तावों की बारीकी से जांच करने का समुचित अवसर मिलना चाहिए। और उसके साथ-साथ, ऐसे मामलों के निपटाने को समयबद्ध बनाए जाने की आवश्यकता है।

(घ) **लोक न्यासों द्वारा राज्य सरकार को अंशदान –** इस समय लागू बम्बई पब्लिक न्यास अधिनियम की धारा 58 का सम्बन्ध "लोक न्यासों द्वारा लोक न्यास प्रशासन निधि को अंशदान" से है। इस समय, न्यासों को अपने राजस्व का 2 प्रतिशत से 5 प्रतिशत तक भाग इस खंड के तहत राज्य सरकार को अदा करना पड़ता है। बहुत से संगठनों को यह राशि अत्यधिक प्रतीत होती है। आयोग का विचार है कि इस मुद्दे की फिर से जांच किए जाने की जरूरत है।

3.1.2.5 **बड़े संगठनों की ओर प्राथमिकता से ध्यान देने का मुद्दा –** भारत में स्वैच्छिक क्षेत्रक के संगठन बहुत बड़ी संख्या में हैं, जिनमें से अधिकतर संगठन प्रचालनों के पैमाने के लिहाज से बहुत छोटे हैं। इस समय, निरीक्षण करने वाले प्राधिकरण अपना बहुत अधिक समय और अपने बहुत अधिक कर्मचारियों को छोटी पूर्त संस्थाओं के नेमी मामलों की देखरेख करने में लगा देते हैं और बड़े संगठनों की ओर जो ध्यान दिया जाता है, वह अपर्याप्त और अ-प्रभावी होता है। इस प्रकार, ऐसी संस्थाओं के बहुत से महत्वपूर्ण और अविलम्बनीय मामले उपेक्षित पड़े रहते हैं अथवा उन्हें सुलझाने में बहुत लम्बा समय लग जाता है। इस प्रकार के विलम्ब से प्राय: चालू परियोजना को धन प्राप्त होने में अवरोध आ जाता है। आयोग का मत है कि ऐसे उपबन्ध किए जाने की आवश्यकता है, जो अपेक्षाकृत छोटी पूर्त संस्थाओं से सम्बन्धित नेमी कार्य के बोझ को प्राधिकारियों के सिर से हटा दें। यह स्वैच्छिक क्षेत्रक के लिए एक न्यूनतक वार्षिक आय विहित किए जाने के रूप में हो सकता है। जिन पूर्त संस्थाओं की आय इस स्तर से कम होगी, उनके लिए विवरणियां, रिपोर्टें, अनुमतियां, आदि प्रस्तुत करने की आवश्यकताओ का पालन करने की जरूरत कम होगी। लेकिन, किसी अनियमितता का पता चलने पर, उनके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई की जा सकेगी, जैसाकि कानून में विहित है। शुरू में, व्यवच्छेदन की सीमा 10 लाख रूपए निर्धारित की जा सकती है, जिसे और ऊपर बढ़ाने के लिए, उसका पांच वर्ष में एक बार पुनरीक्षण किया जा सकता है। ऐसे उपबन्ध से, एक ओर, छोटी पूर्त संस्थाओं के लिए अनुकूल वातावरण पैदा होगा, और दूसरी ओर, प्राधिकारियों को उन संस्थाओं की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने का समय मिल जाएगा, जो बड़े कार्यों में संलग्न हैं।

3.1.2.6 सिफारिशें

(क) संध सरकार को समितियों, न्यासों, विन्यासों और पूर्त संस्थाओं, आदि सम्बन्धी मौजूदा कानूनों के स्थान पर न्यासों और समितियों, दोनों के बारे में एक व्यापक माडल विधान का प्रारूप तैयार करना चाहिए।

(ख) मौजूदा पूर्त प्रशासन के स्थान पर, जिसमें पूर्त आयुक्त/पंजीयन महानिरीक्षक शामिल होते हैं, जैसीकि राज्यों में स्थिति है, प्रस्तावित कानून में प्रत्येक राज्य में तीन–सदस्यीय पूर्त संस्था आयोग के रूप में एक नए शासी ढांचे की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिसमें पूर्त संगठनों के निगमन, विनियमन और विकास के लिए आवश्यक सहायक स्टाफ हो। आयोग का अध्यक्ष एक विधि अधिकारी होना चाहिए, जो जिला जजों के संवर्ग से लिया गया हो। अन्य दो सदस्यों में से एक सदस्य स्वैच्छिक क्षेत्रक से लिया जाना चाहिए और दूसरा सदस्य राज्य सरकार का कोई अधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त, राज्य में एक पूर्त संस्था न्यायधिकरण होना चाहिए, जो पूर्त संस्था आयोग के आदेशों पर अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करेगा।

(ग) प्रस्तावित माडल विधान को पूर्त संस्था के वार्षिक राजस्व के समबन्ध में एक व्यवच्छेन (कट–आफ) सीमा निर्धारित करनी चाहिए। इस न्यूनतम सीमा से कम वार्षिक आय वाले संगठनों को विवरणियां/रिपोर्टें/अनुमतियां, आदि प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में कम आवश्यकताओं का अनुपालन करना पड़ेगा। लेकिन, यदि उनके कार्यचालन में कोई अनियमितता पायी जाएगी, तो उन संगठनों के खिलाफ कानूनी और दाण्डिक कार्रवाई की जा सकेगी । शुरू में, यह व्यवच्छेदन सीमा 10 लाख रुपए हो सकती है, जिसकी समीक्षा, उसे और ऊ पर बढ़ाने के लिए, पांच वर्षों में एक बार की जा सकती है।

(घ) सरकार को एक समावेशी समिति बनानी चाहिए, जो "पूर्त कार्य (चेरिटी)" और "पूर्त प्रयोजन" की परिभाषा करने के मुद्दे की जांच व्यापक रूप से करेगी, और पूर्त संस्थाओं और सरकार के बीच के सम्बन्धों को, विशेष रूप से करों के मामले में, "मृदु" बनाने के उपायों के सुझाव देगी।

(ङ) माडल विधान को पूर्त प्रशासन के निम्नलिखित मुद्दों के सम्बन्ध में प्रकट किए गए उपर्युक्त विचारों और दिए गए उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए:

i. राज्य सरकार के साथ सम्पर्क
ii. ज्ञापन में परिवर्तन
iii. परिवर्तन रिपोर्ट का अनुमोदन
iv. अचल सम्पत्ति का अन्यसंक्रमण
v. लोक न्यासों द्वारा राज्य सरकारों को अंशदान

3.2 तीसरे क्षेत्रक का राजस्व

3.2.1 भारत में तीसरे क्षेत्रक के संगठन अपनी निधियां चार प्रमुख श्रोतों से जुटाते हैं, अर्थात व्यक्तियों, गैर-सरकारी प्रतिष्ठानों (राष्ट्रीय और वैश्विक), व्यापार गृहों और सरकार से। हाल के वर्षों में, यह फैलाव भी सामाजिक हेतुओं के लिए योगदान देने में भी एक अग्रणी भूमिका निभा रहा है।

3.2.2 स्वैच्छिक संगठनों के निधिपोषण का स्वरूप बहुत टेढ़ा है। जो संगठन समकालीन मुद्दों को उठाते हैं और सूचना माध्यमों के जरिए अपनी आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं, वे अपने लिए धनराशियों की बहुत अधिक मात्रा जुटाने में समर्थ हो जाते हैं और शेष राशि उन संगठनों के लिए बच जाती हैं, जो छोटे होते हैं और अधिक पटु नहीं होते।

3.2.3 निधिपोषण क्रियाकलाप के स्वरूप पर भी निर्भर करता है - कुछ क्षेत्रक, जैसे पर्यावरण का संरक्षण, पोषाहार संपूरक और शहरी सुविधाओं का सृजन, अधिक लोकप्रिय और "मोहक" होते हैं और इसलिए अधिक धन आकर्षित करते हैं, जबकि मानव अधिकार, लैंगिक समानता और सांस्कृतिक परिरक्षण जैसे अन्य क्षेत्रों को संसाधनों की कमी के कारण कष्ट उठाना पड़ता है। अहमदाबाद में उपभोक्ता शिक्षा और अनुसन्धान केन्द्र द्वारा 1990 के दशक के शुरू के भाग में किए गए सर्वेक्षण में यह पाया गया था कि शहर में पंजीयित 8,000 से अधिक न्यासों और 2,000 पूर्त संस्थाओं में से केवल 144 की वार्षिक आय 1,00,000 रूपए (2,173 अमरीकी डालर) से अधिक थी, जबकि सबकी कुल आय संयुक्त रूप से 1,440 मिलियन रूपए[12] थी।

3.2.4 वैयक्तिक दान

3.2.4.1 भारत में पूर्त संगठनों को दिए जाने वाले वैयक्तिक दानों की मात्रा अत्यल्प है। हालांकि स्वैच्छिक क्षेत्रक को सरकार और विदेशी दानकर्त्ता श्रोतों से मिलने वाले दानों की मात्रा में पिछले दशक के दौरान काफी वृद्धि हुई है, लेकिन व्यक्तियों, न्यासों, प्रतिष्ठानों और निगमों द्वारा किए जाने वाले लोकोपकार की मात्रा में उतनी वृद्धि नहीं हुई है । इस प्रकार जुटाई जाने वाली निधियों में लोगों द्वारा दिए जाने वाले प्रत्यक्ष दान (एक बार किया जाने वाला कार्य अथवा आवर्ती लेनदेन) शामिल हैं। अभिवादन कार्डों, डायरियों, हथकरघा और हस्तशिल्प उत्पादों जैसी मदों की बिक्री को प्रोत्साहन दिए जाने और कलाकृतियों की नीलामियों, संगीत कार्यक्रमों, आदि को आयोजित किए जाने के जरिए भी दान प्राप्त हो सकते हैं।

3.2.4.2 प्रमुख संकटों की स्थितियों में वैयक्तिक दान का अधिक प्रचलन है। गुजरात और महाराष्ट्र में भूकम्प और उड़ीसा में चक्रवात आने पर व्यक्तियों और निगमित संगठनों द्वारा उदारतापूर्वक दान दिए गए।

[12]www.cercindia.org

3.2.5 अन्तर्राष्ट्रीय सहायता

3.2.5.1 द्विपक्षीय सहायता

3.2.5.1.1 बहुत से अभिकरणों, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग (डी.एफ.आई.डी.)(ब्रिटिश सरकार), स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग अभिकरण (एस.आई.डी.ए.)(स्वीडन), नार्वेजियन एजेंसी फार डवेलपमेंट कोआपरेशन (नार्वे), और डेनिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण (डेन्मार्क) को भारत सरकार से विशिष्ट परियोजना अनुमोदन प्राप्त किए बिना गैर-सरकारी संगठनों को सहायता देने की अनुमति है। किन्तु, कुछ अभिकरणों के लिए यह जरूरी है कि वे किसी गैर-सरकारी संगठन का वित्तपोषण करें। इसके अलावा, भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा किन्ही अन्य सरकारी अभिकरणों को दी जाने वाली द्विपक्षीय निधि सहायता में उस धनराशि की प्रतिशतता विनिर्दिष्ट की जाती है, जो गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से अवश्य व्यय की जानी चाहिए। सरकार को होने वाले द्विपक्षीय निधिपोषण में हाल में हुई वृद्धि से गैर-सरकारी संगठनों को होने वाले निधियों के प्रवाह में वृद्धि हुई है।

3.2.6 निगम लोकोपकार

3.2.6.1 दान

3.2.6.1.1 भारत में लोकोपकारी क्रियाकलापों के लिए निगम दानों की प्रणाली का एक इतिहास है। पहले के समय, व्यापारी बाढ़ और दुर्भिक्ष के समय राहत के कार्यों में सहायता देते थे। वे मन्दिर बनाते थे, स्कूलों को बढ़ावा देते थे और कलात्मक कार्यों को प्रोत्साहन देते थे। स्वतंत्रता-पूर्त के दिनों में, बहुत से बड़े व्यापारिक गृहों ने स्कूलों, कालेजों और धर्मार्थ अस्पतालों को सहायता देने के लिए न्यास और प्रतिष्ठान स्थापित किए थे। बाद में, कुछ बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियां भी इसमें शामिल हो गईं।

3.2.6.1.2 एक कार्य सहायता (एक्शन एड) अध्ययन ने यह पाया कि निगमों के मोर्चे पर, उन 647 कम्पनियों में से, जिनका सर्वेक्षण किया गया था, केवल 36 प्रतिशत कम्पनियों की सामाजिक विकास के क्रियाकलापों में शामिल होने के बारे में किसी प्रकार की कोई नीति थी (इनमें से 21 प्रतिशत और कुल कम्पनियों में से 8 प्रतिशत कम्पनियों की लिखित नीति थी)। जो कम्पनियां विकास के कार्यों में शामिल थीं, वे मुख्य रूप से नकद अंशदान देती थीं, और इसके अलावा सुविधाहीन व्यक्तियों को रोजगार के अवसर देकर उनकी सहायता करती थीं। अन्य क्रियाकलापों में कम्पनियों की परिसम्पत्तियों का दान, अपने स्टाफ के समय का दान और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा उत्पादित सामग्रियों की खरीद शामिल थी। केवल 16 प्रतिशत कम्पनियों की गैर-सरकारी संगठनों के साथ कुछ प्रकार की भागीदारी थी, जबकि 80 प्रतिशत कम्पनियां लाभभोगी समुदाय के साथ सीधे कार्रवाई करती थीं। इनमें से अधिकतर भागीदारी शहरी क्षेत्रों

में थी। ये भागीदारियां भी विकासात्मक एन.जी.ओ. के साथ नहीं थीं, बल्कि रोटरी और लायन क्लबों जैसी संस्थाओं के साथ थीं।

3.2.6.2 निगम की सामाजिक जिम्मेदारी

3.2.6.2.1 निगम की सामाजिक जिम्मेदारी की परिभाषा समाज और समुदाय के कल्याण के प्रति निगम रूपी हस्ती की प्रतिबद्धता और नैतिक मूल्यों के प्रति उसकी निष्ठा के रूप में की जा सकती है। भारत के शब्द-कोश में यह शब्द अपेक्षाकृत नया हो सकता है, किन्तु यह संकल्पना निश्चित रूप से नई है। हमारे समाज में "न्यासिवा", "दान" और "कल्याण" की परम्पराएं लम्बे समय से बनी हुई हैं। सामाजिक भलाई की संकल्पना हमेशा भारतीय मानसिकता का भाग रही है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से, भारत में व्यापार और उद्योग समाज और समुदाय के प्रति अपने दायित्व और अपनी प्रतिबद्धता के प्रति विभिन्न तरीकों से ध्यान देते रहे हैं। स्कूलों, कालेजों, अस्पतालों और पूर्त संस्थापनों की बहुत बड़ी संख्या, जिनकी स्थापना देश के विभिन्न भागों में 20वीं शताब्दी में की गई, इस सामाजिक प्रतिबद्धता के बढ़िया उदाहरण हैं।

3.2.6.2.2 हाल के वर्षों में, निगमों की सामाजिक जिम्मेदारी पूर्त कार्यों के क्षेत्र से स्थानान्तरित होकर मानक व्यापारिक रीतियों के क्षेत्र में चली गई है। "लाभ" और "संवृद्धि" के साथ, यह उन प्राचलों में से एक महत्वपूर्ण प्राचल है, जिनसे व्यापार परिभाषित होता है। पणधारियों की जागरूकता, सिविल समाज की बढ़ती हुई शाक्ति, प्रतियोगिता की तीव्रता और पर्यावरणिक चुनौतियां कुछ ऐसे तत्व हैं, जिन्होंने हाल के समय में निगमों की सामाजिक जिम्मेदारी पर दिए जाने वाले बल को बढ़ा दिया है।

बाक्स 3.1 : निगम की सामाजिक जिम्मेदारी की परिभाषा

विश्व बैंक ने निगमों की सामाजिक जिम्मेदारी की परिभाषा इस तरह से की है "अपने कर्मचारियों और उनके परिवारों, स्थानीय समुदाय और सामान्य समाज के साथ काम करते हुए ऐसे संधारणीय आर्थिक विकास में योगदान देने के लिए व्यापार की प्रतिबद्धता, जिससे जीवन की गुणवत्ता में इस प्रकार सुधार हो सके, जो व्यापार और विकस दोनों के लिए अच्छा हो।"

3.2.6.2.3 भारत में कम्पनियां अब अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं और उनमें से बहुत सी कम्पनियां इसके लिए काफी अधिक संसाधन आंबटित करती हैं। टाटा, आई.टी.सी. और अज़ीम प्रेमजी प्रतिष्ठान ऐसी प्रमुख हस्तियां हैं, जिन्होंने व्यापार की योजनाओं को नैतिक और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ जोड़ दिया है। टाटाओं के पूर्णतया समर्पित प्रतिष्ठान और संस्थापनाएं हैं, जिनके माध्यम से वे नागरिकों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति के रूप में समुदाय और समाज के सामाजिक/आर्थिक सशक्तीकरण के महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाते हैं। इसके अलावा, उनके

विनिर्माण एकक भी स्थानीय क्षेत्रों में विकास का कार्य हाथ में लेते हैं। आई.टी.सी. के पास एक समर्पित सामाजिक विकास टीम है, जो निगम की सामाजिक जिम्मेदारी की सभी पहलों का संयोजन करती है। एक ऐसा अलग प्रतिष्ठान बनाने के स्थान पर, जो स्वयं अकेला रह कर लोकोपकार क्रियाकलापों के हाथ में ले, आई.टी.सी. इसे अपनी व्यापार योजनाओं के साथ एकीकृत करती है। यह सामाजिक वानिकी, एकीकृत वाटरशेड विकास, तम्बाकू किसानों का वेब समर्थता, ई-चौपाल की खेत विस्तार सेवाएं और पशुधन विकास के क्षेत्रों में व्यापारिक संयोजन के रूप में सरकार-गैर-सरकारी भागीदारी बना कर अपनी सामाजिक जिम्मेदारी पूरा करती है। एक अन्य उल्लेखनीय उदाहरण अज़ीम प्रेमजी प्रतिष्ठान है, जो वर्ष 2001 में शुरू किया गया था। यह एक लाभ-निरपेक्ष संगठन है, जो "ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी स्कूलों में दी जा रही प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए" व्यापक रूप से कार्य करता है। इस प्रतिष्ठान का यह दृढ़ विश्वास है कि केवल कुछ लघु क्षेत्रों में उत्कृष्टता के द्वीप स्थापित करने का बहुत अधिक महत्व नहीं है और इसलिए उसका लक्ष्य समूचे देश में प्राथमिक शिक्षा के समूचे वातावरण में बहु-आयामी प्रणालीगत परिवर्तन लाना है। इस समय, यह पांच राज्यों, अर्थात कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान और उत्तराखंड के शिक्षा गांरटी कार्यक्रम चला रहा है। यह देश के 13 राज्यों में 16,017 प्राथमिक स्कूलों को प्रौद्योगिकी की सहायता दे रहा है।

3.2.6.2.4 आयोग स्वीकार करता है कि पिछले कई वर्षों के दौरान बहुत से निगमों ने प्राथमिक/प्रौढ़ शिक्षा, पशुधन विकास, तालाब सिंचाई, सफाई, महिला और बाल पोषाहार और पेयजल की व्यवस्था जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लिया है। आयोग का विचार है कि निगमों को चाहिए कि वे ऐसे क्रियाकलापों को हाथ में लेते समय स्थानीय लोगों की मौजूदा आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखें। यह सुनिश्चित करने की भी आवश्यकता है कि क्षेत्र में अन्य ऐसे कार्यक्रमों में कोई अतिव्याप्ति/टकराव न हो।

3.2.6.2.5 **सिफारिशें**

क) जब किसी निगमित निकाय द्वारा कोई सामुदायिक लाभ वाली परियोजना हाथ में ली जाए, तो कम्पनी और स्थानीय सरकार के बीच परस्पर कुछ परामर्श होना चाहिए, ताकि उस क्षेत्र में ऐसे ही किसी अन्य विकास कार्यक्रम के साथ कोई अनावश्यक अतिव्याप्ति न हो।

ख) सरकार को एक सुविधाप्रदाता के रूप में कार्य करना चाहिए और ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिससे व्यापार और उद्योग को ऐसी परियोजनाएं और ऐसे क्रियाकलाप हाथ में लेने के लिए प्रोत्साहन मिले, जिनसे स्थानीय समुदाय के जीवन की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो।

3.2.7 सरकारी निधिपोषण

3.2.7.1 केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें दोनों स्वैच्छिक संगठनों को ग्रामीण प्रौद्योगिकी, समाज कल्याण के सरोकारों, प्राथमिक शिक्षा, प्रसूति और बाल स्वास्थ्य परिचर्या, प्रौढ़ शिक्षा, महिलाओं के सशक्तीकरण और अशक्त व्यक्तियों के पुनर्वास जैसे अनेक क्रियाकलापों को लिए काफी अधिक बजटीय सहायता देती हैं। भारत सरकार ने स्वैच्छिक संगठनों को अनुदानों के सीधे संवितरण के अलावा, तीसरे क्षेत्रक के क्रियाकलापों के सहायता देने के लिए विशेष रूप से शक्तिप्राप्त स्वायत्त निकायों की स्थापना की है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड और राष्ट्रीय लोक सहयोग और बाल विकास परिषद दो ऐसे प्रमुख निकाय हैं, जो समाज कल्याण के क्षेत्रक में सरकार और गैर-सरकारी संगठनों के बीच परस्पर सम्पर्क के बारे में कार्रवाई करते हैं, जबकि लोक कार्य और ग्रामीण प्रौद्योगिकी उन्नयन परिषद (कापार्ट) एक ऐसा अभिकरण है, जो स्वैच्छिक संगठनों का वित्तपोषण उन्हें जमीनी स्तर पर भाग लेने के लिए उत्प्रेरित करने और ग्रामीण प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन देने के लिए करता है। इस समय वैज्ञानिक विभागों के अन्तर्गत काम करने वाले स्वायत्त संगठनों के अलावा, भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के अन्तर्गत 437 से अधिक स्वायत्त संगठन काम कर रहे हैं। आयोग अपने विचारणीय विषय संख्या 1, अर्थात "भारत सरकार का संगठनात्मक ढांचा" के बारे में अपनी रिपोर्ट में इस मुद्दे की जांच करेगा।

एक अन्य तरीका, जिसके जरिए राज्य पूर्त क्षेत्रक को सहायता प्रदान करता है, वह है करों में विभिन्न प्रकार की रियायतें देना। इस मुद्दे पर पैरा 3.3 में विस्तार से चर्चा की गई है।

3.2.7.2 स्वैच्छिक संगठनों का प्रत्यायन

3.2.7.2.1 प्रत्यायन किसी ऐसे संगठन की उपलब्धियों को औपचारिक मान्यता देना है, जो किसी आन्तरिक/बाह्य प्रतिमानों से जुड़ा हुआ हो, जैसे दीर्घकालिक लक्ष्यों और उद्देश्यों के साथ प्रतिबद्धता, संगठनात्मक योग्यता, वित्तीय प्रतिमानों का अनुसरण, पारदर्शिता और उत्तरदायिता, आदि।

3.2.7.2.2 बहुत अधिक स्वैच्छिक संगठनों को सामाजिक और कल्याण सेवाओं, सर्वेक्षणों, अध्ययनों, मानीटरन, मूल्यांकन, आदि जैसे अनेक प्रयोजनों के लिए सराकर से अनुदान प्राप्त होते हैं। इन संगठनों में उनकी क्षमता और विश्वसनीयता के रूप में बहुत भिन्नता है। प्रत्यायन/प्रमाणीकरण की कोई प्रणाली न होने के कारण, केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारी अभिकरण को गुणवत्ता को महत्व देने वाले संगठनों और उन संगठनों के बीच, जिनकी स्थापना केवल-मात्र सरकारी अनुदान प्राप्त करने के लिए की गई है, भेद करना बहुत कठिन होता है। इस सन्दर्भ में, व्यापक रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि स्वैच्छिक संगठनों के लिए प्रत्यायन और प्रमाणीकरण की कोई प्रणाली होने की आवश्यकता है, जिससे

सरकार और गैर-सरकारी संगठनों के बीच भागीदारी स्थापित करना सुविधाजनक हो और विशेष रूप से इन अभिकरणों के निधिपोषण के कार्य में पारदर्शिता आए। प्रत्यायन/प्रमाणीकरण के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया इतनी जटिल नहीं होनी चाहिए कि उससे परेशानी और विलम्ब हो और भ्रष्टाचार पैदा हो।

3.2.7.2.3 सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्यायन सबसे बढ़िया रूप से स्वैच्छिक क्षेत्रक द्वारा स्वयं किया जा सकता है। किन्तु, देश में स्वैच्छिक संगठनों का स्व-विनियामक निकाय बनाने के प्रयत्नों में अभी तक सफलता नहीं मिली है। यह महसूस किया जाता है कि इस प्रक्रिया में सरकार को शामिल करने की आवश्यकता है।

3.2.7.2.4 स्वैच्छिक संगठनों के लिए हाथ में ली गई प्रत्यायन/प्रमाणीकरण की प्रक्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए:

क. उत्तरदायिता और पारदर्शिता

ख. कोई कोटि (रैंकिग) अथवा दर्जा (रेटिंग) निर्धारित नहीं किया जाना चाहिए

ग. प्रतिमान क्षेत्रक के साथ संगत होने जरूरी हैं।

3.2.7.2.5 योजना आयोग द्वारा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए स्वैच्छिक क्षेत्रक के बारे में गठित की गई संचालन समिति ने इस मुद्दे पर विचार किया था और सिफारिश की थी कि पश्चिम, उत्तर, पूर्व, उत्तर-पूर्त और दक्षिण भारत में पांच प्रादेशिक केन्द्रों के साथ एक राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद स्थापित की जाए और बाद में उचित समय पर प्रमुख महानगरों में ऐसे केन्द्र स्थापित किए जा सकते हैं। राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद में समाज कार्य स्कूलों के विद्वानों, स्वैच्छिक क्षेत्रक के नेटवर्क के नेताओं, सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारियों, जिन्होंने सेवा-निवृत्त होने के बाद कम से कम पांच वर्ष किसी गैर-सरकारी संगठन में काम किया हो, और सी.आई.आई., एस्सोचैम, एफ.आई.सी.सी.आई. (फिक्की) आदि जैसी निगम एसोसिएशनों के सदस्यों और प्रतिष्ठाप्राप्त गैर-सरकारी संगठनों के नेताओं को शामिल किया जा सकता है। निर्धारकों को विभिन्न क्षेत्रों, जैसे समाज कार्य स्कूलों, प्रबन्धन स्कूलों, जैसे ग्रामीण प्रबन्ध स्कूल, आनन्द, ग्रांट थार्नटन, क्रिसिल, डीलाइटे और प्राइज वाटरहाउस कूपर्ज जैसी लेखापालन फर्मों, अथवा वित्तीय प्रबन्ध सेवा प्रतिष्ठान, अथवा एड फाउंडेशन, जैसे "गिव इंडिया", आदि से आमंत्रित किए जा सकते हैं। लेखपरीक्षा फर्में अपने ग्राहकों का प्रत्यायन नहीं कर सकतीं; क्योंकि इससे हित का टकराव पैदा होगा। राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद उन्हें संगठनात्मक निर्धारण क्षमता, स्वैच्छिक क्षेत्रक के साथ परिचय और

स्वतंत्रता और विश्वसनीयता जैसे मानदंडों के आधार पर तालिका में शामिल करेगी। राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद प्रलेखन और निर्धारकों के मूल्यांकन के आधार पर स्वैच्छिक संगठनों का प्रत्यायन करेगी।

3.2.7.2.6 इसके अलावा, यह सिफारिश की गई है कि प्रारम्भिक प्रायोगिक दौर में, जब प्रत्यायन की संकल्पना को लोकप्रिय बनाया जाना है, लागत को राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद द्वारा अपनी निधि से पूरा किया जाना चाहिए, जिसकी अनुपूर्ति बड़े दाताओं के अंशदान से की जा सकती है। बाद में, जब यह मजबूती से स्थापित हो जाए, तो सामाजिक लेखापरीक्षकों के व्यय को पूरा करने के दो मुख्य विकल्प हो सकते हैं: (i) प्रत्यायन शुल्क वसूल करना, जो पट्टी (स्लैब) प्रणाली के आधार पर, गैर-सरकारी संगठन के वार्षिक बजट के आकार के साथ जुड़ा हो (बहुत छोटे गैर-सरकारी संगठनों के मामले में, राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद खर्चों के लिए पूरी तरह से आर्थिक सहायता (सब्सिडी) देने पर विचार कर सकती है); और (ii) दाताओं से यथानुपात आधार पर व्यय वसूल करना।

3.2.7.2.7 आयोग ने इस समूचे मुद्दे पर बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया है और इस विचार से सहमत है कि:

(क) स्वैच्छिक क्षेत्रक में पणधारियों के प्रति उत्तरदायिता और कार्यचालन में पारदर्शिता अत्यावश्यक है; इसलिए यह जरूरी है कि स्वैच्छिक संगठनों का प्रत्यायन किसी स्वतन्त्र निकाय, जैसे राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति द्वारा किया जाए। यह निकाय कानून द्वारा स्थापित किया जा सकता है।

(ख) प्रत्यायन का अर्थ स्वैच्छिक संगठनों की कोटि अथवा उनका दर्जा निर्धारित करना नहीं है। यह पारदर्शिता, उत्तरदायिता और विश्वसनीयता की मोहर है।

(ग) शुरू में, सरकार के लिए राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति को प्रर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराने की आवश्यकता है, जिसकी अनुपूर्ति अंशदानों द्वारा की जा सकती है। उसके बाद, परिषद अपने ग्राहकों से शुल्क वसूल करके अपने क्रियाकलापों का वित्तपोषण कर सकती है। प्रत्यायन/ प्रमाणीकरण की ऐसी प्रणाली केवल उन संगठनों पर लागू होनी चाहिए, जो सरकारी अभिकरणों से निधिपोषण प्राप्त करते हैं। इस उद्देश्य से, कि जो प्राचल अपनाए जांए, वे स्पष्ट और पारदर्शी हों और राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति द्वारा किए जाने वाले कार्य स्वतंत्र हों, यह उपयुक्त होगा कि कानून में परिषद को गठन, उसके कार्यों और उसकी प्रक्रिया को स्पष्टता से निर्धारित किया जाए।

3.2.7.2.8 सिफारिशें

(क) उन स्वैच्छिक संगठनों के प्रत्यायन/प्रमाणीकरण की कोई प्रणाली होनी चाहिए, जो सरकारी अभिकरणों से निधिपोषण प्राप्त करते हैं।

(ख) सरकार को ऐसे कार्य को हाथ में लेने वाले एक स्वतंत्र निकाय – राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति – की स्थापना करने के लिए एक कानून बनाने के लिए पहल करनी चाहिए। प्रारम्भ में, सरकार के लिए इस संगठन को एक–बारगी धनराशि उपबन्ध कराना जरूरी हो सकता है।

(ग) उपर्युक्त कानून में परिषद के गठन, उसके कार्यों, आवेदकों से उपयुक्त शुल्क उगाहने की उसकी शाक्तियों और अन्य सम्बन्धित मामलों का ब्योरा होना चाहिए।

3.3 पूर्त संगठन और कर कानून

3.3.1 आयकर अधिनियम, 1961 एक संधीय विधान है, जो भारत में सभी स्वैच्छिक संगठनों (न्यास, समिति अथवा कम्पनी) पर समान रूप से लागू होता है। कोई भी (लाभ-निरपेक्ष) संगठन, जो पूर्त कार्य में, जो "गरीबों के लिए राहत, शिक्षा, चिकित्सा सहायता और सामान्य लोक उपयोगिता के उद्देश्यों को, जिसमें लाभ के लिए कोई क्रियाकलाप शामिल न हो, आगे बढ़ाने के कार्य" के रूप में परिभाषित है, संलग्न हो, आयकर अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत, उसमें शामिल शर्तों और प्रतिबन्धों के अधीन, कर रियायतों और अन्य लाभों की मांग कर सकता है।

3.3.2 स्थूल रूप से, आयकर अधिनियम पूर्त संगठनों को निम्नलिखित तीन तरीकों से लाभ प्रदान करता है:

I. कुछ आमदनियां सम्पूर्ण आय में शामिल नहीं की जातीं

1. धारा 10 में उन आमदनियों का वर्णन किया गया है, जो कुल आय का भाग नहीं होतीं; पूर्त संगठनों से सम्बन्धित उप-धाराएं इस प्रकार हैं:

धारा 10 (23 ग) (iv) और (v) में यह कहा गया है कि उन पूर्त उद्देश्यों के लिए, जो विहित प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित हों, स्थापित संस्थाओं की आय को उस संस्था की कुल आय की गणना में शामिल नहीं किया जाएगा और उस पर कर लागू नहीं होगा।

जून, 2007 से पहले, इन धाराओं के अन्तर्गत छूट देने का अनुमोदन केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचना के जरिए तीन वर्षों की अवधि के लिए दिया जा रहा था। जून, 2007 के बाद, प्रक्रिया

को सरल और कारगर बनाने के लिए, ये शक्तियां प्रत्यायोजित कर दी गई हैं और अब सम्बन्धित मुख्य आयुक्त/महानिदेशक ऐसी छूट देने का अनुमोदन करने वाले विहित प्राधिकारी हैं। उपर्युक्त उपबन्ध के तहत छूट के लिए अनुमोदन उस महीने के समाप्त होने के बाद से, जिसमें ऐसा आवेदन प्राप्त हुआ हो, बारह महीनों तक की अवधि के भीतर दिया जाएगा अथवा आवेदन को रद्द करने का आदेश भी उसी अवधि में पारित किया जाएगा। यह आदेश न्यास के जीवन-पर्यन्त वैध रहेगा, जब तक कि संविधि का कोई उल्लंधन नहीं किया जाएगा।

2. धारा 11 से 13 में उन न्यासों के निर्धारण का उपबन्ध है, जो पूर्णत: पूर्त अथवा धार्मिक प्रयोजनों के लिए हैं। धारा 11 में यह उपबन्ध है कि पूर्त अथवा धार्मिक प्रयोजनों के लिए रखी गई सम्पत्ति को न्यास, आदि की कुल आय में शामिल नहीं किया जाएगा, यदि आय को अधिनियम के अनुसार उपयोग में लाया जाएगा। यह उस हद तक लागू होगा, जिस हद तक पूर्णत: पूर्त अथवा धार्मिक प्रयोजनों वाले न्यास के अन्तर्गत रखी गई सम्पत्ति से प्राप्त आय का उपयोग भारत में ऐसे प्रयोजनों के लिए किया जाएगा; और जहां ऐसी आय को संचित किया जाएगा अथवा बाद में उपयोग के लिए अलग रखा जाएगा, तो ऐसे संचित की गई अथवा अलग रखी गई आय ऐसी सम्पत्ति की कुल आय के 15 प्रतिशत से अनधिक होगी। लाभ-निरपेक्ष संगठन को किसी वित्तीय वर्ष में अपनी आय के 85 प्रतिशत भाग का उपयोग संगठन के उद्देश्यों के लिए अवश्य कर लेना चाहिए। यदि कोई संगठन आय के देर से प्राप्त होने अथवा किसी अन्य कारणवश अपनी आय के 85 प्रतिशत भाग का उपयोग वित्तीय वर्ष के दौरान नहीं कर पाता, तो न्यासी आय को अगले बारह महीनों के दौरान व्यय करने के विकल्प का प्रयोग कर सकते हैं। आय को, निम्नलिखित शर्तों के अधीन, विशिष्ट परियोजनाओं के लिए एक से लेकर पांच वर्ष तक की अवधि के लिए संचित भी किया जा सकता है (1-4-2002 से पहले वह अधिकतग अवधि, जिसके लिए आय को संचित किया जा सकता था अथवा अलग रखा जा सकता था, दस वर्ष थी):

i. संगठन की निधियां आयकर अधिनियम की धारा 11(5) के अन्तर्गत केवल विनिर्दिष्ट अनुमोदित प्रतिभूतियों में निविष्ट/जमा की जाती हैं।

ii. संगठन की आय अथवा सम्पत्ति का कोई भी भाग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संस्थापक, न्यासी, संस्थापक अथवा न्यासी के किसी सम्बन्धी, अथवा किसी ऐसे व्यक्ति के लाभ के लिए उपयोग विनियोजित नहीं किया जाता, जिसने किसी वित्तीय वर्ष के दैरान संगठन को 50,000/- रुपए से अधिक का अंशदान किया हो।

iii. संगठन वार्षिक रूप से अपनी आय की विवरणी विहित समय-सीमा के भीतर दायर करता है।

धारा 11 में यह भी उपबन्ध है कि इस विशिष्ट निदेश के साथ किए गए अंशदानों के रूप में न्यास की आय को न्यास, आदि की आय नहीं माना जाएगा कि ये अंशदान न्यास अथवा संस्था की समग्र निधि का भाग बनेंगे।

धारा 12 में यह उपबन्ध किया गया है कि पूर्णत: पूर्त अथवा धार्मिक प्रयोजनों के लिए बनाए गए न्यास/बनाई गई संस्था को प्राप्त अंशदानों को न्यास के अन्तर्गत धारित सम्पत्ति से उत्पन्न आय समझा जाएगा और उन्हें न्यास की आय में शामिल नहीं किया जाएगा, जैसाकि धारा 11 में उपबन्धित है।

धारा 12 क (1) (क क) में महत्वपूर्ण रूप से यह उपबन्ध है कि धारा 11 और धारा 12 के उपबन्ध किसी न्यास अथवा संस्था की आय पर केवल तब लागू होंगे, यदि न्यास ने विहित रूप और तरीके से आयुक्त को पंजीयन के लिए आवेदन दिया हो और वह न्यास अथवा संस्था, धारा 12 क क के अन्तर्गत पंजीयित हो।

धारा 12 क क के तहत पंजीयन देने/रद्द करने वाला प्राधिकारी आयकर आयुक्त है। संविधि के अनुसार यह जरूरी है कि पंजीयन देने वाला अथवा पंजीयन करने से इन्कार करने वाला प्रत्येक आदेश उस महीने के अन्त से, जिसमें आवेदन प्राप्त हुआ हो, छ: महीने तक की अवधि के पूरा होने से पहले पारित किया जाए। अनुमति देने से इन्कार करने वाला कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा, जब तक कि आवेदनकर्त्ता को अपनी बात कहने का उपयुक्त अवसर न दिया गया हो। आयुक्त प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की छानबीन कर सकता है और निकाय के उद्देश्यों और क्रियाकलापों की जांच कर सकता है। इस धारा के अन्तर्गत पंजीयन प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत किए जाने जरूरी हैं:

i. उस लिखित की प्रतिलिपि, जिसके द्वारा प्रतिष्ठान की स्थापना की गई हो;

ii. उपर्युक्त के समर्थन में अन्य दस्तावेज;

iii. संस्था की स्थापना से लेकर अथवा पिछले तीन वर्षों के, जो भी कम हो, संस्था के लेखाओं की प्रतिलिपियां।

II. व्यापार और व्यवसाय के लाभों और प्राप्तियों से की जाने वाली कटौतियां

1. वैज्ञानिक अनुसन्धान पर व्यय करने को प्रोत्साहन देने के लिए, आयकर अधिनियम की धारा 35 में किसी करदाता द्वारा किसी अनुमोदित अनुसन्धान एसोसिएशन, अनुमोदित विश्वविद्यालय,

कालेज, अनुसन्धान करने वाली कम्पनी अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिए इस्तेमाल की जाने वाली किसी अन्य संस्था को अदा की गई राशि की 125 प्रतिशत के बराबर राशि की भारित कटौती, कतिपय विनिर्दिष्ट शर्तों के अध्यधीन किए जाने का उपबन्ध है। संघ सरकार वह प्राधिकरण है, जो कम्पनियों, संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, आदि को अनुमोदित करता है। इस धारा के तहत आवेदन को अनुमोदित/अस्वीकार करने का आदेश संघ सरकार द्वारा उस महीने के अन्त से, जिसमें आवेदन प्राप्त हुआ हो, बारह महीने तक की अवधि में जारी किए जाने की आवश्यकता है। अप्रैल 1, 2006 से, संगठन, संस्था, आदि को दी गई मान्यता उसका अस्तित्व बने रहने तक वैध है, जब तक कि संध सरकार द्वारा उसे वापस न ले लिया गया हो।

2. आयकर अधिनियम की धारा 35 क ग में करदाता को कर-निर्धारिती की व्यापारिक आय से पात्र परियोजनाओं अथवा स्कीमों पर किए गए व्यय के सम्बन्ध में, जहां निर्धारिती किसी पात्र परियोजना अथवा स्कीम को कार्यान्वित करने के लिए सरकारी क्षेत्र की किसी कम्पनी अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण अथवा राष्ट्रीय समिति द्वारा अनुमोदित किसी एसोसिएशन अथवा संस्था को अदायगी के रूप में कोई व्यय करता है, कटौतियों की अनुमति देने का उपबन्ध भी किया गया है। परियोजना अथवा स्कीम के लिए अनुमोदन केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय समिति की सिफारिश पर दिया जाता है।

आयकर नियमों में चौदह सदस्यीय राष्ट्रीय समिति और उसके कार्यकरण के बारे में नियम 11-च से 11-ण तक में विशिष्ट उपबन्ध हैं। इन उपबन्धों में यह भी विनिर्दिष्ट किया गया है कि किन किस्मों की परियोजनाएं इस धारा के अन्तर्गत लाभों के लिए अर्हताप्राप्त हैं। सरकार (वित्त मंत्रालय) द्वारा राष्ट्रीय समिति की सिफारिश पर अधिकतम तीन वर्षों के लिए अनुमोदन दिया जाता है। समिति के सन्तुष्ट हो जाने और उसके बाद संघ सरकार द्वारा अनुमोदित कर दिए जाने पर इसे और आगे बढ़ाया जा सकता है।

3. आयकर अधिनियम की धारा 35 ग ग क में निर्धारिती की व्यापारिक आय में से ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाने के लिए किए गए व्यय के सम्बन्ध में भी कटौतियां किए जाने का उपबन्ध किया गया है। धारा 35 ग ग में मोटे रूप से यह कहा गया है कि जहां कोई निर्धारिती किसी एसोसिएशन अथवा संस्था को, जिसका उद्देश्य ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम को हाथ में लेना हो, कोई राशि अदा करने के रूप में कोई व्यय करता है तो निधारिती को पिछले वर्ष के दौरान किए गए ऐसे व्यय की राशि की कटौती करने की छूट दी जाएगी।

III. कुल आय पर कर देनदारी की गणना करने के प्रयोजनों से कुल आय की गणना करने में की जाने वाली कटौतियां

1. दाता (व्यक्ति, एसोसिएशनें, कम्पनियां, आदि) आयकर अधिनियम की धारा 80 छ के अन्तर्गत कर छूट की स्थिति वाले पंजीयित पूर्त संगठनों को दिए गए अंशदानों के 50 प्रतिशत के बराबर की कटौती के हकदार हैं। लेकिन, जैसा कि अधिनियम में उपबन्ध है, दाता जितना लाभ प्राप्त कर सकते हैं, उसकी एक सीमा है। यह लाभ आयकर अधिनियम की धारा 80छ की उप-धारा 5 के अन्तर्गत लागू शर्तों के अधीन है।

दाता को इस धारा के अन्तर्गत लाभ उठाने में समर्थ बनाने के लिए, पूर्त संगठन के लिए आयकर नियमों के नियम 11 क क के अनुसार आयकर आयुक्त से अनुमोदन लेना आवश्यक है। ऐसा अनुमोदन प्राप्त करने के लिए आवेदनकर्त्ता के लिए निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत करना जरूरी है:

i. धारा 12 क अन्तर्गत प्रदान किए गए पंजीयन की प्रतिलिपि अथवा धारा 10(23) अथवा 10(23 ग) के अन्तर्गत जारी की गई अधिसूचना की प्रतिलिपि;

ii. संस्था के शुरू होने के समय से लेकर अथवा पिछले तीन वर्षों के दौरान, जो भी कम हो, संस्था के क्रियाकलापों के बारे में टिप्परणियां;

iii. संस्था के शुरू होने के समय से लेकर अथवा पिछले तीन वर्षों के दौरान, जो भी कम हो, संस्था के लेखाओं की प्रतिलिपियां।

सन्तुष्ट हो जाने पर, आयुक्त द्वारा अनुमोदन दिया जाएगा और रद्द करने का कोई ओदश आवेदनकर्त्ता को सुनवाई का अवसर दिए बिना पारित नहीं किया जाएगा। ऐसे अनुमोदन की वैधता अधिकतम पांच वर्षों के लिए होती है। नियम 11 क क में आवेदन के बारे में फैसला करने की समय-सीमा निर्धारित की गई है, जो आवेदन की तारीख से छः महीने तक की अवधि से अधिक नहीं होनी चाहिए। लेकिन, छः महीने की अवधि की गणना करने में, उस समय को शामिल नहीं किया जाता, जो आवेदनकर्त्ता द्वारा आयुक्त के निदेशों का पालन करने में लिया जाता है।

3.3.3 सारांश यह कि स्वैच्छिक संगठनों और आयकर अधिनियम के बीच आमने-सामने होने के चार क्षेत्र हैं। पहला है, आयकर अधिनियम की धारा 10(23 ग) के अन्तर्गत विहित प्राधिकरण से छूट का अनुमोदन प्राप्त करना। दूसरा है, धारा 12 क और 12 क क के तहत पूर्त संस्था के रूप में पंजीयित

होने की प्रक्रिया (धारा 11 और 12 के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए)। तीसरा है, 80 छ छूट प्रमाणपत्र स्थिति प्राप्त करना। और चौथा है, धारा 35, 35 क ग, और 35 ग ग क के अन्तर्गत कटौतियां प्राप्त करने की मांग करना। आयकर अधिनियम के सम्बन्धित उपबन्धों के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने के लिए जिन प्रक्रियाओं का पालन किया जाना होता है, उन पर उपर्युक्त पैराग्राफों में संक्षिप्त रूप से चर्चा की जा चुकी है।

3.3.4 धारा 12 क क और धारा 80 छ के अन्तर्गत प्रक्रिया का सरलीकरण

3.3.4.1 जैसाकि ऊपर बताया गया है, धारा 80 छ के अन्तर्गत अनुमोदन छः महीनों के भीतर दिया जाना जरूरी होता है; लेकिन छः महीनों की अवधि का हिसाब लगाने में, उस समय को शामिल नहीं किया जाएगा, जो आवेदनकर्त्ता द्वारा आयुक्त के निदेशों का पालन करने में लिया जाए। बहुत से संगठनों ने आयोग के ध्यान में यह बात लाई है कि इस परन्तुक के कारण 80छ छूट को देने में कुछ बार वस्तुतः बहुत लम्बा समय लग जाता है। वास्तव में, ऐसी घटनाएं बहुत बार हुई हैं कि जब आवेदनकर्त्ता को प्रमाणपत्र उपलब्ध किया जाता है, तो मामला नवीकरण प्राप्त करने की स्थिति में आ जाता है। ये सुझाव दिए गए हैं कि धारा 80 छ के अन्तर्गत किसी पूर्त संस्था को छूट प्रमाणपत्र स्थाई रूप से दिया जाना चाहिए। कर प्राधिकारियों को किसी मामले में पंजीयन रद्द करने की शक्तियां प्राप्त होती हैं, यदि किसी दुरूपयोग/ भ्रष्टाचार का पता चले। इसके विपरीत तर्क यह है कि चूंकि देश में इस प्रकार की संख्या बहुत अधिक है (जिनमें से बहुत सी संस्थाएं हर वर्ष काफी अधिक दान प्राप्त करती हैं) और अब केवल एक सीमित संख्या में मामलों को जांच के लिए हाथ में लिया जाता है, इसलिए आयकर विभाग के लिए इन संस्थाओं के लेनदेनों पर निरन्तर नजर रखना वास्तविक रूप से संभव नहीं होगा। एक विहित अन्तराल पर, 80 छ प्रमाणपत्र का नवीकरण प्राप्त करने की आवश्यकता के कारण, किसी संगठन के लिए सम्पूर्ण ब्योरे के साथ विभाग को नए रूप से आवेदन देना जरूरी होगा। इसलिए, किसी संगठन को आयकर प्राधिकारियों के राडार पर रखने के लिए सावधिक पुनर्मान्यकरण का खंड होना जरूरी है।

3.3.4.2 आयोग प्रशासनिक प्रक्रिया को सरल बनाने की आवश्यकता को समझता है। धारा 80 छ और 12 क क के अन्तर्गत संगठनों को पंजीयन प्रदान करने में लगने वाले समय को घटाने के लिए, आयोग का मत है कि इन धाराओं के अन्तर्गत अनुमोदन देने और आवेदनों को अस्वीकार करने के आदेश को विहित प्राधिकरण द्वारा नब्बे दिनों की समय-सीमा के अन्दर पारित किया जा सकता है। रद्द किए जाने के मामले में, निर्धारिती के पास आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 12 क क और धारा 80 छ के अन्तर्गत आयुक्त द्वारा पारित किए गए आदेश के खिलाफ अपील करने का विकल्प होता है।

3.3.5 अधिशेष आय को संचित करने की समय-सीमा बढ़ाना

3.3.5.1 मौजूदा उपबन्धों के अन्तर्गत, अधिशेष आय को विशिष्ट परियोजनाओं के लिए अधिकतम पांच वर्षों की अवधि के लिए संचित किया जा सकता है। इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए, यह जरूरी है कि संचय की अवधि के दौरान संचित आय का निवेश आयकर अधिनियम की धारा 11(5) के अन्तर्गत यथाविहित तरीके से किया जाए।

3.3.5.2 आयोग के ध्यान में यह बात लाई गई थी कि बहुत से न्यास/पूर्त संस्थांए ऐसी परियोजनाओं में संलग्न हैं; जिनका अवसंरचना का परिव्यय बहुत अधिक है। प्राय: इतनी बड़ी परियोजनाओं को निर्धारित समय-सीमा के भीतर पूरा करना सम्भव नहीं होता। आय के अधिशेष के संचय को पांच वर्षों की अवधि तक सीमित करना वास्तव में परियोजना के पूरा होने में बाधा डाल सकता है। आयोग का मत है कि आधुनिक समय में, इमारतें और बुनियादी ढांचा पूर्त संस्थाओं (अस्पतालों, वृद्ध गृहों, अनाथालयों, शिक्षा संस्थाओं, आदि) के कार्यकरण के महत्वपूर्ण संघटक हैं। इसलिए संचय की अवधि को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

3.3.6 धारा 35 क ग के अन्तर्गत प्रक्रिया को युक्तिसंगत बनाना

3.3.6.1 जैसाकि आयकर अधिनियम की धारा 35 क ग के बारे में पहले के पैराग्राफों में कहा गया है, पात्र परियोजनाओं के लिए व्यय में कटौती की छूट दी जाती है, यदि राष्ट्रीय समिति द्वारा उसकी सिफारिश वित्त मंत्रालय को की जाए। आयोग के सामने यह अभ्यावेदन दिया गया है कि यह एक लम्बा समय लेने वाली प्रकिया है, विशेष रूप से इस कटौती का लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले उन संगठनों के लिए, जो दूर-दराज के इलाकों में स्थित हैं। उन्हें राष्ट्रीय समिति के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए काफी अधिक समय, शक्ति और संसाधनों का व्यय करना पड़ता है।

3.3.6.2 आयोग का विचार है कि कानून के इस उपबन्ध के अन्तर्गत मांगी जाने वाली कटौतियां देने के काम में तेजी लाई जा सकती है, यदि राष्ट्रीय समिति के स्थान पर दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई और कोलकाता में चार क्षेत्रीय राष्ट्रीय समितियां स्थापित की जाएं। इन समितियों के सदस्य सार्वजनिक जीवन में भाग लेने वाले सुप्रतिष्ठित व्यक्ति होंगे (जैसाकि मौजूदा राष्ट्रीय समिति में होता है), लेकिन इन समितियों की सदस्य-संख्या कम होगी। क्षेत्रीय स्तरों पर समितियों के होने से काम का निपटान तेजी से होगा और यह भी सुनिश्चित होगा कि सिफारिशें करते समय किसी राज्य-विशेष की तरफदारी नहीं की जाएगी। क्षेत्रीय समितियों की सिफारिशें अन्तिम निर्णय के लिए वित्त मंत्रालय के पास भेजी जाती रहेंगी। यह भी सुझाव दिया जाता है कि इन समितियों की सिफारिशें (मौजूदा तीन वर्षों की अवधि के स्थान पर) पांच

वर्षों की अवधि के लिए वैध होनी चाहिए। यदि आवश्यकता हो, तो परवर्ती अनुमोदन राष्ट्रीय समिति द्वारा केवल तब दिया जाएगा, यदि वह अनुमोदन की पूर्ववर्ती अवधि के दौरान एसोसिएशन अथवा संस्था के क्रियाकलापों से सन्तुष्ट होगी, लेकिन यहां भी अन्तिम निर्णय वित्त मंत्रालय का होगा। इन क्षेत्रीय समितियों को आवश्यक प्रशासनिक सहायता उस शहर के मुख्य आयुक्त के कार्यालय द्वारा प्रदान की जाएगी, जहां उस समिति का मुख्य कार्यालय होगा। आयकर आयुक्त समिति के सचिव के रूप में कार्य कर सकता है।

3.3.7 सिफारिशें

क) धारा 12 क क और धारा 80 छ के अन्तर्गत, आवेदन के दायर किए जाने की तारीख से नब्बे दिन तक की अवधि में पंजीयन अथवा अनुमोदन प्रदान कर दिया जाना चाहिए अथवा आवेदन को रद्द कर दिए जाने का आदेश पारित कर दिया जाना चाहिए, जबकि मौजूदा अवधि 180 दिन की है।

ख) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अवसंरचना परियोजनांए पूर्त संस्थाओं की महत्वपूर्ण संधटक हैं, अधिशेष के संचय की अवधि को, जो आजकल पांच वर्ष की है, बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

ग) आयकर अधिनियम की धारा 35 क ग के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को "व्यय पर कटौती" की सिफारिश करने के लिए मौजूदा राष्ट्रीय समिति के स्थान पर चार क्षेत्रीय समितियों बनाई जानी चाहिएं।

3.4 विदेशी अभिदाय का विनियमन

3.4.1 कानूनी ढांचा

3.4.1.1 विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम, 1976 का प्राथमिक उद्देश्य कतिपय व्यक्तियों अथवा एसोसिएशनों द्वारा विदेशी अभिदाय अथवा विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करने और उसका उपयोग करने का विनियमन करना है, ताकि यह सुनिश्चित किया जाए कि संसदीय और राजनैतिक एसोसिएशनें, अकादमिक और अन्य संस्थांए तथा राष्ट्रीय जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्ति इस तरीके से कार्य करें, जो एक प्रभुतासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य के मूल्यों से मेल खाता हो। इस अधिनियम में निर्वाचन के उम्मीदवारों, पत्रकारों, लोक सेवकों, विधान मंडलों के सदस्यों और राजनैतिक दलों अथवा उनके पदाधिकारियों द्वारा विदेशी अभिदाय स्वीकार किए जाने का निषेध किया गया है (धारा 4), और

सुनिश्चित सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक अथवा सामाजिक कार्यक्रम वाली एसोसिएशनों को कुछ अपेक्षांए पूरी करने के बाद ऐसे अभिदाय स्वीकार करने की छूट दी गई है (धारा 6)।

3.4.1.2 वे अपेक्षाएं ये हैं: (i) एसोसिएशन अपने आप को संध सरकार के पास अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार पंजीयित कराएंगी; (ii) ऐसा विदेशी अभिदाय किसी बैंक की किसी विशेष शाखा के माध्यम से स्वीकार करने के लिए सहमत होगी, जैसाकि पंजीयन के आवेदन में विनिर्दिष्ट होगा, और (iii) केन्द्रीय सरकार को इस बात की जानकारी देगी कि प्रत्येक विदेशी अभिदाय की कितनी राशि प्राप्त हुई, वह राशि किस श्रोत से प्राप्त हुई और उस विदेशी अंशदान का उपयोग किस तरीके से किया गया। केन्द्रीय सरकार ऐसी एसोसिएशनों के लिए यह भी जरूरी बना सकती है कि वे ऐसा कोई विदेशी अभिदाय प्राप्त करने से पहले उसकी पूर्वानुमति प्राप्त करें, यदि उसे यह तसल्ली हो जाए कि ऐसी एसोसिएशनों द्वारा विदेशी अभिदाय प्राप्त किए जाने से भारत की अखंडता और प्रभुसत्ता पर अथवा लोक हित अथवा किसी विधानमंडल के स्वतंत्र और न्यायसंगत निर्वाचन पर, अथवा अन्य देशों के साथ भारत के सम्बन्धों पर, अथवा धार्मिक, जातीय, भाषाई अथवा क्षेत्रीय समूहों, जातियों या समुदायों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है (धारा 10)। राजनैतिक स्वरूप के किसी ऐसे संगठन के लिए, जो राजनैतिक दल न हो (धारा 5) अथवा किसी ऐसी एसोसिएशन के लिए भी, जो विदेशी अभिदाय विनियमन अधिनियम [धारा 6 (1 क)] के अन्तर्गत पंजीयित न हो, कोई विदेशी अभिदाय स्वीकार करने के लिए संघ सरकार की पूर्वानुमति लेनी जरूरी है।

3.4.1.3 विदेशी अभिदाय विनियमन अधिनियम (एफ.सी.आर.ए.) में विदेशी अभिदायों के प्राप्तिकर्त्ताओं को उस बताए गए प्रयोजन पर, जिसके लिए ऐसा अभिदाय प्राप्त किया गया हो, टिके रहने के लिए विवश करने की कड़ी स्कीम है। यह आदेशात्मक है कि निधि बैंक की केवल किसी प्रज्ञापित शाखा के माध्यम से प्राप्त की जाए, निधि का उपयोग केवल प्रज्ञापित बैंक शाखा के माध्यम से किया जाए, निधि का उपयोग केवल ऐसोसिएशन के प्रयोजन के लिए किया जाए और राजनैतिक दलों को अदायगी करने के लिए न किया जाए। सरकार को लेखाओं और अभिलेखों का निरीक्षण करने और उन्हें अपने कब्जे में लेने, उन ऐसोसिएशनों की लेखापरीक्षा करने, जो विवरणियां पेश नहीं करतीं, और अधिनियम के उल्लंधन में प्राप्त की गई वस्तुओं और मुद्रा को जब्त करने की शक्ति प्राप्त है।

3.4.1.4 मौजूदा एफ.सी.आर. अधिनियम, 1976 का यह खंड (धारा 10), कि सरकार कतिपय परिस्थितियों के अन्तर्गत संगठनों के लिए यह जरूरी बना सकती है कि वे कोई विदेशी अभिदाय प्राप्त करने से पहले सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त करें, प्राधिकारियों को बहुत अधिक आत्मपरक शक्तियां प्रदान करता है।

जांच की प्रक्रिया से, जिसमें आसूचना एजेंसियों द्वारा तफतीश करना शामिल हो, शक्तियों के दुरूपयोग, विलम्ब और परेशानी की बहुत अधिक गुंजाइश पैदा हो जाती है।

3.4.1.5 केन्द्रीय सरकार ने संसद में 18 दिसम्बर, 2006 को विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक, 2006 नाम से एक नया विधेयक प्रस्तुत किया है। प्रस्तावित विधेयक विदेशी अभिदाय की स्वीकृति, उसके उपयोग और लेखापालन और किसी व्यक्ति अथवा एसोसिएशन द्वारा विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करने का विनियमन करने के लिए मौजूदा विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम, 1976 को प्रतिस्थापित करना चाहता है। विधेयक के उद्देश्यों के विवरण के अनुसार, निकट अतीत की घटनाओं, जैसे आन्तरिक परिदृश्य में हुए परिवर्तन, स्वैच्छिक संगठनों के बढ़े हुए प्रभाव, संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग में प्रसार और प्राप्त होने वाले विदेशी अभिदाय की राशि में बहुत अधिक वृद्धि और पंजीयित संगठनों की संख्या में बहुत बड़े पैमाने पर हुई वृद्धि ने मौजूदा अधिनियम में बहुत बड़े पैमाने पर परिवर्तन करना जरूरी बना दिया है।

3.4.1.5.1 विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक, 2006 में, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित की व्यवस्था की गई है:

(i) विदेशी अभिदाय अथवा विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करने और उसका उपयोग करने और किन्हीं ऐसे क्रियाकलापों के लिए, जो राष्ट्रीय हितों के लिए हानिकारक हों, उसका निषेध करने का विनियमन करने के लिए कानून को समेकित करना;

(ii) राजनैतिक स्वरूप वाले संगठनों को, जो राजनैतिक दल न हों, विदेशी अभिदाय प्राप्त करने से रोकना;

(iii) श्रव्य समाचारों अथवा श्रव्य-दृश्य समाचारों अथवा सामयिक विषयों की सामग्री को तैयार करने अथवा किसी इलेक्ट्रानिक मोड से उनका प्रसारण करने के कार्य में सलग्न एसोसिएशनों को विधयेक के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत लाना;

(iv) सट्टेबाजी के किसी कार्य के लिए विदेशी अभिदाय के प्रयोग को निषिद्ध करना;

(v) प्रशासनिक व्यय को प्राप्त विदेशी अभिदाय के पचास प्रतिशत तक सीमित करना;

(vi) विदेशों में रहने वाले सम्बन्धियों से प्राप्त विदेशी निधियों को शामिल न करना;

(vii) विधेयक के अन्तर्गत पंजीयन देने अथवा पूर्वानुमति देने से इन्कार करने के कारणों की जानकारी देने का उपबन्ध करना;

(viii) मानीटरन को सुदृढ़ बनाने के लिए सम्बन्धित एजेंसियों द्वारा विदेशी प्रेषणों की प्राप्ति के बारे में सूचना को बांटने के प्रबन्धों की व्यवस्था करना;

(ix) पंजीयन को, उसके नवीकरण की व्यवस्था के साथ, पांच वर्षों के लिए वैध बनाना और पंजीयन के रद्दकरण अथवा निलम्बन के लिए भी व्यवस्था करना; और

(x) कुछ अपराधों के प्रशमन के लिए उपबन्ध करना।

विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक (एफ.सी.आर.बी.), 2006 द्वारा मौजूदा कानूनी ढांचे में प्रस्तावित परिवर्तनों की विवेचनात्मक तुलना नीचे दी गई है:

3.4.1.5.2 विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक, 2006 और मौजूदा कानून (एफ.सी.आर. अधिनियम, 1976) की मुख्य विशेषताएं:

1. **प्रयोजन**

(क) प्रस्तावित विधेयक की उद्देशिका इस प्रकार है:

"कतिपय व्यक्तियों अथवा एसोसिएशनों अथवा कम्पनियों द्वारा विदेशी अभिदाय को स्वीकार करने और उसका उपयोग किए जाने को विनियमित करने अथवा राष्ट्रीय हित और उससे सम्बन्धित मामलों अथवा उनके आनुषंगिक मामलों के लिए हानिकारक किन्हीं क्रियाकलापों के लिए विदेशी अभिदाय अथवा विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करना और उसका उपयोग निषिद्ध करने के लिए कानून को समेकित करना।"

जबकि एफ.सी.आर.ए., 1976 की उद्देशिका इस प्रकार है:

"यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि संसदीय संस्थाएं, राजनैतिक एसोसिएशनें और अकादमिक और अन्य स्वैच्छिक संगठन और राष्ट्रीय जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में काम करने वाले व्यक्ति ऐसे तरीके से कार्य करें, जो एक प्रभुत्तासम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य के मूल्यों के अनुरूप हो, कतिपय व्यक्तियों अथवा एसोसिएशनों द्वारा विदेशी अभिदाय अथवा विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करने और उपयोग करने और उनसे सम्बन्धित अथवा आनुषंगिक मामलों का विनियमन करने के लिए अधिनियम।"

(ख) उपर्युक्त को सादे रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि एफ.सी.आर. विधेयक, 2006 विनियमनकारी होने की अपेक्षा निषेधात्मक है। " राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक क्रियाकलाप" शब्द आत्मपरकता के लिए गुंजाइश पैदा कर देते हैं।

2. विदेशी अभिदाय स्वीकार करने का निषेध

(क) एफ.सी.आर.ए. अधिनियम, 1976 की धारा 4 में उन संगठनों और व्यक्तियों की सूची दी गई, जिनके लिए विदेशी अभिदाय स्वीकार करने का निषेध है। प्रस्तावित विधेयक में, कुछ और परिवर्धन किए गए हैं, जैसे - (i) संघ सरकार द्वारा यथा विनिर्दिष्ट राजनैतिक स्वरूप का कोई संगठन, जो राजनैतिक दल न हो; (ii) किसी इलेक्ट्रानिक मोड अथवा सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 2 की उप-धारा (1) के खंड (द) में यथा-परिभाषित किसी अन्य इलेक्ट्रानिक रूप में अथवा जन संचार के किसी अन्य मोड के जरिए श्रव्य समाचार अथवा श्रव्य-दृश्य समाचार अथवा सामाजिक विषयों के कार्यक्रम तैयार करने अथवा उनका प्रसारण करने के काम में संलग्न कम्पनी अथवा एसोसिएशन।

(ख) किन्तु इस विधेयक में कोई मार्गनिर्देश अथवा परिभाषा नहीं दी गई है, जिसके आधार पर किसी संगठन को "राजनैतिक दल न होने पर राजनैतिक स्वरूप का संगठन" माना जा सकता है। संघ सरकार को ऐसे संगठनों को अधिसूचित करने की शक्ति प्रदान की गई है और संघ सरकार के समक्ष अभ्यावेदन देने का उपबन्ध किया गया है। कुछ क्षेत्रों में आशंकाएं प्रकट की गई हैं कि इस प्रयोजन के लिए किन्हीं विनिर्दिष्ट कसौटियों की अनुपस्थिति में, उन संगठनों को कष्ट भोगना पड़ सकता है, जो सुविधाहीन और सीमान्त पर बिठा दिए गए लोंगों के सरोकारों को मुखर बनाते हैं।

3. विदेशी अभिदाय का उपयोग करने पर प्रतिबन्ध

(क) प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत, अभिदायों का उपयोग केवल उस प्रयोजन के लिए किया जाएगा, जिसके लिए वह प्राप्त किए गए हैं (लेकिन किसी विदेशी अभिदाय और उसकी किसी आय का उपयोग सट्टेबाजी के व्यापार के लिए नहीं किया जाएगा)। इसके अलावा, कोई भी प्राप्तिकर्त्ता किसी वित्तीय वर्ष के दौरान प्राप्त हुए ऐसे अभिदाय की 50 प्रतिशत से अनधिक राशि का उपयोग प्रशासनिक व्यय को पूरा करने के लिए नहीं करेगा। संघ सरकार को ऐसे तत्व विहित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है, जिन्हें प्रशासनिक व्यय में शामिल किया जाएगा। एफ.सी.आर.ए., 1976 में ऐसे उपबन्ध नहीं थे।

(ख) विधेयक में "सट्टेबाजी के कार्यों" को परिभाषित नहीं किया गया है। संयोगवश, आयकर अधिनियम, 1961 स्वैच्छिक संगठनों को धारा 11(5) में विनिर्दिष्ट मोडों में धनराशियों का

निवेश करने की अनुमति देता है, जिनमें सरकारी प्रतिभूतियां और मुचुअल फंड शामिल हैं। भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के अन्तर्गत न्यासों को भी ऐसे मोडों में निवेश करने की अनुमति दी गई है। इसलिए "सट्टेबाजी का कार्य" शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है।

(ग) जहां तक प्रशासनिक व्यय का सम्बन्ध है, विधेयक सरकार को काफी अधिक स्व-विवेकानुसार शाक्तियां प्रदान करता है। ऐसी स्थितियों की परिकल्पना की जा सकती है, जहां प्रशासनिक और परियोजना सम्बन्धी व्यय में भेद करना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, स्वास्थ्य परिचर्या परियोजना में संलग्न किसी संगठन के लिए, डाक्टरों/परा-चिकित्सा कर्मचारियों के वेतनों और अन्य व्ययों को मूल परियोजना लागत का एक भाग समझा जाना चाहिए और प्रशासनिक व्यय के रूप में नहीं। इसे स्पष्ट मार्गनिर्देश जारी करके सुनिश्चित किया जा सकता है, बजाय इसके कि इसे अलग-अलग पदाधिकारियों के स्व-विवेक के ऊपर छोड़ दिया जाए।

4. परिभाषाएं

"सट्टेबाजी का कारबार" और "प्रशासनिक व्यय" शब्दों की संकल्पना में अस्पष्टता होने के अलावा, निम्नलिखित दो शब्दों की परिभाषा पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है।:

(i) विदेशी आतिथ्य - "विदेशी आतिथ्य" का अर्थ है किसी व्यक्ति को किसी अन्य देश अथवा क्षेत्र तक यात्रा की लागत की व्यवस्था करने अथवा नि:शुल्क खान-पान, रहने-सहने, परिवहन अथवा चिकित्सा की व्यवस्था करने के लिए किसी विदेशी स्त्रोत द्वारा नकद अथवा जिन्स के रूप में की गई पेशकश, जो विशुद्ध रूप से आकस्मिक न हो।

(ii) विदेशी श्रोत - "विदेशी श्रोत" की परिभाषा में कम्पनी अधिनियम, 1950 के अर्थों के अन्तर्गत आने वाली कम्पनी शामिल है, जिसमें (i) शेयर-पूंजी का 1/2 से अधिक मूल्य किसी अन्य देश के नागरिकों द्वारा समष्टिगत रूप से धारित हो, (ii) किसी विदेश में निगमित कोई निगम, अथवा (iii) कोई विदेशी कम्पनी। इनमें से पहली कसौटी बहुत-सी भारतीय बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों को कवर करेगी, जिनमें बैंक भी शामिल हैं, जैसे आई.सी.आई.सी.आई. बैंक, और इसलिए इस उपबन्ध पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता हो सकती है।

5. पंजीयन

(क) किसी सुनिश्चित सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक अथवा सामाजिक कार्यक्रम वाले किसी संगठन के लिए कोई विदेशी अभिदाय स्वीकार करने से पहले, एफ.सी.आर.ए., 1976

और प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत अपने आपको पंजीयित कराना जरूरी है। यदि ऐसे संगठन पंजीयित न हों, तो उन्हें कोई अभिदाय स्वीकार करने के लिए संघ सरकार से पूर्वानुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा।

(ख) एफ.सी.आर. विधेयक, 2006 मौजूदा अधिनियम से आगे बढ़कर, पंजीयन के मामले में सरकार को व्यापक स्वविवेकाधिकार देता है। सरकार किसी संगठन को पंजीयन अथवा अनुमति देने से इन्कार कर सकती है, यदि उसे इस बात की तसल्ली हो जाए कि उस संगठन ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, प्रलोभन देकर अथवा बलपूर्वक लोगों का धर्मान्तरण कराने के कार्य किए हैं।

(ग) पंजीयन/अनुमति प्राप्त करने की एक आवश्यक शर्त यह है कि आवेदनकर्त्ता संगठन ने अपने चुने हुए क्षेत्र में सार्थक क्रियाकलाप हाथ में लिए हों और उसके पास उन लोगों के लाभ के लिए, जिनके लिए विदेशी अभिदाय का उपयोग करने का प्रस्ताव हो, कोई अर्थपूर्ण परियोजना है। यह पुन: एक आत्मपरक तसल्ली का मामला है और इसमें गलत अर्थ लगाए जाने की गुंजाइश है।

(घ) प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत प्रदान किया गया प्रमाणपत्र पांच वर्षों की अवधि के लिए वैध होगा और इसके बाद इसका नवीकरण कराया जाना होगा। नवीकरण का आवेदन प्रमाणपत्र की अवधि के समाप्त होने के बाद छ: महीनों के अन्दर अवश्य दे दिया जाना चाहिए। नवीकरण के लिए कुछ शुल्क भी होता है। किन्तु, मौजूदा एफ.सी.आर.ए., 1976 में केवल एक-बारगी पंजीयन की व्यवस्था है। प्रस्तावित उपबन्धों के परिणामस्वरूप स्वैच्छिक संगठनों की लागत, प्रयासों और परेशानियों में वृद्धि होने की संभावना है।

(ङ) प्रस्तावित विधेयक में पंजीयन अथवा उसके नवीकरण का प्रमाणपत्र देने अथवा उसे देने से इन्कार करने अथवा पूर्वानुमति देने के लिए, जो कतिपय मामलों में आवश्यक होती है, कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं है। लेकिन, मौजूदा एफ.सी.आर.ए., 1976 में पूर्वानुमति देने के लिए नब्बे दिन की समय-सीमा विहित है, और ऐसा न होने पर यह मान लिया जाएगा कि अनुमति दे दी गई है।

(च) प्रस्तावित विधेयक में सरकार को पंजीयन प्रमाणपत्र का निलम्बन करने और उसे रद्द करने की शक्तियां भी प्रदान की गई हैं। प्रमाणपत्र को रद्द करने का आदेश दिया जा सकता है, यदि धारक ने आवेदन देते समय कोई अशुद्ध अथवा गलत बयान दिया हो, प्रमाणपत्र की

किसी शर्त का उल्लंधन किया हो, सरकार यह समझे कि पंजीयन को लोक हित में रद्द करना जरूरी है और धारक ने इस अधिनियम अथवा इसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों अथवा आदेश के किसी उपबन्ध का उल्लंधन किया हो। जब प्रमाणपत्र एक बार रद्द कर दिया गया हो, तो व्यक्ति/संगठन ऐसे प्रमाणपत्र के रद्द किए जाने की तारीख से तीन वर्षों तक की अवधि के लिए पंजीयन अथवा पूर्वानुमति प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा।

6. वित्त

एफ.सी.आर. विधेयक, 2006 उस बैंक की एक ऐसी शाखा के माध्यम से, जो प्रमाणपत्र दिए जाने के आवेदन में विनिर्दिष्ट हो, केवल एक खाते में विदेशी अभिदाय प्राप्त करने की अनुमति देता है। किन्तु, प्राप्तिकर्त्ता को उसके द्वारा प्राप्त की गई विदेशी अभिदाय का उपयोग करने के लिए एक अथवा एक से अधिक बैंकों में एक या एक से अधिक खाता खोलने की अनुमति दी गई है। यह एफ.सी.आर.ए., 1976 के उपबन्ध की तुलना में एक सुधार है।

7. अपील

प्रस्तावित विधेयक में जब्ती के अधिनिर्णय सम्बन्धी आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय/सत्र न्यायालय में अपील करने के बारे में उपबन्ध हैं (धारा 31)। इस धारा में उपबन्ध है कि धारा 29 (जब्ती का अधिनिर्णय) के तहत दिए आदेश से खिन्न कोई व्यक्ति अपील कर सकता है। किन्तु, विदेशी आतिथ्य को स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगाने, कुछ मामलों में विदेशी अभिदाय की प्राप्ति का निषेध करने (विधेयक की धारा 9), विधेयक की धारा 12(3) के अन्तर्गत पंजीयन देने अथवा प्रमाणपत्र के निलम्बन/रद्दकरण/नवीनकरण का आदेश देने के बारे में सरकार की शक्तियों के ऊ पर कोई अपीलीय उपबन्ध नहीं है।

8. अपराध और शास्तियां

(क) झूठे बयान देने, झूठा खाता डिलिवर करने की घोषणा, विधेयक के उपबन्धों का उल्लंधन करके वस्तु, मुद्दा अथवा प्रतिभूति प्राप्त करने, आदि जैसे अपराधों को कवर करने के लिए दंडनीय अपराधों के दायरे का काफी अधिक विस्तार कर दिया गया है। यहां यह कहा गया है कि दंड की मात्रा विहित करते समय अपराधी-मन के तत्व को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(ख) लेकिन विधेयक में केवल कारावास द्वारा दंडनीय अपराधों के प्रशमन के बारे में उपबन्ध है।

3.4.1.5.3 यह विधेयक एक तीव्र विवाद का विषय बन गया है और इसे अनुचित रूप से हस्तक्षेप करने वाले कानून के रूप में देखा जा रहा है, जिसका आशय विदेशी अभिदाय प्राप्त करने वाली पूर्त संस्थाओं को प्राधिकारियों की आत्मपरक संवीक्षा के अन्तर्गत रखना है। मुख्य तर्क ये है:

- जैसाकि उद्देशिका में कहा गया है, विधेयक का लक्ष्य "राष्ट्रीय हित" के लिए हानिकारक क्रियाकलापों के लिए विदेशी अभिदाय प्राप्त करने और उपयोग करने का निषेध करना है। "राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक" शब्द आत्मपरक अर्थनिर्णय की गुंजाइश पैदा कर देते हैं।
- ऐसे बहुत से कारण हैं, जिनके आधार पर पंजीयन का प्रमाणपत्र देने से इन्कार किया जा सकता है। "अवांछनीय" प्रयोजनों के लिए धनराशियों के व्यपवर्तन की संभावना अथवा "सार्थक" क्रियाकलाप हाथ में न लिया जाना अथवा लोगों के "लाभ" के लिए कोई अर्थपूर्ण परियोजना तैयार न करना जैसे शब्द आत्मपरकता को स्वीकृति देते हैं।
- हर पांच वर्षों के लिए नवीकरण का उपबन्ध परेशानी उत्पन्न कर सकता है।
- यह विधेयक कार्यपालिका को पंजीयन के प्रमाणपत्र को "लोक हित" में रद्द करने की व्यापक स्वविवेकाधीन शक्तियां प्रदान करता है। यह बहुत व्यापक और आत्मपरक अर्थनिर्णय के लिए खुला है। प्रमाणपत्र को रद्द करने की अनुमति केवल विशिष्ट कानूनी दायित्वों का उल्लंधन किए जाने पर दी जानी चाहिए।
- निरीक्षण, तलाशी और जब्ती की शक्तियां लाभ-निरपेक्ष संगठनों को परेशान करने की साधन हो सकती हैं और उन्हें वस्तुत: प्राधिकारियों की अधीनस्थता की स्थिति में ला देती हैं।
- "प्रशासनिक व्यय" पर 50 प्रतिशत की सीमा का उपबन्ध स्वेच्छाचारी है और बहुत से मामलों में यह संगठनों को ऐसी परियोजनाओं पर काम करने से रोक देता है, जिनमें मानव संसाधनों का हिस्सा काफी अधिक होता है।
- प्रस्तावित विधेयक किसी संगठन के संसाधनों और निवेश पर अनावश्यक पाबन्दियां लगाने का प्रयास करता है।
- विधेयक का वह उपबन्ध, जो कुछ श्रेणियों के लोगों को विदेशी अभिदाय प्राप्त करने का निषेध करता है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के खिलाफ है।

3.4.2 पंजीयन प्रक्रिया का सुधार

3.4.2.1 सामाजिक पूंजी के विकास के सन्दर्भ में, विदेशी अभिदाय प्राप्त करने के सम्बन्ध में प्राथमिक सरोकार यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि प्रामाणिक संगठनों को परेशान न किया जाए अथवा बाइज़ेन्टाइन प्रक्रिया और लालफीताशाही से उनके कार्यचालन में बाधा न आए।

3.4.2.2 आयोग का यह मत है कि विदेशी अभिदाय सम्बन्धी प्रस्तावित कानून के अन्तर्गत पंजीयन की प्रक्रिया को सरल रखे जाने की आवश्यकता है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा पंजीयन प्रमाणपत्र/पूर्वानुमोदन जारी किए जाने के लिए एक समय-सीमा निर्धारित करना आवश्यक है।

3.4.2.3 इसके साथ-साथ, आयोग को इस बात की जानकारी है कि विदेशी श्रोतों से दान प्राप्त करने वाले स्वैच्छिक संगठनों की संख्या बहुत अधिक है और इस बात की काफी संभावना है कि कई बार धनराशियों का उपयोग उन प्रयोजनों के लिए कर लिया जाए, जिनसे राष्ट्रीय हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस पृष्ठभूमि में, ऐसी निधियों पर नजर रखने के लिए एक प्रभावकारी मानीटरन प्रणाली का निर्माण करना आवश्यक बन जाता है। आयोग का यह विचार है कि एक ओर " राष्ट्रीय हित" और दूसरी ओर स्वैच्छिक क्षेत्रक के मुक्त कार्यचालन के बीच बढ़िया सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता है। उस हद तक, प्रस्तावित विधेयक को सुस्पष्ट बनाने और संशोधित करने की और उन गलतफहमियों को दूर करने की आवश्यकता है, जो स्वैच्छिक क्षेत्रक को आन्दोलित कर रही हैं।

3.4.2.4 ऐसा सन्तुलन स्थापित करने के लिए प्रस्तावित विधेयक में जो परिवर्तन किए जाने आवश्यक हैं, उन पर आगे चर्चा की जा रही है:

3.4.2.4.1 सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक अथवा धार्मिक कार्यक्रमों पर काम करने वाले किसी संगठन के लिए, जो विदेशी अभिदान प्राप्त करना चाहता हो, एफ.सी.आर. विधेयक, 2006 की धारा 11 के अन्तर्गत पंजीयन कराना अथवा पूर्वानुमोदन प्राप्त करना जरूरी होगा। पंजीयन कराने के बाद भी, ऐसी विवरणियां और ब्यौरा प्रस्तुत करना आदेशात्मक है, जिनसे सक्षम प्राधिकारी यह परख सकें और जांच कर सके कि क्या निधियों का उपयोग इस कानून के उपबन्धों के अनुसार किया गया है अथवा नहीं।

3.4.2.4.2 इस विधेयक में धारा 11 के अन्तर्गत प्रक्रिया के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है। यह मौजूदा एफ.सी.आर.ए., 1976 के उपबन्धों से कहीं अधिक कड़ा है, जिसमें नब्बे दिन की समय-सीमा निर्धारित की गई थी। इसमें एक अभिगृहीत खंड भी है। एक खुले सिरे वाले कानून का परिणाम

विलम्ब और परेशानी हो सकता है। आयकर अधिनियम के अन्तर्गत एक ऐसे ही उपबन्ध (धारा 12 क क) में भी, जिसका सम्बन्ध पूर्त संस्थाओं के पंजीयन से है, छ: महीने की समय-सीमा रखी गई है। वहां, यह सिफारिश की गई है कि छ: महीनों की अवधि को घटा कर नब्बे दिन का कर दिया जाए।

3.4.2.4.3 मौजूदा एफ.सी.आर.ए., 1976 का प्राथमिक रूप से उद्देश्य यह था कि विदेशी अभिदाय की प्राप्ति को इस तरीके से विनियमित किया जाए कि इन निधियों का उपयोग (क) राज्य के प्रभुतासम्पन्नता हित के खिलाफ न हो, (ख) राजनैतिक क्रियाकलापों और चुनावों को समर्थन देने के लिए ने हो, और (ग) लोक सेवकों के वैयक्तिक लाभों के लिए न हो। लेकिन, एफ.सी.आर. विधेयक, 2006 इससे कहीं आगे चला जाता है और (i) कतिपय श्रेणी के व्यक्तियों और संगठनों द्वारा विदेशी अभिदाय प्राप्त करने का निषेध करने और (ii) स्वैच्छिक संगठनों द्वारा प्राप्त किए गए विदेशी अभिदाय का विनियमन करने की ओर प्रवृत्त है। यह राष्ट्रीय हित पर बहुत अधिक जोर देता है और सार्थक क्रियाकलाप हाथ में न लेने [धारा 12(3)(ख)]; अथवा कोई सार्थक परियोजना हाथ में न लेने [धारा 12(3)(ग)], जैसे मुद्दों को प्रस्तावित कानून के कार्यक्षेत्र में रखा गया है। आयोग का विचार है कि "राष्ट्रीय हित" के शब्द और विधेयक में प्रतिपादित अन्य आवश्यकताओं को यदि उचित रूप से परिभाषित नहीं किया गया, तो इनसे व्यापक आत्मपरक अर्थनिर्णय की गुंजाइश पैदा होगी और प्रामाणिक स्वैच्छिक संगठनों के लिए अनावश्यक कठिनाइयां उत्पन्न होंगी।

3.4.3 प्रक्रियाओं का सुव्यवस्थीकरण

3.4.3.1 एफ.सी.आर.ए. प्रभाग, गृह मंत्रालय की वर्ष 2005-06 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, 31 मार्च, 2006 को 32,144 एसोसिएशनें एफ.सी.आर.ए. के अन्तर्गत पंजीयित थीं, जिनमें से 18,570 एसोसिएशनों ने (जिनमें वे 6,827 एसोसिएशनें शामिल हैं, जिन्होनें "शून्य" विवरणी दायर की थी) कुल मिला कर, 7,877.57 करोड़ रूपए का विदेशी अभिदाय प्राप्त किया। नीचे की तालिका से पता चलता है कि गृह मंत्रालय के पास पंजीयित अधिकतर एसोसिएशनों को पिछले पांच वर्षों के दौरान 1.0 करोड़ रूपए से कम अभिदाय प्राप्त हुआ है।

तालिका 3.2 : संगठनों को प्राप्त विदेशी अभिदाय का वर्ष-वार ब्योरा (2001-05)

वर्ष	1 करोड़ रूपए से कम	1-5 करोड़ रूपए के बीच	5-10 करोड रुपए के बीच	10 करोड़ रूपए से अधिक
2001-02	14,761	721	77	59
2002-03	15,650	798	76	66
2003-04	16,187	818	83	57
2004-05	17,373	985	112	70
2005-06	17,258	1,070	143	99

3.4.3.2 एफ.सी.आर. अधिनियम के अन्तर्गत पंजीयन प्रमाणपत्र देने की प्रक्रिया लम्बी और बोझिल है और आवेदकों के लिए परेशानी पैदा करती है। गृह मंत्रालय में इस विषय के प्रभारी प्रभाग में कर्मचारियों की बहुत अधिक कमी है और वे उन आवेदनों के बारे में, जो उसे हर वर्ष बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं, कार्रवाई करने के लिए पूरी तरह साधनसम्पन्न नहीं है। आवेदक संगठनों के पूर्ववृत्त का सत्यापन करने के लिए, यह प्रभाग प्राथमिक रूप से आसूचना अभिकरणों द्वारा मुहैया की गई निविष्टियों का सहारा लेते हैं। उन अभिकरणों के लिए, यह कार्य एक कम प्राथमिकता वाला कार्य है और इसलिए इसमें बहुत अधिक समय लग जाता है। इसके अलावा, अधिनियम के उद्देश्य के अनुसार, प्राधिकरणों को यह सुनिश्चित करना होता है कि विदेशी अभिदाय के प्राप्तिकर्त्ता उस घोषित प्रयोजन का पालन करें, जिसके लिए वह अभिदाय प्राप्त किया गया है। किन्तु व्यवहार में, यह व्यवस्था बहुत कमजोर है। एक बार पंजीयन दे दिए जाने के बाद, मामला दरकिनार हो जाता है। संगठनों द्वारा बाद में दायर की जाने वाली विवरणियों की संवीक्षा केवल औपचारिकता मात्र बताई जाती है। इसके परिणामस्वरूप, ए.सी.आर.अधिनियम उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर रहा है, जिनके लिए वह बनाया गया था।

3.4.3.3 प्रायः, गृह मंत्रालय के एफ.सी.आर.ए. प्रभाग द्वारा कुछ मामले अन्तर्अभिकरण परामर्श के लिए चुन लिए जाते हैं। ऐसे परामर्श के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में कोई पारदर्शी नियम/मार्गनिर्देश न होने के कारण अन्तर्अभिकरण निर्देशन से परेशानी, विलम्ब और भ्रष्टाचार की काफी अधिक गंजाइश बन जाती है। आयोग का मत है कि अधिनियम के उपबन्धों का (क) दान की न्यूनतम राशि, जिसके लिए अन्तर्अभिकरण परामर्श आवश्यक होगा, (ख) प्राधिकरण का स्तर, जो इसे प्राधिकृत करेगा, और (ग) ऐसी प्रक्रियाओं के लिए समय-सीमा निर्धारित करने के बारे में और अधिक विस्तार करना आवश्यक होगा।

3.4.3.4 इस समय, एफ.सी.आर.ए. के अन्तर्गत समूचा कार्य गृह मंत्रालय के एक प्रभाग द्वारा संभाला जा रहा है, जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है। राज्य सरकार और उसके तंत्र, विशेष रूप से जिला प्रशासन को, जो गैर-सरकारी संगठनों के क्रियाकलापों पर नजर रखने और उसे मानीटर करने की स्थिति में हैं, इस प्रक्रिया में शामिल नहीं किया जाता। आयोग का विचार है कि यदि एफ.सी.आर.ए. के कुछ कार्यों का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाएगा और उन्हें राज्य सरकार/जिला प्रशासन को प्रत्यायोजित कर दिया जाएगा, तो इससे (क) पंजीयन की याचिकाओं को तेजी से निपटाने, (ख) उनके क्रियाकलापों को नजदीक से मानीटर करने, और (ग) विवरणियों की सवींक्षा करने में सहायता मिलेगी।

3.4.3.5इसके अलावा, बहुत से संगठनों को बहुत कम निधियां प्राप्त होती हैं, लेकिन उन्हें एफ. सी.आर.ए., 1976 के उपबन्धों के अन्तर्गत पालन की जाने वाली सारी आवश्यकताओं को पूरा

करना पड़ता है। इससे विलम्ब और परेशानी होती है और उन लोगों की प्रशासनिक क्षमता पर दबाब पड़ता है, जिन पर विवरणियों की संवीक्षा करने की जिम्मेदारी है। आयोग का विचार है कि किसी स्वैच्छिक संगठन द्वारा एक वर्ष में प्राप्त विदेशी अभिदाय की राशि के बारे में एक निम्नतम सीमा निर्धारित किए जाने की आवश्यकता है। किसी एक वर्ष के दौरान इस सीमा से कम अभिदाय प्राप्त कने वाले संगठनों को पंजीयन कराने और इस कानून के उपबन्धों से छूट मिल जाएगी। वर्ष के समाप्त होने पर, ये संगठन उपयुक्त प्राधिकारी के पास केवल यह वार्षिक सूचना दायर करेंगे, जिसमें उनके द्वारा उस अवधि में प्राप्त की गई विदेशी अभिदाय की राशि और उपयोग में लाई गई राशि की जानकारी दी गई होगी। यदि प्राधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण होगा कि घोषक ने निम्नतम सीमा के भीतर रहने के इरादे से कुछ तथ्यों को छिपाया है अथवा उन्हें गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, तो ऐसे संगठनों के क्रियाकलापों की और आगे छानबीन की जा सकती है। इस प्रकार की स्कीम अन्य प्रवर्तन कानूनों में लागू है, जैसे केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम, 1944 के अन्तर्गत छोटे पैमाने के उधोगों के बारे में उपबन्ध। तालिका 3.2 की पृष्ठभूमि में, इस समय यह निम्नतम सीमा 10.00 लाख रूपए निर्धारित की जा सकती है। इस राशि को समय-समय पर संशोधित किया जा सकता है। इस कदम से, प्राधिकारी बड़े अभिदायों पर ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे।

3.4.4 सिफारिशें

(क) विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक, 2006 को संशोधित किए जाने की आवश्कता है, ताकि उसमें अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित सुझाव शामिल किए जाएं:

i. **एक ओर कानून के प्रयोजन और दूसरी ओर स्वैच्छिक क्षेत्रक के सुचारू कार्यकरण के बीच बढ़िया सन्तुलन होना चाहिए। कानून के आत्मपरक अर्थनिर्णय और उसके सम्भव दुरूपयोग से बचने के लिए विनियमनकारी विधान के उद्देश्यों का निरूपण उपयुक्त रूप से किया जाना चाहिए।**

ii. **धारा 11 के अन्तर्गत (विदेशी अभिदाय प्राप्त करने के लिए पंजीयन अथवा पूर्वानुमति प्राप्त करना) प्रक्रियाओं के लिए एक समय-सीमा होनी चाहिए।**

iii. **अन्तर्अभिकरण परामर्श के लिए, विशेष रूप से (क) दान की न्यूनतम राशि, जिसके लिए अन्तर्अभिकरण परामर्श जरूरी होगा, (ख) प्राधिकारी का स्तर, जो इसे प्राधिकृत**

करेगा, और (ग) ऐसी प्रक्रियों के लिए समय-सीमांए निर्धारित करने के सम्बन्ध में पारदर्शी नियम/मार्गनिर्देश विहित किए जाने चाहिएं।

iv. (क) पंजीयन/पूर्वानुमति के लिए संगठनों से प्राप्त याचिकाओं के तेजी से निपटान, (ख) उनके क्रियाकलापों के प्रभावकारी मानीटरन, और (ग) उनके द्वारा दायर की गई विवरणियों की उपयुक्त रूप से संवीक्षा को सुविधाजनक बनाने के लिए विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम के तहत कुछ कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए और वे राज्य सरकारों/जिला प्रशासन को प्रत्यायोजित कर दिए जाने चाहिएं।

v. पैरा 3.4.1.5.3 में यथा उल्लिखित अन्य सरोकारों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

(ख) एक वर्ष के दौरान 10.00 लाख रूपए से कम के बराबर वार्षिक विदेशी अभिदाय (इस राशि पर समय-समय पर पुनर्विचार किया जा सकता है) प्राप्त करने वाले संगठनों को पंजीयन कराने और कानून के अन्तर्गत रिपोर्ट देने की अन्य आवश्यकताओं से छूट दी जानी चाहिए। इसके स्थान पर उनसे यह कहा जाना चाहिए कि वे वर्ष के अन्त में एक वार्षिक विवरणी दायर करें, जिसमें उनके द्वारा प्राप्त विदेशी अभिदाय की मात्रा और उसके उपयोग के बारे में जानकारी दी गई हो। कानून में यह उपबन्ध किया जाना चाहिए कि यदि तथ्यों को छिपाने/गलत रूप से प्रस्तुत करने का कोई तर्कसंगत सन्देह होगा, तो उनके बारे में अन्वेषण किया जा सकता है और यह सिद्ध हो जाने पर कि उनके द्वारा कानून का उल्लंधन किया गया है, उनके खिलाफ कानून के दाण्डिक उपबन्धों का उपयोग किया जाएगा।

4 स्थानीय स्तर पर तीसरे क्षेत्रक के संगठन – स्व–सहायता समूह

4.1 सामान्य

4.1.1 स्व-सहायता उन लोगों की अनौपचारिक संस्थाएं हैं, जो अपने रहन-सहन की स्थितियों में सुधार करने के तरीके ढूंढने के लिए आपस में मिलने का फैसला करते हैं। वे गरीबों, विशेष रूप से महिलाओं, में सामाजिक पूंजी का निमार्ण करने में सहायता देते हैं। स्व-सहायता समूहों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ये हैं: (क) अपने सदस्यों को बचत करने के लिए प्रोत्साहित और अभिप्रेरित करना, (ख) उन्हें अतिरिक्त आय का सृजन करने के लिए एक सामूहिक योजना बनाने के लिए मनाना, और (ग) बैंकिंग सेवाओं के लिए उन तक पहुंचने के लिए एक नाली के रूप में कार्य करना। ऐसे समूह उन सदस्यों के लिए, जिनका विचार संगठित श्रोतों से ऋण प्राप्त करने का हो, एक सामूहिक गांरटी प्रणाली के रूप में कार्य करते हैं। स्व-सहायता समूह गरीबों को माइक्रो-वित्त सेवाएं प्रदान करने के एक सबसे अधिक प्रभावकारी तंत्र के रूप में उभरे हैं। वित्तीय सेवाओं की श्रृंखला में जमा, ऋण, धन अन्तरण और बीमा जैसे उत्पाद शामिल हो सकते हैं।

4.2 वित्तीय समावेश – देश में मौजूदा स्थिति

4.2.1 हमारे देश में ग्रामीण गरीबी का एक कारण ऋण और वित्तीय सेवाओं तक बहुत कम पंहुच होना है। एन.एस.एस.ओ. (59वां चक्र) की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार, देश में 45.9 मिलियन किसान परिवारों, अर्थात कुल 89.3 मिलियन परिवारों में से 51.4 प्रतिशत परिवारों की संस्थात्मक अथवा गैर-संस्थात्मक श्रोतों से मिलने वाले किसी प्रकार के ऋण तक कोई पहुंच नहीं है। कुल मिला कर, 73 प्रतिशत परिवारों का किसी वित्तीय संस्था के साथ कोई ऋण संयोजन नहीं है। इसके अलावा, जब सम्पूर्ण देश को लिया जाए तो समूचा ऋण संयोजन पोर्टफोलियो बहुत टेढ़ा प्रतीत होता है, जिसमें उत्तर-पूर्वी, पूर्वी और केन्द्रीय प्रदेश देश के अन्य भागों से बहुत पीछे हैं।

4.2.2 वर्ष 2006 में, भारतीय रिजर्व बैंक ने उत्तर-पूर्व में वित्तीय क्षेत्रक की सेवाओं की पहुंच और मात्रा का विस्तार करने के तरीकों के सुझाव देने के लिए अपने डिप्टी गवर्नर, सुश्री ऊषा थोरट

की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। इस समिति की रिपोर्ट में, जो जुलाई, 2006 में प्रस्तुत की गई थी, इस पूरे प्रदेश में, वित्तीय मध्यस्थता का बड़े पैमाने पर विस्तार करने पर बल दिया गया था। यह कार्य (क) इन क्षेत्रों में वाणिज्यिक बैंकों की नई शाखाएं खोल कर; (ख) मौजूदा यूनिटों में लेखाओं की संख्या को बढ़ाकर; (ग) वाणिज्यिक बैंकों की पहुंच को बढ़ाने के लिए व्यापार कारेसपौण्डेण्ट/सुविधाप्रदाता माडल अपना कर; (घ) सूचना प्रौद्योगिकी का व्यापक रूप से उपयोग करके; (ङ) मुद्रा प्रबन्ध/विदेशी मुद्रा की उपलब्धता की सुविधा में सुधार करके; (च) बैंकों के माध्यम से बीमा और पूंजी बाजार उत्पाद मुहैया करके; (छ) इलेक्ट्रानिक समाशोधन सेवांए (ई.सी.एस.) और रीयल टाइम ग्रास सेटलमेंट सिस्टम अपना कर; (ज) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को मजबूत बनाकर; (झ) सुस्थापित स्व-सहायता समूहों को सहकारी समितियों में रूपान्तरित करके; (ञ) विश्वनाथन समिति की सिफारिशों को कार्यान्वित करके; (ट) समपार्श्विकों (कोलेटरल्ज़) पर दिए जाने वाले बल में ढील देकर; (ठ) सहकारी समितियों से प्राप्य राशियों का संग्रह करने के लिए राज्यों में सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार की वसूली करने की क्षमता को बढ़ा कर किया जा सकता है।

4.2.3 इसके बाद, वर्ष 2007 में, "देश में वित्तीय समावेश" के बारे में एक व्यापक रिपोर्ट तैयार करने के लिए डा. सी. रंगराजन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई थी। समिति ने (क) दूरस्थ क्षेत्रों में बैंकिंग, (ख) स्व-सहायता समूहों को और वित्तीय संस्थाओं के साथ उनके संयोजनों को सशक्त बनाने, और (ग) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनरुज्जीवित करने से सम्बन्धित बहुत से मुद्दों पर विचार किया ।

समिति का एक निष्कर्ष यह था कि ऋण की पहुंच के परिदृश्य से बहुत व्यापक अन्तर्क्षेत्रीय और अन्तर्राज्यीय भिन्नता का पता चलता है। नीचे की तालिका में स्थिति स्पष्ट की गई है[13]:

क्षेत्रों में गैर-ऋणग्रस्तता का स्तर

4.2.4 कुल किसान परिवारों की तुलना में औपचारिक श्रोतों से ऋण प्राप्त न करने वाले किसान परिवारों का अनुपात उत्तर-पूर्वी, पूर्वी और केन्द्रीय क्षेत्रों में विशेष रूप से ऊंचा, अर्थात क्रमश: 95.91 प्रतिशत, 81.26 प्रतिशत और 77.59 प्रतिशत है। निरपेक्ष संख्याओं के रूप में इन क्षेत्रों में कुल मिला कर 64 प्रतिशत किसान परिवार ऐसे हैं, जो औपचारिक श्रोतों से ऋण प्राप्त नहीं कर रहे हैं, जैसाकि नीचे ब्योरा दिया गया है।

[13] वित्तीय समावेश के बारे में रंगराजन समिति की रिपोर्ट, जनवरी 2008

तालिका 4.1 औपचारिक श्रोतों से ऋण प्राप्त ने करने वाले किसान परिवार (लाख में)

क्षेत्र	कुल परिवार	ऋण-ग्रस्त परिवार	कुल परिवारों की तुलना में प्रतिशतता	गैर-ऋण-ग्रस्त परिवार	कुल परिवारों की तुलना में प्रतिशतता	औप-चारिक श्रोतों के प्रति ऋण-ग्रस्त	कुल परिवारों की तुलना में प्रतिशतता	औप-चारिक स्त्रोतों द्वारा बहिष्कृत	कुल परिवारों की तुलना में प्रतिशतता
उत्तर	109.46	56.26	51.40	53.2	48.60	27.4223	25.05	82.05	74.95
उत्तर-पूर्वी	35.40	7.04	19.90	28.36	80.10	1.448	4.09	33.95	95.91
पूर्वी	210.61	84.22	40.00	126.39	60.00	39.467	18.74	171.14	81.26
मध्य	271.33	113.04	41.60	158.29	58.40	60.814	22.41	210.52	77.59
पश्चिमी	103.66	55.74	53.70	47.92	46.30	45.586	43.98	58.07	56.02
दक्षिणी	161.56	117.45	72.70	44.11	27.30	69.072	42.75	92.49	57.25
संघ राज्य क्षेत्रों का समूह	1.48	0.49	33.10	0.99	66.90	0.15	10.14	1.33	89.86
अखिल भारत	893.50	434.24	48.60	459.26	51.40	243.96	27.30	649.54	72.70
उ0पू0, के0 एवं पू0 क्षेत्र*	517.34	204.30	39.49	313.04	60.51	101.73	19.66	415.61	80.34
भारत में हिस्सा (%)	57.90	47.05		68.16		41.70		63.99	

*उ0पू0= उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, के0=केन्द्रीय, पू0 =पूर्वी क्षेत्र

दूसरी ओर, दक्षिणी क्षेत्र यह दर्शाता है कि वहां औपचारिक/अनौपचारिक श्रोतों तक पहुंच का स्तर अपेक्षाकृत बेहतर (72.7 प्रतिशत) है, जिसका मुख्य कारण यह है कि वहां बैंकिंग की आदतों का प्रसार अधिक है और बुनियादी ढांचा अधिक मजबूत है।

राज्यो में गैर-ऋणग्रस्तता का स्तर

4.2.5 गैर-ऋणग्रस्त किसान परिवारों का अनुपात उत्तरी क्षेत्र में जम्मू और कश्मीर (68.2 प्रतिशत) और हिमाचल प्रदेश (66.6 प्रतिशत), उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में त्रिपुरा को छोड़कर शेष सभी राज्यों (61.2 प्रतिशत से 95.9 प्रतिशत) पूर्वी क्षेत्रों में बिहार (67 प्रतिशत) और झारखंड (79.1 प्रतिशत), और केन्द्रीय क्षेत्र में चंडीगढ़ (59.8 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (59.7 प्रतिशत) और उत्तराखंड (92.8 प्रतिशत) में अधिक सुस्पष्ट था, जैसाकि नीचे ब्योरा दिया गया है:

तालिका 4.2

राज्य/क्षेत्र	गैर ऋण गस्त किसान परिवार @		राज्य/क्षेत्र	गैर ऋण ग्रस्त किसान परिवार @	
	लाख	%		लाख	%
उत्तरी	53.21	48.7	पश्चिम बंगाल	34.53	49.9
हरियाणा	9.11	46.9	केन्द्र	158.29	58.4
हिमाचल प्रदेश	6.03	66.6	छत्तीसगढ़	16.50	59.8
जम्मू एवं कश्मीर	6.43	68.2	मध्य प्रदेश	31.09	49.2
पंजाब	6.38	34.6	उत्तर प्रदेश	102.38	59.7
राजस्थान	25.26	47.6	उत्तराखंड	8.32	92.8
उत्तर-पूर्व	28.36	80.4	पश्चिमी	47.92	46.3
अरूणाचल प्रदेश	1.15	94.1	गुजरात	18.20	48.1
असम	20.51	81.9	महाराष्ट्र	29.72	45.2
मणिपुर	1.61	75.2	दक्षिणी	44.11	27.3
मेघालय	2.44	95.9	आंध्रप्रदेश	10.84	18.0
मिजोरम	0.60	76.4	कर्नाटक	15.52	38.4
नागालैंड	0.51	63.5	केरल	7.82	35.6
त्रिपुरा	1.19	50.8	तमिलनाडु	9.93	25.5
सिक्किम	0.36	61.2			
पूर्वी	126.39	60.0	सं. शा: रा. का समूह	0.99	66.9
बिहार	47.42	67.0			
झारखंड	22.34	79.1	अखिल भारत	459.26	51.4
उड़ीसा	22.09	52.2	@ दोनों के लिए गैर ऋणगस्त संदर्भित		

संस्थात्मक श्रोतों के प्रति ऋणग्रस्तता का स्तर

4.2.6 प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि कुल किसान परिवारों में से केवल 27.3 प्रतिशत परिवार संस्थात्मक श्रोतों के प्रति ऋणग्रस्त थे, जैसाकि नीचे ब्यौरा दिया गया है:

तालिका 4.3: ऋणग्रस्त किसान परिवारों का अनुपात

राज्य	कुल संख्या परिवार (लाख)	औपचारिक और गैर औपचारिक स्त्रोतो के सम्बन्ध में ऋणग्रस्ता का भार		शैक्षिक स्त्रोतो के प्रति गैर ऋणगस्तत	
		लाख परिवार	(% कुल परिवार)	लाख परिवार	(% कुल परिवार)
उत्तरी	109.46	56.26	51.39	27.42	25.05
उत्तरी-पूर्वी	35.40	7.04	19.88	1.45	4.09
पूर्वी	210.61	84.22	40.01	39.47	18.74
केन्द्र	271.33	113.04	41.66	60.81	22.41
पश्चिमी	103.66	55.74	53.77	45.59	43.98
दक्षिणी	161.56	117.45	72.70	69.07	42.75
संध राज्य क्षेत्रों का समूह	1.48	0.49	33.10	0.150	10.14
अखिल भारत	893.50	434.24	48.60	243.96	27.30

4.2.7 रंगराजन समिति इन निष्कर्ष पर पहुंची कि इस समय देश के 17 राज्यों और 1 संघ राज्यक्षेत्र में फैले 256 जिले (कुल 617 जिलों में) ऐसे हैं, जो गम्भीर रूप से ऋणवंचित हैं और जहां 95 प्रतिशत ऋण अन्तराल है। समिति ने वित्तीय समावेश के अभाव के लिए चार मुख्य कारण निर्धारित किए हैं:

i. समपार्श्विक प्रतिभूति मुहैया करने में असमर्थता,

ii. ऋण का अवशोषण करने की कम क्षमता,

iii. संस्थाओं की अपर्याप्त पहुंच, और

iv. कमजोर सामुदायिक नेटवर्क।

विकास विशेषज्ञों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण संयोजन के एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में गांवों में सुदृढ़ सामुदायिक नेटवर्क के अस्तित्व की उत्तरोत्तर अधिक पहचान की जा रही है। भाग लेने वाले सामुदायिक संगठन (स्व-सहायता समूह/सीमित देनदारी समूह) ऋण को गरीबों तक पहुंचाने में अत्यधिक प्रभावकारी सिद्ध हो सकते हैं और इस प्रकार गरीबी उपशमन में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

4.3 भारत में स्व-सहायता समूह आन्दोलन का विकास

4.3.1 सामुदायिक नेटवर्क (स्व-सहायता/सीमित देनदारी समूह)-प्रारम्भ

4.3.1.1 इस दिशा में पहली संगठनात्मक पहल 1954 में गुजरात में की गई थी, जब अहमदाबाद की टेक्सटाइल लेबर यूनियन ने महिलाओं को सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, टाइपसेटिंग और आशुलिपि, आदि जैसे प्राथमिक कौशलों का प्रशिक्षण देने के लिए कारखाना मजदूरों के परिवारों की महिलाओं को संगठित करने के वास्ते अपने महिला सकन्ध का निर्माण किया। 1972 में, इसे एक अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित ढांचे का रूप दिया गया, जब इला भट्ट के नेतृत्व में स्व-नियोजित महिला एसोसिएशन (सेवा) की स्थापना एक श्रम संघ के रूप में की गई। उन्होंने महिला कर्मकारों, जैसे फेरी लगाने वालों, विक्रेताओं, घर पर बैठ कर काम करने वालों, जैसे बुनकरों, कुम्हारों, पापड़/अगरबत्तियां बनाने वालों, हाथ से काम करने वाले मजदूरों, सेवा प्रदाताओं और छोटे उत्पादकों, जैसे पशुपालकों, नमक कर्मकारों, गोंद इकठ्ठा करने वालों, रसोइयों और विक्रेताओं को (क) उनकी आमदनियों और परिसम्पत्तियों में वृद्धि करने; (ख) उनके खाद्य और पोषाहार के स्तर को ऊंचा उठाने, और (ग) उनकी संगठनात्मक शक्ति और उनकी नेतृत्व शक्ति को बढ़ाने के प्राथमिक उद्देश्य से संगठित किया। समूचा अभिप्राय यह था कि महिलाओं को सम्पूर्ण रोजगार के लिए संगठित किया जाए। बाजार तक और तकनीकी निविष्टियों तक उनकी पहुंच को बढ़ाने के लिए इन प्राथमिक एसोसिएशनों को गुजरात राज्य महिला "सेवा" सहकारी फेडरेशन, बनासकंठा डी.डब्ल्यू.सी.आर.ए., महिला सेवा ऐसोसिएशन, आदि जैसी फेडरेशनें बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इस समय, "सेवा" के सदस्यों की कुल संख्या 9,59,000 है। 1980 के दशक में, एम.वाई.आर.ए.डी.ए. - कर्नाटक के एक गैर-सरकारी संगठन - ने बहुत से स्थानीय रूप से गठित समूहों को बढ़ावा दिया, ताकि वे अपने सदस्यों को सामूहिक रूप से ऋण प्राप्त करने में समर्थ बना सकें और अपनी बचतों के साथ उसका उपयोग ऐसे क्रियाकलापों के लिए कर सकें, जो उन्हें आर्थिक रूप से लाभकारी रोजगार मुहैया कर सकते हों।

बाक्स 4.1 : 'सेवा' के ग्यारह प्रश्न

1) क्या अधिक सदस्यों ने अधिक रोजगार प्राप्त किया? 2) क्या उनकी आय बढ़ी ? 3) क्या उन्होंने खाद्य और पोषाहार प्राप्त किया ? 4) क्या उनके स्वास्थ्य को सुरक्षित किया गया है ? 5) क्या उन्हें बाल परिचर्या प्राप्त हुई ? 6) क्या उन्होंने आवास प्राप्त किया अथवा उसमें सुधार किया ? 7) क्या उनकी परिसम्पत्ति में वृद्धि हुई ? (अर्थात क्या उनकी अपनी बचत, भूमि, मकान, कार्य-स्थल, औजार अथवा कार्य, लाइसेंस, पहचान-पत्र, पशु और सहकारी समिति में हिस्सा, सभी चीजें उनके नाम में हैं), 8) क्या कर्मकारों की संगठनात्मक शक्ति बढ़ी है? 9) क्या कर्मकार के नेतृत्व में वृद्धि हुई है, 10) क्या वे सामूहिक और वैयक्तिक रूप से स्वावलम्बी बनी हैं? 11) क्या वे साक्षर बनी हैं ?

4.3.1.2 स्थानीय स्तर पर छोटे समूह बनाने के प्रमुख प्रयोग लगभग दो दशक पहले तमिलनाडु और केरल में तमिलनाडु वीमेन इन एग्रीकल्चर कार्यक्रम 1986, केरल के पार्टीसिपेटरी पावर्टी रिडक्शन कार्यक्रम 1995 और तमिलनाडु वीमेन्स डवेलपमेंट परियोजना 1989 के जरिए शुरू किए गए थे। इन पहलों ने इन राजयों में स्व-सहायता समूह अभियान को ठोस आधार प्रदान किया।

आज, देश के बैंकों से संयोजित कुल स्व-सहायता समूहों में से लगभग 44 प्रतिशत समूह चार दक्षिणी राज्यों, अर्थात आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल में हैं।

4.3.1.3 उपर्युक्त कार्यक्रमों से जो सकारात्मक अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे इस सुदृढ़ सर्वसम्मति का निर्माण हुआ है कि (क) लधु समूह के संगठन और (ख) स्व-प्रबन्धन की दोहरी संकल्पनांए ग्रामीण गरीबों के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण की प्रभावशाली और प्रबल साधन हैं। देश के लगभग सभी भागों में इस माडल को गरीबी उपशमन के कार्यक्रम के एक आवश्यक संघटक के रूप में अपनाने के प्रयास किए गए हैं।

तालिका 4.4 : बैंक संयोजन कार्यक्रम – 31 मार्च, 2007 की स्थिति के अनुसार भौतिक और वित्तीय प्रगति का क्षेत्रीय विस्तार

(मिलियन रूपए)

क्र. सं.	क्षेत्र/राज्य	उन स्व-सहायता समूहों की कुल संख्या, जिन्हें 31 मार्च, 2006 तक बैंक ऋण मुहैया किया गया	नए स्व-सहायता समूहों की संख्या, जिन्हें 2006-07 के दौरान बैंक ऋण मुहैया किया गया	उन मौजूदा स्व-सहायता समूहों की संख्या जिन्हें 2006-07 के दौरान पुन: बैंक ऋण दिया गया	उन स्व-सहायता समूहों की कुल संख्या, जिन्हें 31 मार्च, 2007 जक बैंक ऋण प्रदान किया गया (3+4)	31 मार्च, 2006जक दिया गया कुल ऋण	2006-07 के दौरान बैंक ऋण	मौजूदा स्व-सहायता समूहों को सतम्भ 8 में से पुन: दिया गया ऋण	31 मार्च, 2007 तक दिया गया कुल ऋण (7+8)
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ए.	**उत्तरी राज्य**								
1.	हिमाचल प्रदेश	22,920	4,879	2,282	27,799	863.98	388.27	153.60	1,252.25
2.	राजस्थान	98,171	39,666	3,692	137,837	2,447.94	1,447.40	191.53	3,895.34
3.	हरियाणा	4,867	1,966	1,821	6,833	316.01	183.31	69.86	499.32
4.	पंजाब	4,561	1,893	517	6,454	238.86	117.74	29.24	356.60
5.	जम्मू एवं कश्मीर	2,354	405	199	2,759	100.48	44.25	15.83	144.73
6.	नई दिल्ली	224	112		336	18.58	8.65		27.23
	कुल (ए)	133,097	48,921	85,11	182,018	3,985.85	2,189.62	460.05	6,175.47
बी.	**उत्तरी-पूर्वी राज्य**								
7.	असम	56,449	25,005	160	81,454	1,423.98	794.40	2.91	2,218.38
8.	मेघालय	735	476	0	1,211	16.19	17.40	0.00	33.59
9.	त्रिपुरा	1,996	910	57	2,906	31.12	18.40	1.48	49.52

10.	सिक्किम	127	33	C	160	1.86	1.12	0.00	2.98
11.	मणिपुर	1,468	1,215	0	2,6S3	71.85	40.80	0.00	112.65
12.	अरूणाचल प्रदेश	346	101	0	447	13.49	5.72	0.00	19.21
13.	नागालैंड	422	576	10	998	34.38	33.50	2.97	67.88
14.	मिजोरम	974	921	0	1,895	64.14	70.56	0.00	134.70
	कुल (बी)	62,517	29,237	227	91,754	1,657.01	981.89	7.36	2,638.90
सी.	**पूर्वी राज्य**								
15.	उड़ीसा	180,896	53,555	28,806	234,451	4,754.65	3,274.27	1,409.33	8,028.92
16.	बिहार	46।221	26,118	1,306	72,339	1,052.19	960.28	211.15	2,012.47
17.	झारखंड	30,819	6,498	1,153	37,317	1,114.60	391.96	84.21	1306.56
18.	पश्चिम बंगाल	136,251	45,312	22,014	181,563	2,424.52	2,060.64	888.40	4,485.16
19.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप	164	47	30	211	8.23	4.58	3.40	12.81
	कुल (सी)	394,351	131,530	53,309	525,881	9,354.19	6,691.72	2396.30	16,045.91
डी.	**केन्द्र राज्य**								
20.	मध्य प्रदेश	57,125	13,787	1,726	70,912	1,666.86	499.23	65.12	2,166.09
21.	छत्तीसगढ़	31,291	10,412	1,330	41,703	337.81	218.44	27.51	556.25
22.	उत्तर प्रदेश	161,911	36,676	2373	198,587	5,153.54	1,778.48	192.43	6,932.02
23.	उत्तराखंड	17,588	3,939	1,268	21,527	891.86	382.69	225.64	1,274.55
	कुल (डी)	267,915	64,814	7,217	332,729	8,050.07	2,878.84	510.69	10,928.91
ई.	**पश्चिमी राज्य**								
24.	गुजरात	34,160	9,412	64	43,572	1,244.51	885.46	4.69	X\ 29.97
25.	महाराष्ट्र	131.470	94,386	19,382	225,856	3,951.67	2,983.86	841.01	6,935.53
26.	गोवा	624	395	142	1,019	55.21	28.28	9.03	83.49
	कुल (ई)	166,254	104,193	19,583	270,447	5,251.39	3,897.60	854.72	9,148.99
एफ	**दक्षिणी राज्य**								
27.	आन्ध्र प्रदेश	587,238	96,381	262,895	683,619	43,455.55	27,754.55	23,536.74	71.209.73
28.	कर्नाटक	224,928	92,708	56,717	317,636	9,927.53	8,163.89	3,239.26	18,091.42
29.	केरल	86,9SS	30,925	13359	117,913	4,821.48	2,889.40	1,067.68	7,710.88
30.	तमिलनाडु	312,778	87,699	35,387	400,477	27,121.87	10,984.48	3,721.55	38,106.35
31.	पांडिचेरी	2,499			2,499	350.86			350.86
	कुल (एफ)	1,214,431	307,713	368,558	1,522,144	85,676.92	49,792.32	31,565.24	135,469.24
	कुल जोड़	2,238,565	686,408	457,410	2,924,973	113,975.43	66,431.99	35,994.56	180,407.41

स्त्रोत : नाबार्ड

4.3.2 1992 से स्व-सहायता समूहों का विकास और राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)

4.3.2.1 छोटे समूह बनाना और ऋण प्राप्ति के लिए उन्हें बैंकों की शाखाओं से जोड़ना हमारे देश में स्व-सहायता समूहों के विकास के आन्दोलन की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता रहा है। स्व-सहायता समूह - बैंक संयोजन कार्यक्रम 1989 में एक परीक्षण परियोजना के रूप में शुरू किया गया था, जब नाबार्ड ने, जो देश में शीर्ष ग्रामीण विकास बैंक है, एम.वाई.आर.ए.डी.ए. को ऋण प्रबन्धन समूह गठित करने के लिए आधार-राशि (सीडमनी)के रूप में 10.00 लाख रुपए मंजूर किए थे। उसी वर्ष ग्रामीण विकास मंत्रालय ने पी.आर.ए.डी.ए.एन. को राजस्थान के कुछ ग्रामीण भागों में स्व-सहायता समूह स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता दी थी। इन अनुभवों के आधार पर, 1992 में नाबार्ड द्वारा एक स्वत: पूर्ण परियोजना शुरू की गई थी, जिसमें स्व-सहायता समूहों, बैंकों और गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी शामिल थी। 1995 में, भारतीय रिजर्व बैंक ने एक कार्य दल की रिपोर्ट पर अमल करते हुए, वाणिज्यिक बैंकों को कुछ मार्गनिर्देश जारी करके ऋण प्रदान करने की प्रक्रिया को सरल और कारगर बनाया। इससे स्व-सहायता समूह एक सरल आपसी करार के आधार पर बैंक खाते खोल सकते थे। इस स्कीम को नाबार्ड द्वारा स्व-सहायता समूह - बैंक संयोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण विकास के लिए बैंकों को पुनर्वित्त और संवर्धनात्मक सहायता मुहैया करने के लिए दी गई स्थाई वचनबद्धता द्वारा और मजबूत बनाया गया। नाबार्ड का निगम उद्देश्य (कारपोरेट मिशन) 2008 के अन्त तक 20 मिलियन गरीब परिवारों को, अथवा देश के एक-तिहाई गरीबों को लघु-वित्त

तालिका 4.5 : स्व-सहायता समूहों के वित्त का ब्योरा

वर्ष	वर्ष के दौरान वित्तपोषित स्व-सहायता समूहों की संख्या (लाख)	वित्तपोषित किए गए स्व-सहायता समूहों की कुल संख्या (लाख)
2001-02	1.98	4.61
2002-03	2.56	7.17
2003-04	3.62	10.79
2004-05	5.39	16.18
2005-06	6.20	22.38
2006-07	6.87	29.25

स्त्रोत : नाबार्ड

सेवाएं उपलब्ध कराना था। शुरू के वर्षों में, इस कार्यक्रम की प्रगति धीमी थी; 1992-99 की अवधि में केवल 32995 समूहों को ऋण-संयोजित किया जा सका था। किन्तु, उसके बाद, कार्यक्रम में तेजी से वृद्धि हुई और वित्तपोषित किए गए स्व-सहायता समूहों की संख्या, जो 1999-2000 में 81780 थी, बढ़कर 2005-06 में 6.20 लाख और 2006-07 में 6.87 लाख हो गई। कुल मिला कर, देश में 32.98 मिलियन गरीब परिवार औपचारिक बैंकिग प्रणाली से लधु वित्त (माइक्रो वित्त) प्राप्त करने में सक्षम हुए हैं[14]।

बाक्स 4.2 : देश में स्व-सहायता समूह आन्दोलन की कु विशेषताएं (वर्ष 2005-06)

- स्व-सहायता समूह माडल भारत में माइक्रो वित्त के लिए एक प्रमुख साधन है।
- 31.3.2006 को 2.24 मिलियन स्व-सहायता समूह बैंक संयोजन के तहत थे।
- शुरु में गैर-सरकारी संगठनों ने स्व-सहायता समूहों को बढ़ावा देने की प्रकिया प्रारम्भ की।
- सरकार स्व-सहायता समूहों के सबसे बड़े प्रोत्साहक के रूप में उभरी।
- सरकार के विभिन्न सब्सिडी कार्यक्रम स्व-सहायता समूहों के साथ जुड़े हैं।
- 2005-06 में 9.64 लाख स्व-सहायता समूहों का वित्तपोषण किया गया (6.20 लाख नए और 3.44 लाख दोबारा ऋण द्वारा)।
- नए स्व-सहायता समूहों के लिए ऋण की औसत मात्रा - 37561 रूपए और औसत दुबारा ऋण - 62,918 रुपए प्रति स्व-सहायता समूह।
- देश के लगभग 44 प्रतिशत बैंक-संयोजित स्व-सहायता समूह दक्षिणी राज्यों में थे।

4.3.2.2 नाबार्ड ने, ड्यूश जेसेलशाफ्ट फर टेकनीक जूसम्मेनार्बल (जी टी जेड) के सहयोग से, 2005 में प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रक को ऋण देने के अन्य तरीकों की तुलना में, एस.एच.जी. - बैंक संयोजन कार्यक्रम के तुलनात्मक कार्य-निष्पादन के बारे में एक अध्ययन किया। इस अध्ययन के निष्कर्ष 27 वाणिज्यिक बैंकों, 192 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और कार्यक्रम में भाग लेने वाले 114 सहकारी बैंकों से प्राप्त आंकड़ों और जानकारी पर आधारित हैं। इस अध्ययन में एक महत्वपूर्ण बात यह देखी गई थी कि 1.44 मिलियन स्व-सहायता समूहों पर बैंकिंग प्रणाली के 4,200 करोड़ रुपए के ऋण बकाया थे। 2.63 मिलियन स्व-सहायता समूहों के बैंकों में बचत खाते थे और उनमें 2,391 करोड़ रुपए की राशि जमा थी।

[14] नाबार्ड डाटा 2005-06

तालिक 4.6 : भारत में स्व–सहायता समूह–बैंक संयोजन कार्यक्रम की प्रवृत्तियां और प्रगति

(आई.एन.आर. मिलियन रुपए)

	मार्च 1993	मार्च 1996	मार्च 2006	मार्च 2007
संयोजित स्व-सहायता समूह	255	4,757	22,38,525	29,24973
% महिला समूह	70	74	90	90
जितने परिवारों को सहायता दी गई (मिलियन)	0.005	0.08	32.98	40.95
कवर की गई जनसंख्या (मिलियन)	0.025	0.40	164.90	204.75
भाग लेने वाले बैंक	14	95	501	498
स्व-सहायता समूहों को बढ़ावा देने वाले भागीदार कवर किए गए जिले	32	127	4,323	4,896
कुल बैंक ऋण	26	157	572	587
	2.58	53,32	1,13,974.01	1,80,407

स्त्रोत: नाबार्ड

4.3.2.3 पहली बार देखने पर, ऊपर के आंकड़े बहुत प्रभावशाली प्रतीत होते हैं, अर्थात इस कार्यक्रम के तहत 40.95 मिलियन परिवार और 204.75 मिलियन लोग कवर किए गए और 31.03.2007 को 18040 करोड़ रुपए के ऋण बकाया थे। किन्तु देश में व्याप्त गरीबी की मात्रा के सन्दर्भ में और सरकार के विभिन्न गरीबी-रोधी कार्यक्रमों के अन्तर्गत उपलब्ध निधियों के प्रवाह की कुल मात्रा के सन्दर्भ में, स्व-सहायता समूह आन्दोलन के आकार का उल्लेख केवल लघु आकार के रूप में किया जा सकता है। 2003-04, 2004-05 और 2005-06 के वर्षों में, नए बनाए गए समूहों को बाह्य वित्तीय संस्थाओं से औसत रूप से क्रमश: 32005 रूपए, 32012 रूपए और 37581 रूपए का ऋण उपलब्ध था। प्रति व्यक्ति संवितरण की राशि 4000/- रूपए से कम बैठती है, जबकि स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (ग्रामीण क्षेत्रों में केवल गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के लिए अभिप्रेत स्कीम) के अन्तर्गत यह राशि 21,818 रूपए (2005-06) थी।

4.3.3 स्व-सहायता समूह विकास में शामिल अन्य अभिकरण

4.3.3.1 नाबार्ड के अलावा, सरकारी क्षेत्रक के चार अन्य प्रमुख संगठन भी हैं, जो स्व-सहायता समूहों को आगे ऋण देने के लिए वित्तीय बिचौलियों को ऋण प्रदान करते हैं: (क) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक

(एस.आई.डी.बी.आई), (ख) राष्ट्रीय महिला कोष, और (ग) आवास और शहरी विकास निगम (हुडको)। इसके अतिरिक्त, सरकारी क्षेत्र के बैंक/अन्य वाणिज्यिक बैंक हैं, जो अपनी नीति और भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गनिर्देशों के अनुसार किसी प्रकार के ऋणदान का कार्य हाथ में लेने के लिए स्वतन्त्र हैं।

4.3.3.2 राष्ट्रीय महिला कोष

4.3.3.2.1 भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना मार्च, 1993 में महिला और बाल विकास विभाग (अब मंत्रालय) के अन्तर्गत समिति पंजीयन अधिनियम, 1860 के तहत पंजीयित एक स्वायत्त निकाय के रूप में की गई थी। इसका उद्देश्य गरीब महिलाओं को उनके सामाजिक-आर्थिक उत्थान के लिए ऋण सहायता प्रदान करना था।

4.3.3.2.2 यह महसूस किया गया था कि गरीब महिलाओं, विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र की महिलाओं की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं को देश की औपचारिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा पर्याप्त रूप से पूरा नहीं किया जाता। इसलिए राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना एक ऐसी औपचारिकवत ऋण प्रदान व्यवस्था में ऋण मुहैया करने के लिए की गई थी, जा ग्राहक-अनुकूल हो, जिसकी प्रक्रिया सादी और न्यूनतम हो, जो संवितरण का कार्य तेजी से और बार-बार करे, जिसके ऋण चुकाने के कार्यक्रम लचीले हों, जो मितव्ययता और बचतों को ऋण के साथ जोड़े और जिसमें लेनदेन की लागत ऋणकर्त्ता और ऋणदाता दोनों के लिए अपेक्षाकृत कम हो। ऋण की न्यूनतम राशि, जो किसी लाभभोगी को एक-बारगी दी जा सकती है, वह आय सृजन के लिए 25,000 रूपए, मकान-निर्माण के लिए 50,000 रूपए और किसी पारिवारिक प्रयोजन के लिए 10,000 रूपए हैं।

4.3.3.2.3 यह कोष एक अनुपम ऋण सपुर्दगी माडल "आर.एम.के. - एन.जी.ओ. - एस.एच.जी. - लाभभोगी" के अनुसार ऋण देता है। यह सहायता गैर-सरकारी संगठनों, महिला विकास निगमों, राज्य सरकारों के अभिकरणों, जैसे डी.आर.डी.ए., डेरी फेडरेशनों, नगरपालिका परिषदों, आदि के माध्यम से दी जाती है।

तालिका 4.7 : राष्ट्रीय महिला कोष का कार्य–निष्पादन – एक विहंगावलोकन (31.03.2008 की स्थिति के अनुसार)

स्वीकृत ऋण	Rs.250 करोड़
संवितरित ऋण	Rs.197 करोड़
वसूली की प्रतिशतता	उपरलिखित 90%
मध्यवर्ती संगठनों का आई एम ओ	1375
एस एच जी	61,600

लाभान्वित महिलाएं	6,19,230
नोडल एजेन्सीयों की संख्या	31
फन्चाईज	5
कवर हुए राज्य/संघ राज्य	25
ऋण की व्यक्ति को/अधिकतम सीमा	Rs.25,000/– आय सृजन Rs.50,000/– गृह ऋण Rs.10,000/– परिवार खपत ऋण
स्त्रोत : राष्ट्रीय महिला कोष	

4.3.3.2.4 राष्ट्रीय महिला कोष को उसके प्रारम्भ के समय 31 करोड़ रूपए की राशि मुहैया की गई थी। बीच की 15 वर्ष की अवधि में, इस राशि में मामूली-सी वृद्धि की गई है और 31-03-2008 को यह राशि 76.15 करोड़ रूपए की थी। इस कोष का देश में किसी जगह कोई क्षेत्रीय/शाखा कार्यालय नहीं है और यह केवल नई दिल्ली में स्थित अपने निगम कार्यालय के माध्यम से कार्य करता है।

4.3.3.2.5 कोष का एक छोटा संगठनात्मक ढांचा है, जिसमें 30 से कम कर्मचारी हैं और महिला और बाल विकास मंत्री इसके शासी निकाय के अध्यक्ष हैं और कोष में एक कार्यकारी निदेशक हैं जो इसके कार्यात्मक अध्यक्ष हैं। इसके प्रचालन के क्षेत्र का विस्तार सारे देश में है। स्वैच्छिक संगठनों को ऋण मंजूर करने की प्रक्रिया में पांच मुख्य कदम हैं, अर्थात (i) मार्गनिर्देश जारी करना/आवेदन आमंत्रित करना; (ii) प्रस्ताव का डेस्क मूल्यांकन; (iii) मंजूरी-पूर्व दौरा/निर्धारण; (iv) मंजूरी और कार्यान्वयन, मानीटरन; और (v) पूरा होने के बाद रिपोर्ट देना। वर्ष 2006-07 के दौरान, इस संगठन ने 30.71 करोड़ रूपए के ऋण दिए, जिनसे 34,692 महिलाओं को लाभ हुआ। पिछले 15 वर्षों में इनकी कुल संख्या 5,83,403 है।

4.3.3.2.6 आयोग का विचार है कि राष्ट्रीय महिला कोष जैसे छोटे से संगठन के लिए, जो दिल्ली में स्थित हो, कारगर तरीके से काम करना और समूचे देश भर में फैली हुई परियोजनाओं को मानीटर करना बहुत कठिन है। यदि इस संगठन के लिए इस क्षेत्रक में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाना अपेक्षित है, तो सरकार के लिए कुछ अविलम्ब उपाय करना जरूरी होगा। कोष की राशि को काफी अधिक बढ़ाया जाना चाहिए, ताकि कार्यक्रमों के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि हो। कोष की भौगोलिक पहुंच को बढ़ाने के लिए, इसे देश के चुने हुए स्थानों पर अपने क्षेत्रीय कार्यालय खोलने की अनुमति दी जानी चाहिए, जिनमें पर्याप्त स्टाफ हो। इससे आवेदनों के बारे में तेजी से कार्रवाई करने में और मंजूर की गई स्कीमों को कारगर ढंग से मानीटर करने में सहायता मिलेगी। चूंकि उत्तर-पूर्व के राज्यों, बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, झारखंड, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान को ऋण की कमी वाले राज्य निर्धारित किया गया है,

इसलिए कोष को यह विशेष आदेश दिया जाना चाहिए कि अगले पांच वर्षों के लिए उसके क्रियाकलापों के ध्यान के केन्द्र-बिन्दु ये क्षेत्र होंगे।

4.3.3.3 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक का माइक्रोवित्त कार्यक्रम

4.3.3.3.1 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने अपना माइक्रो वित्त कार्यक्रम 1994 में ऋण सपुर्दगी के एन.जी.ओ./एम.एफ.आई. माडल का उपयोग करते हुए प्रायोगिक आधार पर शुरू किया था, जिसमें ऐसी संस्थाओं का उपयोग गरीबों और अनपहुंचे व्यक्तियों, विशेष रूप से महिलाओं को ऋण सपुर्द करने के लिए वित्तीय बिचौलियों के रूप में किया गया था। प्रायोगिक दौर के अनुभव से सीखते हुए, भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक ने 1999 में अपने माइक्रो वित्त कार्यक्रम को नई दिशा दी और उसे अद्यतन बनाया। एक विशेषज्ञता वाला विभाग अर्थात "सिडबी फाउंडेशन फार माइक्रो क्रेडिट (एस.एफ.एम. सी.)" स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य अनौपचारिक और औपचारिक वित्तीय क्षेत्रकों से सुदृढ़, सक्षम और संधारणीय लघु वित्त संस्थाओं के एक राष्ट्रीय नेटवर्क का निर्माण करना था। एस.एफ.एम.सी. भारत में लघु वित्त के एक शीर्ष थोक विक्रेता के रूप में कार्य करता है, जो लघु वित्त संस्थाओं को हर प्रकार की वित्तीय और गैर-वित्तीय सेवाएं मुहैया करता है, ताकि उनका विकास वित्तीय रूप से संधारणीय संस्थाओं के रूप में हो सके, और इसके अलावा वह सेवा प्रदाताओं का एक नेटवर्क विकसित करता है और इस क्षेत्रक के लिए एक उपयुक्त नीतिगत ढांचा बनाने की वकालत करता है।

4.3.3.3.2 एस.एफ.एम.सी. राष्ट्रीय लघु वित्त सहायता कार्यक्रम (एन.एम.एफ.एस.पी.) को कार्यान्वित कर रहा है। एन.एम.एफ.एस.पी. का लक्ष्य कुल मिला कर यह है कि भारत में लघु-वित्त सेवाओं का उपयोग करने वालों, विशेष रूप से महिलाओं में गरीबी का काफी अधिक उन्मूलन किया जाए और कमजोरी को घटाया जाए। एन.एम.एफ.एस.पी. का कार्यान्वयन भारत सरकार, यू.के. के अन्तर्राष्ट्रीय विकास विभाग और अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास निधि (आई.एफ.ए.डी.), रोम के साथ मिल कर किया जा रहा है।

4.3.3.3.3 एस.आई.डी.बी.आई. की लघु वित्त पहलों के अन्तर्गत उसके विभिन्न उत्पादों के तहत मार्च 31, 2008 तक कुल 1946.82 करोड़ रुपए की सहायता की मंजूरी दी गई थी, जवकि कुल संवितरित राशि 1661.77 करोड़ रुपए है।

तालिका 4.8 : एस.आई.डी.बी.आई. द्वारा लघु–ऋण के अन्तर्गत दी गई सहायता

क्रम सं.	ब्योरा	2006–07		2007–08		कुल राशि	
		संवितरित	स्वीकृत	संवितरित	स्वीकृत	संवितरित	स्वीकृत
1.	सावधि ऋण	385.00	348.42	745.95	695.80	1820.63	1565.27
2.	नकदी प्रबन्ध सहायता	3.20	3.07	0.00	0.00	6.60	6.47
3.	रूपान्तरण ऋण/रूपान्तरण के लिए कार्पस सहायता	1.40	1.40	0.00	0.00	15.05	14.05
4.	इक्विटी सहायता	0.00	0.00	13.71	5.71	15.71	6.71
5.	लघु वित्त संस्थाओं को क्षमता निर्माण अनुदान	23.84	19.88	5.36	7.00	63.76	48.60
6.	छोटी लघु वित्त संस्थाओं के लिए जोखिम निधि	0.00	0.00	2.98	2.98	2.98	2.98
7.	अन्य क्षमता निर्माण अनुदान	3.55	0.00	0.74	2.24	22.09	17.69
	जोड़	416.99	3.23	768.74	713.73	1946.82	1661.77
8.	बकाया ऋण	548.44	376.00				
9.	सहायता-प्राप्त लाभभोगियों की संख्या	8.60.44	950.38	46.33			

श्रोत: एस.आई.डी.बी.आई.

4.3.3.3.4 भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (एस.आई.डी.बी.आई.) उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर-पूर्वी राज्यों जैसे कमजोर राज्यों में, जहां औपचारिक वित्तीय सेवाओं तक पहुंच अपर्याप्त है, लघु वित्त के विकास की ओर भी अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

4.3.3.3.5 भारत सरकार ने पोर्टफोलियो जोखिम निधि (पी.आर.एफ.) स्कीम के अन्तर्गत 150 करोड़ रुपए की सहायता देने का वचन दिया है, जिसका उपयोग बैंक द्वारा लघु वित्त संस्थाओं को ऋण देने के लिए लघु ऋण स्कीम के अन्तर्गत प्रतिभूति कवर आवश्यकताओं के एक भाग को पूरा करने के लिए किया जा रहा है। पी.आर.एफ.कार्पस राशि 2007 के वित्तीय वर्ष से शुरू होने वाली पांच वर्ष की अवधि के लिए उपलब्ध है और इसका उद्देश्य देश भर में पचास लाख अतिरिक्त लाभभोगियों को कवर करना है। मार्च 31, 2008 की स्थिति के अनुसार, पी.आर.एफ. के अन्तर्गत पात्र लघु वित्त संस्थाओं को संवितरित कुल राशि 709.37 करोड़ रुपए थी, जिसके अन्तर्गत 11.83 लाख ग्राहक कवर किए गए थे।

4.3.4 राज्यों में सफलता की कुछ कहानियां

4.3.4.1 आन्ध्र प्रदेश में सामाजिक संघटन और महिलाओं के सशक्तीकरण के जरिए गरीबी उन्मूलन।

4.3.4.1.1 आन्ध्र प्रदेश सरकार राज्य में व्यापक सामाजिक संघटन के जरिए गरीबी उपशमन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित कर रही है। महिलाओं के स्व-सहायता समूहों को बनाकर, महिलाओं को विकास की कार्य-सूची में सबसे ऊपर का स्थान दिया गया है। ब्लाक और जिला स्तरों पर निर्मित बहुस्तरीय स्व-सहायता समूह फेडरेशनों से स्व-सहायता समूहों के विकास में और सहायता प्राप्त हुई है और इस संघटन को संस्थागत स्वरूप प्राप्त हो गया है। राज्य सरकार विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत परिक्रामी निधि/समतुल्य अनुदान मुहैया करके इन समूहों को सहायता देती है। सोसाइटी फार एलिमिनेशन आफ रूरल पावर्टी, जो एक पंजीयित निकाय है, इन समूहों को सुविधाकारी सहायता प्रदान करके और सरकार के सम्बन्धित विभागों, बैंकों और बीमा कम्पनियों को गरीबों की जरूरतों के प्रति संवेदनशील बनाकर इस प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

बाक्स 4.3 : आन्ध्र प्रदेश में स्व-सहायता समूह-बैंक सयोजन

- स्व-सहायता समूहों को बैंक ऋण - 2007/08 में 5900 करोड़ रुपए
- प्रति सदस्य संयोजन - 11,000 रुपए
- वापसी अदायगी दरें - 98.5 प्रतिशत से अधिक
- बचतों से जुड़े ऋण से स्व-सहायता समूहों द्वारा लघु ऋण योजना पर आधारित ऋण
- ऋणों की अदला-बदली, सामाजिक आवश्यकताओं और आय-सृजन के लिए बैंक वित्त - 3000 गांव कवर किए गए, शेष 32,000 गांव 3 वर्षों में कवर किए जाएंगे
- 2004 से - एक बारगी अदायगी के लिए ब्याज सब्सिडी - 'पावला वाड्डी' स्कीम : 2008-09 के लिए 250.00 करोड़ रुपए का परिव्यय

मुख्य प्रभाव

नेतृत्व विकास:

- 14,00,000 महिला नेता
- स्व-सहायता समूहों और स्वैच्छिक संगठनों के लिए काम कर रहे 180,000 परा-व्यवसायिक
- 20,000 सामुदायिक संसाधन व्यक्ति, जो राज्य में सामाजिक संघटन की प्रक्रिया को प्रज्वलित करते रहे हैं

बचतें और ऋण

- 3000 करोड़ रुपए की संचित निधि
- स्व-सहायता समूहों को बैंक ऋण - 01/02 में 200 करोड़ रुपए और 07/08 में 5900 करोड़ रुपए - 8 वर्षों में 50 गुना वृद्धि
- स्व-सहायता समूहों को कम ब्याज वाले ऋण - शोषणकारी ऋण से मुक्ति
- राज्य सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण - गरीबी उन्मूलन की दीर्घकालिक कार्यनीति अत्यावश्यक

- सामाजिक संघटन को प्रेरित करने के लिए राज्यव्यापी समर्थन ढांचा
- सामाजिक पूंजी महत्वपूर्ण -गरीबों की संस्थाओं और समुदाय के सर्वोंतम कार्यकुशल कार्यकर्त्ताओं का निर्माण
- सेवा प्रदाताओं के रुख को गरीबों के अनुकूल बनाना
- गरीबों की क्षमता में विश्वास
- गरीबों से सीखना
- जितनी जल्दी हो सके, स्वामित्व गरीबों की संस्थाओं के हाथ में देना
- सामुदायिक संसाधन व्यक्तियों की भूमिका - महत्वपूर्ण

श्रोत: मुख्य कार्यकारी अधिकारी, गरीबी उन्मूलन सोसाइटी, ग्रामीण विकास विभाग, आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा प्रस्तुत सूचना।

4.3.4.2 ग्रामीण विकास के लिए स्व–सहायता समूह : तमिलनाडु का अनुभव[15]

4.3.4.2.1 तमिलनाडु में, ग्रामीण विकास विभाग ने गांवों के गरीबों को स्व-सहायता समूहों के रूप में संगठित करने के लिए कदम उठाए हैं, जो अपने सदस्यों के लिए आजीविका रोजगार प्राप्त करने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। समूह के सदस्य नियमित रूप से बचत करने और अपनी बचतों को एक सांझी निधि में रूपान्तरित करने के लिए सहमत होते हैं, जिसे समूह की निधि कहा जाता है। इस निधि का उपयोग समूह द्वारा एक सामान्य प्रबन्धन कार्यनीति के अनुसार किया जाता है। समूह निम्नलिखित सामान्य मार्गनिर्देशों को ध्यान में रखता है:

4.3.4.2.2 सामान्यत:, एक स्व-सहायता समूह में 10 से 20 तक व्यक्ति शामिल होते हैं। लेकिन कठिन इलाकों में, जहां लोग बिखरे हुए और कम संख्या में होते हैं, इनकी संख्या 5 तक भी हो सकती है। लेकिन ऐसे इलाकों का निर्धारण राज्य स्तरीय एस.जी.एस.वाई. समिति द्वारा किया जाना जरूरी होता है। अशक्त व्यक्तियों के समूहों और लघु सिंचाई की स्कीमों को हाथ में लेने वाले समूहों को भी ऐसी ही ढील उपलब्ध होती है।

4.3.4.2.3 आवश्यक शर्त यह है कि ये समूह गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के होने चाहिएं। किन्तु, यदि आवश्यक हो तो किसी समूह में अधिक से अधिक 20 प्रतिशत और आपवादिक मामलों में, जहां अत्यावश्यक हो, अधिकतम 30 प्रतिशत सदस्य गरीबी की रेखा से सीमान्तिक रूप से ऊपर के ऐसे परिवारों से लिए जा सकते हैं, जो गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के साथ सटे हुए रह रहे हों। यह कार्य समूह के गरीबी की रेखा से नीचे के सदस्यों की मंजूरी से किया जाना जरूरी है। इससे व्यावसायिक समूहों, जैसे कृषि मजदूरों, सीमान्त किसानों और दस्तकारों के परिवारों को, जो गरीबी की रेखा से सीमान्तिक

[15] www.tn.gov.in/shg.htm

रूप से ऊपर हो, अथवा जिन्हें गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों की सूची में से शामिल न किया गया हो, स्व-सहायता समूह के सदस्य बनने में सहायता मिल सकती है। किन्तु, गरीबी की रेखा से ऊपर के सदस्य इस स्कीम के अन्तर्गत सब्सिडी पाने के हकदार नहीं होते। समूह एक ही परिवार के एक से अधिक सदस्य को शामिल नहीं करता। इसका अर्थ यह भी है कि कोई व्यक्ति एक से अधिक समूह का सदस्य नहीं होना चाहिए। गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों को समूह के प्रबन्ध में और निर्णय लेने में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। गरीबी की रेखा से ऊपर के सदस्यों को हावी नहीं होने दिया जाता। इसके अलावा, स्व-सहायता समूहों के गरीबी की रेखा से ऊपर के सदस्यों को समूह के पदाधिकारी (समूह नेता, सहायक समूह नेता अथवा कोषाध्यक्ष) बनने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

4.3.4.2.4 समूह की, अपने को बांधने के लिए, स्वयं अपनी कार्य-संचालन संहिता (समूह प्रबन्धन के प्रतिमान) होती है। नियमित बैठकों (साप्ताहिक अथवा पाक्षिक), लोकतांत्रिक तरीके से कार्य करने, विचारों के मुक्त आदान-प्रदान, निर्णय लेने की प्रक्रिया में सदस्यों द्वारा भाग लिए जाने से यह और सुदृढ़ हो जाती है।

4.3.4.2.5 समूह से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक बैठक के लिए कार्य-सूची तैयार करे और कार्य-सूची के अनुसार चर्चा करे।

4.3.4.2.6 सदस्यों के लिए यह जरूरी है कि वे नियमित बचतों के जरिए अपनी समग्र निधि का निर्माण करें। यह अपेक्षा की जाती है कि समूह की बैठकों में सभी सदस्यों से न्यूनतम स्वैच्छिक बचत एकत्र की जाएगी। इस प्रकार एकत्र की गई बचतें समूह की समग्र निधि होंगी।

4.3.4.2.7 समूह की समग्र निधि का उपयोग सदस्यों को ऋण देने के लिए किया जाता है, समूह ऋण मंजूर करने की प्रक्रिया, वापसी-अदायगी के कार्यक्रम और ब्याज की दरों के सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्ध के मानदंड विकसित करने का प्रयास करता है।

4.3.4.2.8 समूह की बैठकों में सदस्यों को निर्णय लेने की भागीदारिता वाली प्रक्रिया के जरिए ऋण सम्बन्धी सभी निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

4.3.4.2.9 समूह ऋण आवेदनों की प्राथमिकताएं निर्धारित करता है, वापसी-अदायगी के कार्यक्रम तय करता है, दिए गए ऋण के ब्याज की उपयुक्त दरें निर्धारित करता है और ऋणों लेने वालों द्वारा की जाने वाली वापसी-अदायगियों की प्राप्तियों पर ध्यानपूर्वक नजर रखता है।

4.3.4.2.10 समूह अपने सेवा क्षेत्र की बैंक शाखा में समूह का एक खाता रखता है, ताकि अपने सदस्यों को ऋणों के संवितरण करने के बाद समूह के पास जो राशि बच जाए, उसे उसमें जमा कराया जा सके।

4.3.4.2.11 समूह को सरल बुनियादी अभिलेख रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे कार्यवृत्त पुस्तिका, उपस्थिति रजिस्टर, ऋण खाता, सामान्य खाता, रोकड़-बही, बैंक पासबुक और वैयक्तिक पासबुक।

4.3.4.2.12 सरकारी अधिसूचना के अनुसार, प्रत्येक खंड में बनाए गए 50 प्रतिशत समूह महिलाओं के होने चाहिंए। अशक्त व्यक्तियों के मामले में, बनाए गए समूह आदर्श रूप से, जहां कहीं संभव हो, अशक्तता-सापेक्ष होने चाहिएं, किन्तु यदि अशक्तता-सापेक्ष समूह बनाने के लिए लोग पर्याप्त संख्या में उपलब्ध न हों, तो वह समूह विभिन्न अशक्तताओं वाले व्यक्तियों का हो सकता है अथवा उस समूह में गरीबी की रेखा से नीचे की श्रेणी के अशक्त और गैर-अशक्त दोनों प्रकार के व्यक्ति शामिल हो सकते हैं।

4.3.4.3 केरल में कुदुम्बश्री मिशन[16]

4.3.4.3.1 राज्य गरीबी उन्मूलन मिशन - कुदुम्बश्री - केरल की राज्य सरकार द्वारा 1998 में भारत सरकार और नाबार्ड की सक्रिय सहायता से शुरू किया गया था। इस मिशन का उद्देश्य स्थानीय स्वायत्त शासन के नेतृत्व में गरीबी का सम्पूर्ण उन्मूलन 10 बर्षों में करना था।

4.3.4.3.2 इस परियोजना को शुरू करने की अभिप्रेरणा अलप्पुझा और मालाप्पुरम जिलों में शहरी बुनियादी सेवा कार्यक्रम के जरिए गरीबी उपशमन की समुदाय आधारित कार्यपद्धति के सफल कार्यान्वयन से प्राप्त हुई थी। कुदुम्बश्री में इस बात पर बल दिया जाता है कि पोषाहार, गरीबी उपशमन, आर.सी.एच., अनु0जा0/अनु0ज0जा0 विकास, डी.पी.ई.पी. और एस.जी.एस.वाई से सम्बन्धित सभी विकास कार्यक्रमों का संचालन समुदाय आधारित संगठनों द्वारा पंचायती राज/स्थानीय शासन संस्थाओं की सहायता से किया जाना चाहिए।

4.3.4.3.3 तृणमूल स्तर के समुदाय आधारित संगठनों का विकास

4.3.4.3.3.1 महिलाओं को 20-40 महिलाओं वाले पड़ोसी समूहों (एन.एच.जी.) में संगठित किया जाता है, जिनमें पांच कार्यात्मक स्वयंसेवक होते हैं - सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवक, आय सृजन स्वयंसेवक, अवसंरचना स्वयंसेवक, सचिव और अध्यक्ष। इन समूहों का समन्वय वार्ड स्तर पर क्षेत्र विकास सोसाइटी के जरिए 8-10 पड़ोसी समूहों की फेडरेशन बना कर किया जाता है। पंचायत स्तर पर समन्वय करने वाली शीर्ष निकाय सामुदायिक विकास सोसाइटी होती है, जो पूर्त समितियां पंजीयन अधिनियम के अन्तर्गत एक पंजीयित निकाय होती हैं।

[16] www.kudumbashre.org

4.3.4.3.3.2 इस समूह की बैठक सप्ताह में एक बार समूह के किसी सदस्य के घर पर होती है। एन.एच. समूह की बैठकों में जो इच्छाएं और मांगें व्यक्त की जाती हैं, वे "माइक्रो योजनाएं" बन जाती हैं और क्षेत्र विकास सोसाइटी के स्तर पर उनकी संवीक्षा की जाती है और प्राथमिकतांए निर्धारित की जाती हैं और वे मिनी योजना बन जाती हैं। सामुदायिक विकास सोसाइटी (सी. डी.एस.) के स्तर पर विवेकपूर्ण प्राथमिकता-निर्धारण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 'सी.डी.एस." योजना अन्तिम रूप से तैयार हो जाती है। यह स्थानीय स्वायत्त शासन की "गरीबी-रोधी उप-योजना" होती है। माइक्रो, मिनी और सी.डी.एस. योजनाएं तैयार करने से गरीब लोग योजना की प्रक्रिया में भाग ले पाते हैं। स्थानीय निकाय इस योजना के समूचे कार्यान्वयन को मानीटर करता है।

4.3.4.3.4 कुदुम्बश्री में माइक्रो वित्त प्रचालन

4.3.4.3.4.1 गरीब लोगों को बचत करने और आसानी से ऋण प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए एन.एच.जी. स्तर पर मितव्ययता और ऋण समितियां बनाई जाती हैं। ये सुविधाएं धीरे-धीरे कुदुम्बश्री सदस्यों के लिए अनौपचारिक दहलीज बैंक (इन्फारमल डोरस्टेप बैंक) के रूप में विकसित हो गई हैं।

तालिका 4.9 : केरल में पड़ोसी समूह (एन.एच.जी.) और मितव्ययता और ऋण की स्थिति

क्रम सं.	जिला	ग्राम पंचायतों की संख्या	एन.एच.जी. की संख्या	ए.डी. की संख्या	कवर किए गए परिवार	बचत शुरू करने वाले परिवार	बचत	ऋण
1.	थिरूवनन्तपुरम्	78	16744	1259	344225	341807	956242072	2105278878
2.	कोल्लम	71	12163	1214	223550	223550	670675500	1488810077
3.	पथनमिथीटा	54	6447	730	136670	136405	327632000	603642523
4.	अलाप्पुझा	73	13245	1113	260592	260592	756129158	1724422132
5.	कोटटयम	75	10916	1153	220635	220609	534745569	1027567284
6.	इदूकी	52	9160	750	166607	166094	585814371	1464853768
7.	इरनोकुलम	88	12998	1352	217430	217421	642370775	2062614492
8.	त्रिशुर	92	15619	1350	283955	283955	866426339	3235712785
9.	पल्लकड	91	19848	1435	337539	337539	981074696	2627815553

10.	मलाप्पुरम	102	14249	1845	321957	321957	772699191	1215523897
11.	कोजीकोडी	78	14394	1309	296677	293924	1011138135	2535422917
12.	वायनाड	25	7316	434	120248	120248	318664638	1005784350
13.	कन्नूर	81	10973	1264	216275	216275	651397195	2166560511
14.	केसरगोडे	39	5561	646	118694	119118	346218198	1371418287
	कुल	999	169633	15854	3265054	3259494	9421227837	24635427454
15.	(58 यू एल बी)		13329	1096	347971	347971	555276879	639794031
16.	एन एच जी (9 Dist)		2347		40630	38266	57549343	122198761
			185309	16950	3653655	3645731	10034054059	25397420246

4.3.4.3.5 संयोजन बैंकिंग

4.3.4.3.5.1 वे समूह, जो ऋण प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व हैं, वे नाबार्ड के बैंक-संयोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत बैंकों से जुड़े हुए हैं।

तालिका 4.10 : केरल में नाबार्ड के संयोजन बैंकिंग कार्यक्रम के अन्तर्गत ऋण

क्रम सं.	जिले का नाम	ग्रेडबद्ध एन.एच.जी (संख्या)	संयोजित एन.एच.जी (संख्या)	संवितरित ऋण (लाख रुपए)
1	थिरूवनन्तपुरम्	13509	9874	3922.45
2	कोल्लम	9346	9318	7115.48
3	पथनमिथीटा	4405	2694	3796.56
4	अलाप्पुझा	10227	10160	5863.42
5	कोटटयम	4338	4062	2792.07
6	इदूकी	4680	4470	3241.78
7	इरनोकुलम	10272	8861	4331.64
8	त्रिशुर	8134	7546	4669.16
9	पल्लकड	14240	11621	5380.08
10	मलाप्पुरम	5174	4593	1859.84
11	कोजीकोडी	11666	6740	4680.35
12	वायनाड	6029	5429	4229.97
13	कन्नूर	8437	4551	1933.06
14	केसरगोडे	4304	3059	1590.86
	कुल	114761	92978	55406.71

4.3.4.3.6 माइक्रो उद्यम विकास

4.3.4.3.6.1 कुदुम्बश्री कार्यक्रम माइक्रो उद्यम विकास का कार्य करता है, जो गरीबी उन्मूलन के एक सशक्त उपकरण के रूप में महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बढ़ावा देता है। वैयक्तिक और सामूहिक दोनों प्रकार की पहलों को, जो महिलाओं की आजीविका की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आय सृजन करती हैं, बढ़ावा दिया जाता है। कैंटीनें/खान-पान यूनिट, आई.टी. यूनिट, समूह फार्मिंग, सौर ऊर्जा द्वारा सुखाए जाने वाले फलों के यूनिट, आदि उन माइक्रो-उद्यम यूनिटों के कुछ उदाहरण हैं, जो महिलाओं द्वारा शुरू किए गए हैं।

4.3.4.3.7 राजकीय शहरी विकास अभिकरण (एस.यू.डी.ए.) के रूप में कुदुम्बश्री

4.3.4.3.7.1 कुदुम्बश्री को राज्य में शहरी विकास परियोजनाओं के साथ भी सहयोजित किया गया है। स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (शहरी क्षेत्रों के लिए एक गरीबी-रोधी कार्यक्रम), राष्ट्रीय गन्दी बस्ती विकास कार्य (शहरी अवसंरचना विकास का एक कार्यक्रम) और वाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना (गन्दी बस्तियों में आवास विकास का एक कार्यक्रम) का कार्यान्वयन कुदुम्बश्री द्वारा किया जा रहा है और उसकी मानीटरन भी कुदुम्बश्री द्वारा की जा रही है।

4.3.4.3.8 जनजातीय क्षेत्रों में विशेष निवेश

4.3.4.3.8.1 कुदुम्बश्री ने 5 आदिम जनजातीय समूहों, अर्थात कासरगोड के कोरगा, वेनाड और मलप्पुरम के पनिया और कट्टुनैकम, त्रिचूर के कादर और अट्टापाडी-पालक्कड जिलों के कुरूम्बर समूहों में 2340 एन.एच. समूहों का गठन किया है।

4.3.4.3.9 महिला सशक्तीकरण - गरीबी घटाने का मार्ग

4.3.4.3.9.1 कुदुम्बश्री माडल में, महिला सशक्तीकरण को गरीबी घटाने के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के एक सामरिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। आय सृजन के विभिन्न क्रियाकलापों में सक्रिय रूप से शामिल होने के कारण महिलाओं ने, जिन्हें पहले मूक और शक्तिहीन समझा जाता था, अब अपनी बात जोर से कहना और अपनी स्वाभाविक शक्ति को व्यक्त करना शुरू कर दिया है और अपने मजबूत पक्ष, विकास के अवसरों और गरीबी उन्मूलन में अपनी भूमिका पर बल देना शुरू कर दिया है। यह सशक्तीकरण उनके बच्चों (विशेष रूप से कन्याओं), परिवार और अन्ततः समाज में भी अन्तरित हो रहा है।

4.3.5 स्व-सहायता समूहों के विकास में गैर-सरकारी पहलें

4.3.5.1 हालांकि देश में स्व-सहायता समूह आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सरकार के प्रयासों ने एक प्रमुख भूमिका अदा की है, किन्तु ऐसे बहुत अधिक स्वैच्छिक संगठन (गैर-सरकारी संगठन) हैं, जिन्होंने देश के विभिन्न भागों में स्व-सहायता समूहों को बचतें कराने और ऋण आयोजित करने में सहायता दी है और उनके कार्य को सुविधाजनक बनाया है। अहमदाबाद में "सेवा", कर्नाटक में एम.वाई.आर.ए.डी.ए., झारखंड में "ए.डी.आई.टी.एच.ई." कुछ ऐसी संस्थाओं के नाम हैं, जिन्होनें स्व-सहायता समूहों (अधिकांश: महिलाओं के समूहों) को स्थानीय कौशलों का उपयोग करके आय सृजन करने के क्रियाकलापों को हाथ में लेने के लिए बढ़ावा दिया है। इन स्वैच्छिक संगठनों ने गांवों के लोगों को ऐसे समूहों के रूप से संगठित करने से लेकर, जो सक्षम क्रियाकलाप हाथ में ले सकें, परियोजना तैयार करने और धनराशियां प्राप्त करने (स्वयं अपने अंशदान द्वारा अथवा किसी वित्तीय संस्था के साथ सम्बन्ध जोड़ कर) का कार्य किया है और इन कार्यों में पूरी तरह से शामिल रहे हैं और समर्पण की भावना से काम किया है। पी.आर.ए.डी.ए.एन.(प्रोफेशनल असिस्टेन्स फार डवेलपमेंट एक्शन), धान (डी.एच.ए.एन.) फाउंडेशन, ए.एस.एस.ई.एफ.ए. (एसोसिएशन आफ सर्व सेवा फार्म्स), एम.ए.एल.ए.आर. (महालिर एसोसिएशन फार लिटरेसी, अवेयरनेस ऐण्ड राइट्स), एस.के.एस., जनोदय, कोहेज़न फाउंडेशन और जन चेतना संस्थान कुछ ऐसी अन्य प्रमुख गैर-सरकारी संस्थाएं हैं, जो बहुत बड़ी संख्या में गरीब लोगों, अधिकांशत: महिलाओं के स्व-सहायता समूहों को ऐसे प्रभावकारी संगठन बनने के लिए बढ़ावा दे रही हैं और पोषण कर रही हैं, जो औपचारिक श्रोतों से ऋण प्राप्त कर सकें और उत्पादकता और आय बढ़ाने के लिए स्थानीय संसाधनों और कौशलों का विकास कर सकें। इस प्रकार, यह सरकार और इन गैर-सरकारी स्वैच्छिक अभिकरणों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम है कि स्व-सहायता समूहों ने ग्रामीण भारत के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में बहुत प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त कर लिया है।

4.4 अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव

4.4.1 एक प्रमुख माइक्रो-वित्त प्रयोग बंगलादेश में मोहम्मद यूनुस द्वारा 1974-76 में शुरू किया गया था, जब उन्होंनें चिटागांग के अड़ोस-पड़ोस के क्षेत्रों में गरीब लोगों के समूहों को ऋण देना शुरू किया था। यह ऐसा समय था, जब वह देश बहुत बड़े दुर्भिक्ष के चंगुल में फंसा हुआ था। उन्होंने महसूस किया कि गरीबी से निकलने का एकमात्र तरीका यह है कि मार्केट के मौजूदा प्रतिमानों से बाहर जाया जाए और गरीबों को बिना गांरटी वाले भाईचारा-आधारित ऋण दिए जाएं, जिनसे वे लाभकारी आर्थिक क्रियाकलाप विकसित कर सकें। 1976 में, बंगलादेशी बैंकों द्वारा बार-बार प्रतिरोध और इन्कार किए जाने के बाद, मुहम्मद यूनुस ने "ग्रामीण बैंक" की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की, जिसने 1983 में एक

स्वतंत्र बैंक की हैसियत प्राप्त कर ली। वर्ष 1994 तक, गरीब लोगों का यह बैंक बीस लाख लोगों को सीधे सेवा प्रदान कर रहा था। इस बैंक की स्वामी महिलाएं (94 प्रतिशत) थीं; जो पांच-पांच व्यक्तियों के भाईचारा-आधारित समूहों में संगठित थीं। अपेक्षाओं के विपरीत, ये समूह अपनी ऋण की किस्तें चुकाने में बहुत तत्पर थे। इस सफलता से ग्रामीण बैंक को अपने समूह ऋणदान कार्यक्रम का और आगे विस्तार करने और अपने क्रियाकलापों का अन्य क्षेत्रों में, जैसे स्कूलों और ग्रामीण आवासों के निर्माण के क्षेत्रों में फैलाने का प्रोत्साहन मिला[17]।

4.4.2 इस समय, ग्रामीण बैंक का बंगलादेश के 73,000 गांवों में फैले हुए लगभग 7.0 मिलियन गरीब लोगों के साथ, जिनमें 97 प्रतिशत महिलाएं हैं, ऋण का सम्बन्ध है। आय-सृजन की स्कीमों के लिए समपार्श्विक प्रतिभूति-मुक्त ऋण देना इस बैंक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य बना हुआ है। किन्तु, यह गरीब परिवारों को आवास, विद्यार्थी-ऋण और माइक्रो-उद्यम ऋण भी देता है। इसके अलावा, यह अपने सदस्यों को बहुत से आकर्षक बचत, पेंशन निधियां और बीमा उत्पाद भी प्रस्तुत करता है। 1984 से, आवास ऋणों का उपयोग 6,40,000 मकानों का निर्माण करने के लिए किया गया है, जहां उनका कानूनी स्वामित्व महिलाओं के पास है, जो उनके सशक्तीकरण तथा परिवार के बढ़े हुए लाभों की ओर एक बड़ा कदम है।

4.4.3 संचित रूप से, ऋणों का कुल संवितरण 6.0 बिलियन अमेरिकी डालर के बराबर है और वापसी-अदायगी की दर 99 प्रतिशत है। ग्रामीण बैंक लाभ अर्जित कर रहा है। वित्तीय रूप से, यह आत्म-निर्भर है और इसने 1995 से दाता-धन (डोनर मनी) नहीं लिया है। आज इसकी जमा और स्वयं इसके अपने संसाधन इसके सभी बकाया ऋणों के 143 प्रतिशत के बराबर हैं। बैंक के आन्तरिक सर्वेक्षण के अनुसार इसके 58 प्रतिशत कर्जदार गरीबी की रेखा को पार चुके हैं। बैंक ने एक विद्यार्थी ऋण कार्यक्रम भी शुरू किया है। इस समय, ऐसे 13,000 विद्यार्थी हैं, जिन्हें इस स्कीम के तहत वित्तपोषित किया गया है और हर वर्ष लगभग 7,000 और विद्यार्थियों को इनमें जोड़ा जा रहा है।

4.4.4 अब तक, लगभग 80 प्रतिशत गरीब परिवारों ने ग्रामीण बैंक से किसी न किसी रूप में माइक्रो-ऋण प्राप्त किया है और बैंक का कहना है कि 2010 तक इसकी व्याप्ति 100 प्रतिशत तक हो जाने की सम्भावना है।

4.4.5 ग्रामीण बैंक के प्रयासों ने महिलाओं की संगठनात्मक योग्यताओं और उनके सम्पूर्ण सशक्तीकरण के सम्बन्ध में देश में एक बहुत बड़ा बहुगुणक प्रभाव उत्पन्न किया है। इसने उन्हें परिसम्पत्तियां बनाने, परिवार की आय बढ़ाने और आर्थिक दबाब, हिंसा और शोषण के प्रति अपनी कमजोरी को घटाने में समर्थ बना दिया है।

[17] www.grameen-info.org

4.4.6 स्व-सहायता समूह कार्यक्रम की सफलता के परिणामस्वरूप महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य और पोषाहार की स्थिति में भी काफी सुधार हुआ है। दहेज, परिवार नियोजन, स्वास्थ्य की देखभाल, पोषाहार स्थिति, स्वच्छ पेयजल, सफाई और बाल शिक्षा जैसे मुद्दों के बारे में महिलाओं की जानकारी को अद्यतन बनाने के लिए, ग्रामीण बैंक देश के आन्तरिक क्षेत्रों में नियमित कार्यशालाएं आयोजित करता है। इन कार्यशालाओं ने ग्रामीण महिलाओं के रुख और व्यवहार को बदलने में सहायता दी है।

4.4.7 बंगलादेश के अलावा, बोलिविया, इंडोनेशिया और मेक्सिको कुछ ऐसे अन्य विकासशील देश हैं, जहां माइक्रो-वित्त संस्थाओं का एक परिपक्व क्षेत्रक है। इन सभी देशों में, माइक्रो-वित्त का प्रयोग गरीबों को वित्तीय सेवाएं मुहैया करने के समानार्थक शब्द के रूप में किया जाता है। लक्ष्य यह है कि गरीबों को वैसी ही वित्तीय सेवाएं प्रदान करके, जो मध्य वर्ग और उच्च मध्य वर्ग के लोगों को प्राप्त होती हैं, उन्हें अपने जीवन पर अधिक नियंत्रण पाने में सहायता दी जाए। इंडोनेशिया में, जहां बी.आर.आई. के ग्रामीण एककों (यूनिट देसा) के माध्यम से अनौपचारिक ग्रामीण बैंकिंग का एक लम्बा इतिहास है, माइक्रो-ऋण की परिभाषा के अन्तर्गत 50 मिलियन आर पी (लगभग 5500 अमेरिकी डालर) के सभी ऋण शामिल हैं, चाहे इन ऋणों के साथ कोई भी शर्त जुड़ी हुई हो। इस परिभाषा में इस प्रकार के ऋण भी शामिल हैं, जिन्हें आम तौर पर लधु और मध्यम उद्यम ऋण समझा जाता है। इसकी तुलना में, किसी बैंक-भिन्न माइक्रो वित्त संस्था से पहली बार लिए गए ऋण प्राय: 8,00,000 आर.पी. (90 अमेरिकी डालर) से कम राशि के होते है। बैंक रकयत ऐट इंडोनेशिया (बी.आर.आई.) 1970 के दशक से ग्रामीण ऋण दे रहा है। लेकिन ऋण की मंजूरी समुचित समपार्श्विक प्रतिभूति देने पर निर्भर करती है और यह बात वास्तव में, निर्धनतम लोगों को माइक्रो-वित्त की परिधि से बाहर कर देती है।

4.4.8 बोलिविया दक्षिण अमेरिका में माइक्रो वित्त आन्दोलन का एक नेता रहा है। वर्ष 2005 में, उनकी माइक्रो वित्त संस्थाओं के पास 544,544 ग्राहक थे और उनका पोर्टफोलियो 620,878,160 अमेरिकी डालर का था। इस देश में अनौपचारिक क्षेत्रक वहां के निर्धन लोगों (63 प्रतिशत) के रोजगार का प्रमुख श्रोत है, और उन लोगों के लिए माइक्रो ऋण संस्थाएं बहुमूल्य हैं। वहां की सरकार ने इस क्षेत्रक का विकास करने और उसे विनियमित करने के लिए वहां पर एक पर्याप्त रूप से शक्तिप्राप्त वित्तीय विनियामक प्राधिकरण की स्थापना कर रखी है, जिसका नाम "सुपरिन्टेंडेशिया डि बेंकोसी एंटीडेड्स फाइनेंसिएरर्ज" है। यह प्राधिकरण प्राइवेट वित्तीय निधियों, सहकारी समितियों, मुचुअल फंडों और बैंकों का, जो इस क्षेत्र में काम करते है, विनियमन करता है।

4.4.9 मेक्सिको में माइक्रो-वित्त ने बिल्कुल एक अलग माडल अपनाया हुआ है, जो ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बहुत क्षमता से कार्य करता है, जो समपार्श्विकों पर हठ नहीं करता, लेकिन ऊंची ब्याज दरों पर कार्य करता है। काम्पार्टेमोस का, जो उस देश की सबसे अधिक प्रतिष्ठित एम.एफ. संस्था है, उसी सामाजिक सरोकार से जन्म हुआ था, जिसने बंगला देश के मोहम्मद यूनुस को अभिप्रेरित किया था। यह समूह को ऋण देने के माडल का उपयोग करता है, जैसाकि ग्रामीण बैंक का माडल है। लेकिन यह इस सिद्धान्त में विश्वास करता है कि यह लाभ उठाकर , बहुत से गरीब लागों को उसकी तुलना में अधिक शीघ्रता से वित्तीय सेवाएं मुहैया कर सकेगा, यदि उसने एक पूर्त संस्था के रूप में काम करना जारी रखा होता। इसके परिणामस्वरूप, ऋण लेने वाले लोगों को माइक्रोवित्त सुविधा ब्याज की ऊंची दर (कम से कम 79 प्रतिशत प्रतिवर्ष) पर प्रदान की जाती है।

4.5 ग्रामीण जीवन पर प्रभाव

4.5.1 नाबार्ड द्वारा 11 राज्यों में स्थित बैंकों से संयोजित 223 स्व-सहायता समूहों के 560 सदस्यों को कवर करते हुए एक यादृच्छिक प्रभाव मूल्यांकन अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन के लिए एक तीन वर्ष की अवधि का चुनाव किया गया था। इस अध्ययन के परिणामों से, जा 2000[18] में जारी किए गए थे, यह पता चला था कि (क) स्व-सहायता समूहों के अन्तर्गत शामिल 58 प्रतिशत परिवारों ने परिसम्पत्तियों में वृद्धि होने की सूचना दी; (ख) प्रति परिवार सम्पत्ति का औसत मूल्य 6,843 रुपए से बढ़कर 11,793 रुपए हो गया, अर्थात उसमें 72 प्रतिशत वृद्धि हुई; (ग) पहले के 23 प्रतिशत की तुलना में अधिकतर सदस्यों में बचत करने की आदत विकसित हुई; (घ) बचतों में तीन गुना वृद्धि हुई और प्रति परिवार ऋण लेने में दो गुना वृद्धि हुई; (ङ) ऋणों में उपभोग ऋण का हिस्सा 50 प्रतिशत से घटकर 25 प्रतिशत हो गया; (च) स्व-सहायता समूह बनने के बाद की अवधि में लिए गए ऋणों के 70 प्रतिशत भाग का उपयोग आय-सृजन के उद्यमों के लिए किया गया; (छ) रोजगार में 18 प्रतिशत वृद्धि हुई; (ज) स्व-सहायता समूह में शामिल होने से पहले प्रति परिवार औसत निवल आय 20,177 रुपए थी, जो 33 प्रतिशत बढ़कर 26,889 रुपए हो गई; और (झ) जिन परिवारों का अध्ययन किया गया, उनमें से लगभग 41.5 प्रतिशत परिवार, स्व-सहायता समूहों में शामिल होने से पहले की अवधि में राज्य-सापेक्ष गरीबी की रेखा से नीचे थे; इनकी संख्या 22 प्रतिशत हो गई। समूहों के क्रियाकलापों में भाग लेने से, समूहों के सदस्यों के आत्मविश्वास में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि हुई। सामान्य रूप से समूह-सदस्य और विशेष रूप से महिलाएं समामजिक मुद्दों पर अधिक मुखर और अधिक दृढ़ता से अपनी बात कहने वाली हो गई।

4.5.2 स्व-सहायता समूह के ढांचे का उद्देश्य भागीदारों को धन की बचत करने, अतिरिक्त आय के सृजन के लिए एक सामान्य योजना तैयार करने और बैंक खाते खोलने में पारस्परिक सहायता देना है, जिससे

[18] पुहाजेंडी और सत्यसाई 2000

उन्हें ऋण देने वाली किसी संस्था के साथ ऋण सम्बन्ध विकसित करने में सहायता मिले। यह अन्ततः उन्हें लघु उद्यम स्थापित करने, अर्थात व्यक्तिगत व्यापारिक उद्यम, जैसे दर्जी की दुकान, किराने और औजार मरम्मत करने की दुकान खोलने में सहायता देता है। यह सुनिश्चित करके कि ऋण वापस चुकाए जाएं, यह समूह की उत्तरदायिता की संकल्पना को बढ़ावा देता है। यह समुदाय को एक ऐसा मंच उपलब्ध कराता है, जहां सदस्य परस्पर सरोकार के महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा कर सकते हैं और उन्हें सुलझा सकते हैं।

4.5.3 हालांकि कुछ स्व-सहायता समूह स्थानीय समुदायों द्वारा स्वयं शुरू किए गए हैं, लेकिन उनमें से बहुत से समूहों का निर्माण किसी परामर्शदाता निकाय (सरकार अथवा किसी गैर-सरकारी संगठन) की सहायता से अस्तित्व में आए हैं, जिन्होंने प्रारम्भिक सूचना और मार्गदर्शन प्रदान किया था। ऐसी सहायता में लोगों को यह प्रशिक्षण देना शामिल है कि बैंक खातों का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाए, स्थानीय बाजारों की छोटे व्यापार की संभावनाओं को किस प्रकार आंका जाए, और अपने कौशलों को किस प्रकार ऊंचा उठाया जाए। अन्त में, यह प्रशिक्षण संसाधन व्यक्तियों का एक स्थानीय दल तैयार करता है।

4.5.4 समूहों का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण सपुर्दगी का एक सुविधाजनक माध्यम बन जाता है। वाणिज्यिक बैंक और अन्य संस्थाएं, जो सीमान्त पर बैठे व्यक्तियों की मांगों के प्रति अन्यथा ग्रहणशील अथवा संवेदनशील नहीं होतीं, ऐसे समूहों पर अपने सम्भाव्य ग्राहकों के रूप में विचार करना शुरू कर देते हैं। कुल मिलाकर , ऐसे संयुक्त-देनदारी वाले समूह, बहिष्कृत भागों, अर्थात भूमिहीन लोंगों, बटाईदारों और सीमान्त किसानों, महिलाओं, अनु0जा0/अनु0ज0जा0 के व्यक्तियों, आदि तक पहुंच कर, माइक्रो-वित्त कार्यक्रम की पहुंच का प्रभावकारी रूप से विस्तार कर देते हैं।

4.5.5 अधिकतर स्व-सहायता समूहों में महिला सदस्यों की संख्या काफी अधिक होती है। इस देश में और अन्य स्थानों पर भी इस बात का साक्ष्य है कि स्व-सहायता समूहों के बनने से समाज में और परिवार में भी महिलाओं की स्थिति को सुधारने में बहुगुणक प्रभाव पड़ता है। माइक्रो-वित्त और उससे सम्बन्धित

बाक्स 4.4 : स्व–सहायता समूह और महिला सशक्तीकरण

वर्ष 2005 में, देश के महिलाओं के कुल स्व-सहायता समूहों में से 45 प्रतिशत समूह आन्ध्र प्रदेश में स्थित थे। वर्ष 2005 में इन स्व-सहायता समूहों की कुल परिक्रामी निधि अनुमानतः 2,000 करोड़ रुपए थी। स्व-सहायता समूहों के सदस्य ऐसे सामूहिक प्रयासों के जरिए अपने जीवन में और परिवार में अपनी स्थिति में बदलाव लाने के तरीके खोजते रहते हैं। स्व-सहायता समूह के अनुभव ने उन्हें स्वतंत्र बनना सिखा दिया है। इस सशक्तीकरण का एक सर्वाधिक दृश्य प्रभाव यह है कि अब महिलाएं अपने बच्चों को, मजदूरी कमाने का प्रशिक्षण देने की पहले की रीति के विपरीत, स्कूल में भेजने पर बल देती हैं।

उद्यमशीलता के क्रियाकलापों में उनके सक्रिय रूप से शामिल होने से न केवल उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, बल्कि उनके आत्म-सम्मान में भी वृद्धि होती है। किसी समूह में महिलाएं अपने सरोकारों को व्यक्त करने में अधिक मुखर हो जाती हैं और उनके आत्म-बोध में भी परिवर्तन आ जाता है। वे अपने आपको न केवल लाभभोगियों के रूप में, बल्कि बेहतर सेवाएं चाहने वाले ग्राहकों/जानकारी वाले नागरिकों के रूप में देखना शुरू कर देती हैं। घर के मोर्चे पर, उनमें नई उत्पन्न हुई जागरूकता और उद्यमशीलता के बारे में उनके कौशलों से उत्पन्न विश्वास उन्हें अपने पुरूषों की तुलना में अधिक आत्म-विश्वासी बना देता है।

4.5.6 स्व-सहायता समूह कार्यक्रम ने अनौपचारिक ऋणदाताओं अर्थात साहूकारों और अन्य गैर-संस्थात्मक श्रोतों पर निर्भरता को घटाने में योगदान दिया है।

4.5.7 इसने भाग लेने वाले परिवारों को ग्राहकों से भिन्न परिवारों की अपेक्षा शिक्षा पर अधिक खर्च करने में समर्थ बना दिया है। इस कार्यक्रम में भाग लेने वाले परिवारों ने स्कूलों में बेहतर उपस्थिति और बीच में पढ़ाई छोड़ देने की दर कम होने की सूचना दी है।

4.5.8 स्व-सहायता समूहों के जरिए प्राप्त वित्तीय समावेश ने बाल मृत्युदर में कमी की है, माताओं के स्वास्थ्य मे सुधार किया है और बेहतर पोषाहार, आवास और स्वास्थ्य के जरिए गरीब लोगों की रोगों, विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों के रोगों से लड़ने की क्षमता को बढ़ा दिया है।

4.5.9 लेकिन, स्व-सहायता समूह आन्दोलन में कुछ कमजोरियां भी हैं:

- स्व-सहायता समूहों के विकास की परिकल्पना के विपरीत, समूहों के सदस्य अनिवार्य रूप से अत्यन्त गरीब परिवारों से नहीं आते;
- स्व-सहायता समूह माडल ने निश्चित रूप से गरीबों का सशक्तीकरण किया है, लेकिन यह विवाद का विषय कि क्या उनसे प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभ उनके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त है;
- स्व-सहायता समूहों द्वारा हाथ में लिए जाने वाले बहुत से क्रियाकलाप अभी भी बहुत पुराने कौशलों पर आधारित हैं, जो अधिकांशत: प्राथमिक क्षेत्रक के उद्यमों से सम्बन्धित हैं। प्रति कामगार मूल्य-वर्धन बहुत कम होने से और केवल गुजारे भर की मजदूरी के स्तर के प्रचलन से, इन क्रियाकलापों से प्राय: समूहों के सदस्यों की आय में कोई ठोस वृद्धि नहीं होती;

- ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे योग्यताप्राप्त संसाधन व्यक्तियों का अभाव है, जो समूह-सदस्यों के कौशल को ऊंचा उठाने/उन्हें कौशल प्राप्त करने में सहायता दे सकते हैं।

4.6 स्व–सहायता समूह आन्दोलन के मुद्दे

4.6.1 यद्यपि स्व-सहायता समूह आन्दोलन ने पन्द्रह वर्षों की छोटी सी अवधि में असाधारण प्रगति की है (31.03.2007 को 29.24 लाख स्व-सहायता समूह कुल मिलाकर 180,407,42 मिलियन रुपए के ऋण के साथ काम कर रहे थे), लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है। यदि हम देश के केवल गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों (24.2 प्रतिशत - 26 करोड़) पर विचार करें, तो उपर्युक्त उपलब्धि बहुत कम प्रतीत होती है। यह आन्दोलन काफी अधिक क्षेत्रीय भिन्नताएं दर्शाता है। देश के बहुत से क्षेत्रों में पर्याप्त बैंकिंग ढांचा नहीं है। शहरी और अर्धशहरी, बहुत बड़ी हद तक, ऋण सपुर्दगी के इस मोड से बाहर हैं। इस आन्दोलन के और आगे विस्तार के लिए एक खतरा यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त कौशल नहीं है। और अन्त में, इस आन्दोलन की गति को तेज बनाए जाने की आवश्यकता है। आयोग ने इस आन्दोलन की शाक्तियों और कमजोरियों पर व्यापक रूप से विचार किया है और उसका विचार है कि इस क्षेत्रक के निम्नलिखित आठ मुद्दों की ओर प्राथमिक रूप से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है:

- भागीदारिता के स्वरूप को बनाए रखना
- बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान जैसे राज्यों और उत्तर पूर्व में (जहां स्व-सहायता आन्दोलन और माइक्रो-वित्त उद्यमशीलता कमजोर है) स्व-सहायता आन्दोलन का विस्तार करने की आवश्यकता
- लघु समूह संगठनों (स्व-सहायता समूहों) का विस्तार शहरों के बाहरी क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों तक करने की आवश्यकता
- स्व-सहायता समूहों का विकास और वित्तीय मध्यस्थता
- स्व-सहायता समूह और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
- संधारणीयता के मुद्दे
- एस.एच.पी. संस्थाओं और अन्य सहायता देने वाली संस्थाओं को वित्तीय सहायता
- माइक्रो-वित्त संस्थाओं की भूमिका

4.6.2 स्व-सहायता समूहों के भागीदारिता के स्वरूप को बनाए रखना

4.6.2.1 स्व-सहायता समूह की शक्ति प्राथमिक रूप से भाईचारा-आधारित भागीदारिता के स्वरूप में और बिना किसी विशेष बाहरी सहायता अथवा उलझाव के इसके जीवित रहने की क्षमता में निहित है। अपने अस्तित्व के प्रारम्भिक दौर में, सहकारिता आन्दोलन का आशय भी पणधारियों की भागीदारिता पर केन्द्रित था। सरकार और बैंकिंग संस्थाओं को एक प्रकार का उत्प्रेरक समझा जाता था, जो इस क्षेत्रक को समर्थन देगा। लेकिन धीरे-धीरे ये प्राथमिक संस्थाएं सहकारी बैंकों, शीर्ष यूनियनों और मार्केटिंग फेडरेशनों की अधीनस्थ बन गईं। इन बड़े संगठनों के पदाधिकारियों के चुनाव बड़ी टिकटों वाली घटनाएं बन गईं। जल्दी ही, सहकारी क्षेत्रक राजनैतिक महत्वाकांक्षा रखने वाले लोगों के लिए ऊपर उछलने का एक तख्ता बन गया। हालांकि स्व-सहायता समूह आन्दोलन अपेक्षाकृत एक नया आन्दोलन है, लेकिन सरकारी हस्तक्षेपों और सब्सिडियों ने पहले से नकारात्मक परिणाम दिखाने शुरू कर दिए हैं। सरकार और पंचायतों द्वारा स्व-सहायता समूहों को दिए जाने वाले संरक्षण और मुहैया की जाने वाली सब्सिडियों से प्राय: उनका राजनीतिकरण हो जाता है। इसलिए, यह सुनिश्चित करने का समुचित ध्यान रखा जाना चाहिए कि सरकारी पहलों से स्व-सहायता और गरीबों के सशक्तीकरण के मूलभूत सिद्धान्त क्षय न हो जाएं।

4.6.2.2 आयोग का विचार है कि हमें सहकारिता के क्षेत्रक के अनुभव से सीखने की आवश्यकता है। स्व-सहायता समूह आन्दोलन के परस्पर भागीदारितापूर्ण, भाईचारा-आधारित स्वरूप को बनाए रखने और उसकी रक्षा किए जाने की जरूरत है। स्व-सहायता समूह आन्दोलन को जन-आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और सरकार की भूमिका इस आन्दोलन का प्रत्यक्ष रूप से प्रबन्ध करने की अपेक्षा उसके लिए केवल एक सुविधाकारी और समर्थनकारी वातावरण उत्पन्न करने की होनी चाहिए।

4.6.3 स्व-सहायता समूह आन्दोलन का देश के ऋण की कमी वाले क्षेत्रों में विस्तार

4.6.3.1 जैसाकि पैरा 4.2.5 में पहले से चर्चा की जा चुकी है, कुल मिला कर 73 प्रतिशत किसान परिवारों (ग्रामीण क्षेत्रों में) की ऋण के औपचारिक श्रोत तक कोई पहुंच नहीं है। मार्च, 2001 में, देश के कुल संयोजित स्व-सहायता समूहों में से 71 प्रतिशत समूह दक्षिणी क्षेत्र के केवल चार राज्यों, अर्थात आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में थे। यह संख्या घट कर वर्ष 2005 में 58 प्रतिशत, 2006 में 54 प्रतिशत और 2007 में 44 प्रतिशत हो गई। किन्तु यह मौजूदा संख्या भी चिन्ता का विषय है, जब हम समूचे देश के लिए वित्तीय समावेश की बात करते हैं। जो राज्य इस सम्बन्ध में

विशेष रूप से पिछड़े हुए हैं, वे बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर-पूर्व के राज्य हैं। स्वयं नाबार्ड ने 13 ऐसे राज्यों की पहचान की है, जहां ग्रामीण जनसंख्या बहुत अधिक है, लेकिन माइक्रो-वित्त विकास और इक्विटी निधि का उपयोग करने के मामले में उनका कार्य-निष्पादन असन्तोषजनक है। इस समय, इस बैंक के 28 क्षेत्रीय कार्यालय हैं, जो राज्य मुख्यालयों में स्थित हैं, लेकिन जिला स्तर पर इसकी उपस्थिति टेढ़ी-मेढ़ी है, क्योंकि समूचे देश में इसकी केवल 391 शाखाएं हैं। मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और असम में इन कार्यालयों की सधनता अपर्याप्त है।

तालिका 4.11 : स्व-सहायता समूह आन्दोलन का देश के ऋण की कमी वाले क्षेत्रों में विस्तार

क्षेत्र/राज्य	वित्तपोषित एस एच जी की संख्या						
	मार्च 2001	मार्च 2002	मार्च 2003	मार्च 2004	मार्च 2005	मार्च 2006	मार्च 2007
एन ई क्षेत्र	477	1490	4069	12278	34238	62517	91734
के बी के क्षेत्र	4192	9869	18934	31372	45976	64550	N.A.
उड़ीसा	8888	20553	42272	77588	123256	180896	234451
पश्चिम बंगाल	8739	17143	32647	51685	92698	136251	181563
बिहार	4592	3957	8161	16246	28015	48138	72339
झारखंड	0*	4198	7765	12647	21531	28902	37317
उत्तर प्रदेश	23152	33114	53696	79210	119648	163439	198587
उत्तराखंड	0*	3323	5853	10908	14043	16060	21527
राजस्थान	5616	12564	22742	33846	60006	98171	137837
हिमाचल प्रदेश	2545	5069	8875	13228	17798	22920	27799
मध्य प्रदेश	5699	7981	15271	27095	45105	58912	70912
छत्तीसगढ़	0*	3763	6763	9796	18569	29504	41703
महाराष्ट्र	10468	19619	28065	38535	71146	131470	225856
गुजरात	4929	9496	13875	15974	24712	34160	43572
पूरे भारत	263825	461478	717360	1079091	1618456	2238565	2924973

के.बी.के.= कालाहांडी-बोलनगिर-कोरापुट *अलग राज्य में शामिल

श्रोत: नाबार्ड

4.6.3.2 वित्तीय सेवाओं की उपलब्धता ग्रामीण क्षेत्रों में, और विशेष रूप से सीमान्त गरीबों के लिए रोजगार, आर्थिक खुशहाली और सामाजिक सशक्तीकरण की एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। ऋण सपुर्दगी और सम्बन्धित सेवाओं तक उनकी पहुंच मोटे रूप से इन दो घटकों पर निर्भर करती है - (क) वित्तीय अवसंरचना की पहुंच और विस्तार, और (ख) सामाजिक संगठनों की मौजूदगी और सांस्कृतिक अभिवृत्तियां, जो अवसंरचना द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले लाभों को प्राप्त करने के लिए तैयार हों।

4.6.3.3 वित्तीय अवसंरचना का निर्माण किसी पिछड़े क्षेत्र में आर्थिक अवसरों के विस्तार की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है। किन्तु यह जरूरी है कि स्थानीय पणधारियों के सहकारी कार्य और सामाजिक संघटन द्वारा इसका मजबूती से समर्थन किया जाए। भारत में सहकारी कार्य, श्रम की अदला-बदली, ग्रामीण सिंचाई नेटवर्क और गांव की सांझी सम्पत्ति के भागीदारितापूर्ण प्रबन्ध पर आधारित आर्थिक प्रणालियों और परम्पराओं का एक समृद्ध इतिहास है। आयोग का मत है कि सामाजिक सहयोग के विस्तार को विकास की प्रक्रिया की मुख्य विशेषता समझा जाना चाहिए और इसलिए स्व-सहायता समूहों / संयुक्त-देनदारी वाले अन्य समूहों जैसे जन संगठनों को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

4.6.3.4 इस समय, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम ग्रामीण क्षेत्र में सरकार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण आजीविका कार्यक्रम है। इस स्कीम को गांवों में स्व-सहायता समूहों के गठन के जरिए अधिक प्रभावकारी तरीके से कार्यान्वित किया जा सकता है। काम के कार्ड (जाब कार्ड) बनाने की अवस्था से, गांव में स्कीम के चयन, उसके क्रियान्वयन, किसी डाकघर अथवा बैंक के माध्यम से श्रमिकों को मजदूरी की अदायगी तक, किसी निर्धारित समूह के सदस्य राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम की परियोजनाओं को कुशलता ओर जिम्मेदारी से कार्यान्वित करने का काम हाथ में ले सकते हैं। यदि जरूरी हो, तो स्थानीय स्व-सहायता समूह ऐसे कार्यक्रमों के प्रभाव को आंकने/ सामाजिक लेखापरीक्षा करने का काम भी कर सकते हैं। ऐसे स्थानीय स्व-सहायता समूहों को बागबानी और निर्धारित भूमि के विकास के कार्यक्रमों को हाथ में लेने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

4.6.3.5 आयोग का विचार है कि स्व-सहायता समूह आन्दोलन की रफ्तार को देश के ऋण की कमी वाले क्षेत्रों, जैसे मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और उत्तर-पूर्व के राज्यों में

तेज किए जाने की आवश्यकता है। यह कार्य केवल इन राज्यों में वित्तीय अवसंरचना (नाबार्ड की वित्तीय अवसंरचना सहित) का तेजी से विस्तार किए जाने से और व्यापक आई.ई.सी. अपनाने से और क्षमता निर्माण के उपाय करने से किया जा सकता है।

4.6.4 शहरी / शहरों के बाह्य क्षेत्रों में स्व-सहायता समूहों का विस्तार

4.6.4.12001 की जनगणना के अनुसार, 314.54 मिलियन लोगों ने देश में अपनी रिहायश के स्थान बदले (1991 की जनगणना की तुलना में), और इनमें से 29.90 मिलियन अथवा 9 प्रतिशत लोगों ने दूसरी जगहों पर बेहतर संभावनाओं की खोज में अपने रहने के स्थान बदले थे। इस प्रव्रजन को मोटे रूप से दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है: (i) गांवों से पड़ोस के मध्यम ग्रेड के कस्बों में जाना; और (ii) महानगरों में जाना। प्रथम श्रेणी, जिसे प्राय: अस्थाई प्रव्रजन कहा जाता है, अस्थाई आवाजाही के स्वरूप वाली होती है, जिसमें कामगार नए स्थान पर अल्प अवधियों के लिए समय-समय पर रहते हैं और अपने सहकर्मियों, सम्बन्धियों के जरिए अथवा स्वयं बार-बार जा कर अपने घर और गांव के साथ निकट सम्बन्ध बनाए रखते हैं। लेकिन जब वह किसी महानगर में चला जाता है, तो नए स्थान पर उसका ठहरना लम्बी अवधि के लिए होता है। इस श्रेणी के कामगार अधिकतर चालों और गन्दी बस्तियों में रहते हैं। चूंकि किसी प्रकार के पहचान-पत्र को जारी करना हमेशा किसी अचल सम्पत्ति के स्वामित्व से जुड़ा होता है, इसलिए ऐसे प्रवासी कामगारों के पास उस शहर में अपनी रिहायश को प्रमाणित करने के लिए कोई औपचारिक दस्तावेज नहीं होता । लेकिन शहर की समग्र आर्थिक और सामाजिक खुशहाली शहर में रहने वाले लोगों के इस भाग से बहुत निकटता से जुड़ी होती है।

4.6.4.2 एक उदाहरण के रूप में दिल्ली के मामले को लें, तो पता चलता है कि वर्ष 2006 में उस शहर की जनसंख्या में प्रव्रजन के कारण 2.33 लाख की वृद्धि हुई थी।

4.6.4.3 दिल्ली में प्रव्रजन के अनुमान जन्म और मृत्यु दरों पर और जनसंख्या में हुई कुल वृद्धि पर आधारित हैं। अनुमानों से यह प्रकट होता है कि प्रव्रजन की प्रतिशतता 2005 में 47.61 प्रतिशत थी, जबकि 2005 में प्राकृतिक संवृद्धि 52.39 प्रतिशत थी। निरपेक्ष रूप से, 2006 के दौरान जनसंख्या में 2.24 लाख की वृद्धि हुई, जबकि अनुमान लगाया गया है कि 2.33 लाख लोगों ने प्रव्रजन किया। 1991 से 2006 तक की प्रव्रजन की प्रवृत्तियां नीचे की तालिका में दर्शाई गई हैं:

तालिका 4.12 : जन्म और मृत्यु की दरों और जनसंख्या में हुई कुल वृद्धि के आधार पर दिल्ली में प्रव्रजन के अनुमान

वर्ष	01 जुलाई को जनसंख्या (लाख)	पिछले वर्ष की तुलना में जनसंख्या में वृद्धि (लाख)	कुल जन्म	कुल मृत्यु	प्राकृतिक वृद्धि (कालम 4–5)	बढ़ा हुआ प्रव्रजन (कालम 3–6)
1	2	3	4	5	6	7
1991	95.50	3.89	2.72	0.61	2.11	1.78
1992	99.37	3.87	2.74	0.62	2.12	1.75
1993	103.38	4.01	2.70	0.64	2.06	1.95
1994	107.50	4.12	2.62	0.68	1.94	2.18
1995	111.74	4.24	2.75	0.69	2.06	2.18
1996	116.10	4.36	2.83	0.76	2.07	2.29
1997	120.57	4.47	2.89	0.71	2.18	2.29
1998	125.14	4.57	2.84	0.80	2.04	2.52
1999	129.82	4.68	2.88	0.79	2.09	2.59
2000	134.60	4.78	3.17	0.80	2.37	2.41
2001	139.50	4.90	2.96	0.81	2.15	2.75
2002	143.83	4.33	3.01	0.86	2.15	2.18
2003	148.53	4.60	3.01	0.88	2.13	2.47
2004	152.79	4.36	3.06	0.85	2.21	2.15
2005	157.18	4.39	3.24	0.94	2.30	2.09
2006	161.75	4.57	3.23	0.99	2.24	2.33

श्रोत: दिल्ली सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2006-07

4.6.4.4 भारत के महापंजीयक द्वारा 2001 की जनगणना से प्रव्रजन के बारे में जो आंकड़े जारी किए गए हैं, उनसे पता चलता है कि दिल्ली की कुल जनसंख्या 138.50 लाख है और उसमें 82.04 लाख लोग दिल्ली के अन्दर के हैं और 53.18 लाख लोग विभिन्न राज्यों से आए प्रव्रजक हैं। विभिन्न राज्यों से हुए प्रव्रजन की प्रतिशतता की जानकारी तालिका 4.13 में दी गई है।

तालिका 4.13 : दिल्ली में प्रव्रजकों की रचना (2006–07)		
1.	उत्तर प्रदेश	43.56%
2.	हरियाणा	10.26%
3.	बिहार	13.87%
4.	राजस्थान	5.16%
5.	पंजाब	4.72%
6.	पश्चिम बंगाल	3.18%
7.	मध्य प्रदेश	1.85%
8.	अन्य राज्य	17.39%

श्रोत: दिल्ली सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2006-07

4.6.4.5 ऐसा प्रतीत होता है कि कोई दस्तावेज़ी प्रमाण न होने की स्थिति में, इस श्रेणी के लोगों की पहुंच संगठित वित्तीय सेवाओं तक नहीं है। मौजूदा सांविधिक उपबन्धों के अनुसार, नाबार्ड का आदेश यह है कि माइक्रो-वित्त सुविधाएं केवल ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों को मुहैया की जाएं। यद्यपि मुख्य धारा के बैंकों की शाखाएं जनशक्ति और प्रौद्योगिकी से सज्जित हैं, लेकिन वे शाखाएं भी इस क्षेत्र की सेवा करने के लिए उत्साही नहीं हैं। यहां तक कि साहूकार भी इन्हें ऋण देने में संकोच करते हैं। निवल परिणाम यह है कि शहरी लोगों का यह भाग, अर्थात पटड़ियों पर बैठ कर बिक्री करने वाले लोग, गलियों में फेरी लगा कर माल बेचने वाले लोग, इमारती कामगार, आदि वित्तीय रूप से बहिष्कृत बने रहते हैं। पड़ोसी बंगलादेश में, ग्रामीण बैंक शहरी और ग्रामीण ऋणकर्त्ताओं में कोई भेद नहीं करता। जब तक समूह गरीबी और महिलाओं की भागीदारिता के सम्बन्ध में बुनियादी शर्तें पूरी करने के लिए तैयार होते है, तो उन्हें उसके ऋण कार्यक्रम में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। लेटिन अमरीकी माडल में भी, माइक्रो-वित्तीय संस्थाएं विशुद्ध रूप से वाणिज्यिक बातों के आधार पर चलाई जाती हैं। यदि कोई समूह कतिपय शर्तों को पूरा करता है, तो वह ऋण के लिए हकदार बन जाता है।

4.6.4.6 इस मुद्दे पर डा0 सी. रंगराजन की अध्यक्षता वाली वित्तीय समावेश समिति द्वारा भी विचार किया गया था। आयोग का विचार है कि निरन्तर बढ़ते हुए शहरीकरण (2001 में 27.8 प्रतिशत और जिसके

2040 तक 50 प्रतिशत हो जाने की संभावना है) के मौजूदा परिदृश्य में, शहरों के सम्पूर्णतावादी विकास के लिए, शहरी गरीबों की आय का सृजन करने की क्षमताओं को बढ़ाने के लिए बहुमुखी प्रयास किए जाने चाहिएं। आयोग रंगराजन समिति की इस सिफारिश से सहमत है कि इस श्रेणी के लोगों को उसी पद्धति के अनुरूप, जो ग्रामीण गरीबों के मामले में अपनाई गई है, पड़ोस के समूहों के रूप में संगठित किए जाने की आवश्यकता है। नाबार्ड को इस क्षेत्रक में आवश्यक विशेषज्ञता प्राप्त है, इसलिए यह बहुत अच्छा होगा, यदि यह बैंक स्व-सहायता समूहों और शहरी क्षेत्रों/शहरों के बाह्य क्षेत्रों में माइक्रो-वित्त क्रियाकलापों को बढ़ावा देने की भूमिका निभाए। इसके लिए अधिनियम में संशोधन करने की आवश्यकता होगी, क्योंकि नाबार्ड का मौजूदा आदेश उसे केवल ग्रामीण अर्ध-शहरी क्षेत्रों में काम करने की अनुमति देता है।

4.6.5 स्व-सहायता समूहों के विकास और वित्तीय मध्यस्थता का तरीका (मोड)

4.6.5.1 किसी स्व-सहायता समूह और किसी स्थानीय वित्तीय संस्था के बीच स्थिर संयोजन स्थापित करना स्व-सहायता समूह आन्दोलन का एक मूल तत्व है। इस समय, देश के विभिन्न भागों में वित्तीय मध्यस्थता के चार विशिष्ट माडल काम कर रहे हैं; अर्थात:

1. स्व-सहायता समूह और बैंक के बीच संयोजन, जिसे किसी परामर्शदाता (मेंटर) संस्थान द्वारा बढ़ावा दिया गया हो;
2. स्व-सहायता समूह और बैंक के बीच सीधा संयोजन;
3. स्व-सहायता समूह और परामर्शदाता संस्थान के बीच संयोजन; और
4. स्व-सहायता समूह और फेडरेशन के बीच संयोजन

रेखाचित्र 4.1 : माडल 1: एस.एच.पी. के सक्रिय समर्थन से बैंक – स्व–सहायता समूह संयोजन

4.6.5.2 स्व-सहायता समूहों को ऋण की आवश्यकताओं के लिए बैंकों से जोड़ना वित्तीय मध्यस्थता का सर्वाधिक प्रभावकारी माडल है, जो किसी स्व-सहायता समूह को, जिसका संवर्धन तीसरे क्षेत्रक के किसी संगठन द्वारा अथवा किसी सरकारी अभिकरण द्वारा किया गया हो, किसी स्थानीय ग्रामीण/वाणिज्यिक बैंक से, कोई समपार्श्विक प्रतिभूति दिए बिना, ऋण अथवा नकद ऋण सीमा प्राप्त करने की - जो प्राय: उसकी अपनी बचतों के गुणकों में होता है - अनुमति देता है। स्व-सहायता समूह बैंक से जो राशि प्राप्त करता है, वह स्पष्ट रूप से तयशुदा शर्तों पर किसी सांझे रूप से निर्धारित और स्वीकृत लाभकारी प्रयोजन के लिए उसके सदस्यों को अन्तरित कर दी जाती है। बैंक-संयोजन माडल एक बचत-आधारित व्यवस्था है, जिसमें इस बात पर बल दिया जाता

बाक्स 4.5 : एस.एच.पी.आई. की भूमिका

आम तौर पर, स्व-सहायता संवर्धन संस्थान लोगों को किसी औपचारिक बचत और ऋण प्रबन्ध समूह (स्व-सहायता समूह) के रूप में गठित करने से पहले, भाग लेने वाले सदस्यों को प्रारम्भिक प्रशिक्षण और मार्गदर्शन प्रदान करता है। कु मामलों में, समूह के सदस्य आर्थिक रूप से इतने कमजोर होते हैं कि वे कोई क्रियाकलाप शुरू करने के लिए समूह की निधियों में प्रारम्भिक बीज राशि (सीड मनी) का योगदान भी नहीं कर सकते। ऐसे मामलों में, संवर्धन देने वाली संस्था को समूह को वित्तीय सहायता मुहैया करनी पड़ सकती है। एम.वाई.आर.ए.डी.ए. (क) निरन्तर मार्गदर्शन प्रदान करके, और (ख) 10 लाख रुपए की कारपस राशि में से, जो उसे नाबार्ड द्वारा एक प्रदर्शन परियोजना के अन्तर्गत दी गई थी, उन्हें सीड मनी देकर, 1989 में कर्नाटक के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक स्व-सहायता समूह स्थापित करने में बहुत प्रभावकारी रहा।

तालिका 4.14 : स्व-सहायता समूहों को उपलब्ध कराए गए ऋण की मात्रा

वर्ष	भारत (सीयूएम)		आन्ध्रप्रदेश	
	एसएचजी	राशि*	एसएचजी	राशि*
1992-1999	32,995	57	8,482	18
1999-2000	114,775	193	29,242	55
2000-2001	263,825	481	84,939	143
2001-2002	461478	1026	117352	267
2002-2003	717360	2049	165429	454
2003-2004	1079091	3900	231000	750
2004-2005	1618456	6800	261254	1018

4.8.2005 की स्थिति; राशि करोड़ रू॰

है कि इससे पहले कि समूह बाह्य ऋण के लिए हकदार बने, छः से बारह महीनों तक की न्यूनतम बचत जरूरी है। किसी स्व-सहायता समूह दिए जाने वाले ऋण की किस्त प्रारम्भ में समूह की बचत की तुलना में कम अनुपात से शुरू होती है और धीरे-धीरे बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच जाती है (एक उच्चतम सीमा के अध्यधीन, स्व-सहायता समूह की अपनी बचत की राशि की कई गुना राशि तक)। भारत में, ऋण अन्तर्क्रिया का यह रूप, जहां बैंक अलग-अलग स्व-सहायता समूहों के साथ सीधे व्यवहार करते हैं, एक सर्वाधिक सफल माडल रहा है।

4.6.5.3 अब तक, स्व-सहायता समूह - बैंक संयोजन माडल स्थानीय स्व-सहायता समूहों के लिए निधियां प्राप्त करने का एक तरजीही तरीका रहा है। लेकिन, इस चैनल से कुल प्राप्ति अपेक्षाकृत कम रही है, क्योंकि यह मूल रूप से स्व-सहायता समूह की अपनी बचतों की मात्रा से जुड़ा हुआ है। इसके अलावा, यह भी हो सकता है कि एक स्व-सहायता समूह, जिसके सदस्य अधिकांशतः गरीब और सीमान्तिक लोग होते हैं, वित्तीय और गैर-वित्तीय सेवाओं के लिए समुदाय की बहुत सी जरूरतों को संभालने वाला उपयुक्त अभिकरण न हो। कुछ मामलों में, आर्थिक संधारणीयता प्राप्त करने के उद्देश्य से, स्व-सहायता समूहों के झुंड एक फेडरेशन बनाने के लिए इकठ्ठे हो गए हैं। इससे उनके क्रियाकलापों का स्तर ऊंचा हो जाता है और इससे वे निधिपोषण संस्थाओं से अधिक संसाधन प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।

रेखाचित्र 4.2 : माडल II : बैंक – स्व–सहायता समूह के बीच सीधा संयोजन

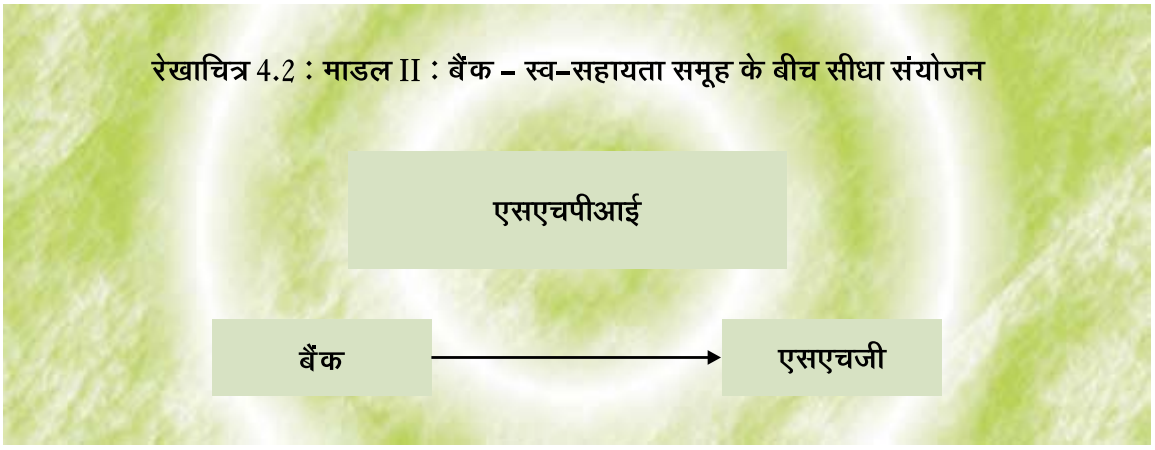

4.6.5.4 माडल I का एक थोड़ा-बहुत उपान्तरित रूप भी उपलब्ध है, जिसमें बैंक ऐसे स्व-सहायता समूहों को सीधे वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं, जो किसी संवर्धक संस्था की सहायता के बिना बड़े हो गए हैं। ऐसे स्व-सहायता समूह आम तौर पर कुछ सामान्य क्रियाकलापों के आधार पर बनाए जाते हैं। ऐसी वित्तीय मध्यस्थता के मामले निस्सन्देह रूप से अधिक सामान्य नहीं हैं।

रेखाचित्र 4.3 : माडल III : बैंक – एस.एच.पी.आई. – स्व–सहायता समूह संयोजन

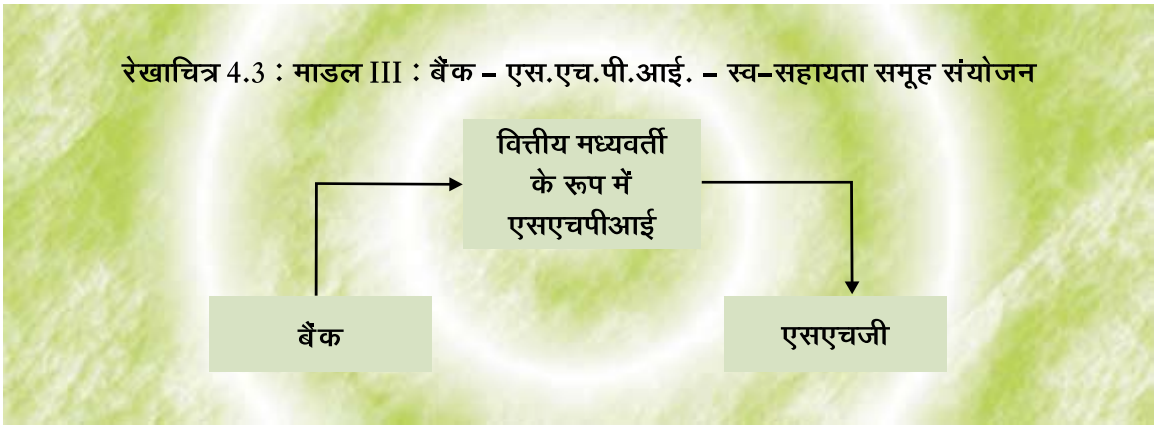

4.6.5.5 तीसरे माडल में, एस.एच.पी.आई., बैंक और स्व-सहायता समूह के बीच एक वित्तीय मध्यवर्ती की भूमिका निभाती है। आम तौर पर, एस.एच.पी.आई. (स्व-सहायता संवर्धक संस्था) केवल उन समूहों के सम्बन्ध में यह जिम्मेदारी लेती है, जिनका संवर्धन/पोषण उसके द्वारा किया गया हो, अन्य समूहों के बारे में नहीं। एस.एच.पी.आई., बैंक को ऋण चुकाने की संविदात्मक जिम्मेदारी स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में, यह स्व-सहायता समूह और बैंक के बीच अप्रत्यक्ष संयोजन का एक उदाहरण है।

रेखाचित्र 4.4 : माडल IV : बैंक – फेडरेशन – स्व–सहायता समूह संयोजन

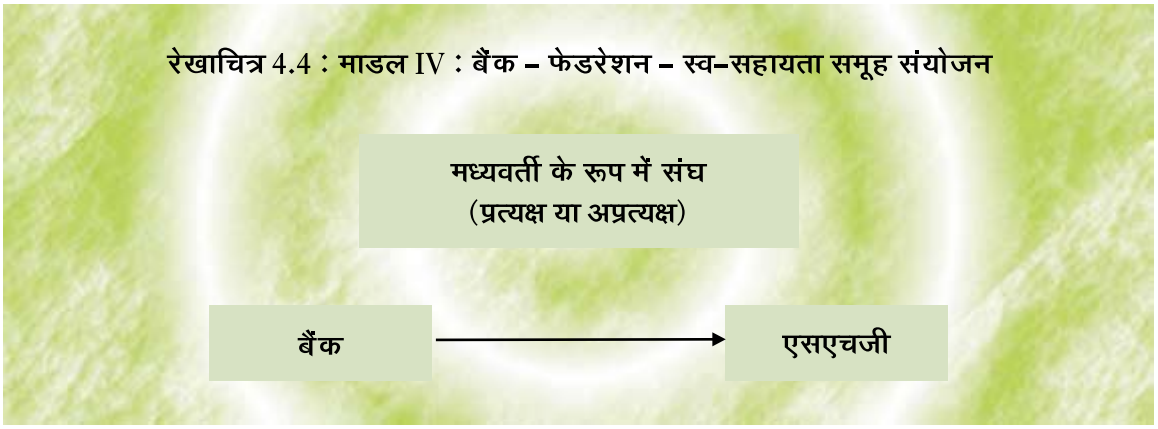

4.6.5.6 एक अन्य माडल भी है, जिसमें कोई फेडरेशन स्व-सहायता समूह को वित्तीय मध्यस्थता मुहैया करती है[19]। स्व-सहायता फेडरेशनों के कुछ माडलों की जांच से बहुत से नवाचारों का पता चलता है। इनमें मूल गैर-सरकारी संगठन - एम.एफ.आई. के साथ संयोजन, किसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनी का सामुदायिक स्वामित्व और स्व-सहायता समूहों को परस्पर-सहायता प्राप्त ऋण और बचत सहकारी समितियों के रूप में पुनर्गठित किया जाना शामिल है। कुछ फेडरेशनें अब इस स्थिति में हैं कि वे बड़ी मुचुअल फंड संस्थाओं से भी निधियां प्राप्त कर सकती हैं। लेकिन, इनमें से बहुत से नवाचार अकेली-

[19] सन्दर्भ : इंडिया ए.पी.आर.ए.सी.ए. - जी.टी.जेड वर्कशाप 1994, दि लिंकेज प्रोग्राम, वाई0सी0नन्दा

दुकेली पहले हैं, जिन्हें आसानी से लागू नहीं किया जा सकता, अथवा, जैसाकि परस्पर-सहायता प्राप्त सहकारी समितियों के मामले में है, वे विशिष्ट रूप से उस राज्य के लिए होते हैं, जहां ये शुरू किए गए हों।

4.6.5.7 जो एक अन्य माडल उभरा है, वह स्व-सहायता समूह - बैंक संयोजन संकल्पना और ऋण कार्यक्रमों का मिश्रण है, जिसमें ऋण सहायता समूह के अलग-अलग सदस्यों को दी जाती है, स्वयं समूह को नहीं। यह सीधे समूह की बचतों से भी सम्बन्धित नहीं होती। इन मामलों में, ऋण आम तौर पर आय-सृजन और निवेश के क्रियाकलापों के लिए दिए जाते हैं। स्व-सहायता समूह और एस.एच.पी.आई. बैंक को पहचान करने, ऋण आवेदन तैयार करने, मानीटरिंग और पर्यवक्षेण करने तथा ऋणों की वसूली करने में सहायता देते हैं।

4.6.5.8 चूंकि ऋण लेने वाले स्व-सहायता समूहों में मुख्य रूप से कम आय वाले सदस्य होते हैं; जो एक दिन की मजदूरी गंवाना भी सहन नहीं कर सकते, इसलिए किसी ऐसे बैंक के साथ, जो उपयुक्त ऋण उत्पादों के साथ उनके द्वार पर आने के लिए तैयार हो, झंझट-मुक्त लेनदेन का मूल्य उनके लिए बहुत अधिक है। आयोग का मत है कि स्व-सहायता समूह - बैंक संयोजन माडल, जिसका नियंत्रण परामर्शदाता एस.एच.पी.आई. के पास हो (उपर्युक्त माडल I), स्व-सहायता समूहों को वित्तीय सेवाएं प्रदान करने का सर्वाधिक उपयुक्त माडल होगा।

4.6.5.9 नवाचार : नवाचार वित्तीय समावेश के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ होगा, ऋणों, बचतों, बीमा सेवाओं, आदि के रूप में नए वित्तीय उत्पाद विकसित करना, जो गरीबों की जरूरतों के लिए तैयार किए गए हों। इस समय, सरकारी क्षेत्र के अधिकतर बैंक माइक्रो-वित्त संस्थाओं के पास प्रस्तुत किए जाने के लिए बहुत कम उत्पाद हैं, जो स्व-सहायता समूहों के विकल्पों को बहुत सीमित बना देते हैं और ऋणों को उत्पादकता के साथ इस्तेमाल करने में उनका मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं।

4.6.6 स्व-सहायता समूह और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

4.6.6.1 पहली अपैल, 2007 को, देश के कुल 622 जिलों में से 535 जिलों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक थे और शेष 87 जिलों में क्षेत्रीय ग्राम बैंकों का अस्तित्व नहीं था। इस समय, इन 535 जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में, कुल मिला कर, 14494 शाखाएं काम कर रही हैं। इन शाखाओं का सृजन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम, 1976 द्वारा मुख्य रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सीमान्त क्षेत्रक (छोटे, सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों और ग्रामीण दस्तकारों) को संस्थात्मक ऋण प्रदान करने के लिए किया गया है। आयोग का विचार है कि शेष 87 जिलों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विस्तार से समावेशी बैंकिंग की प्रक्रिया काफी तेज हो जाएगी और स्व-सहायता समूहों को माइक्रो-वित्त प्रदान करने में सहायता मिलेगी।

4.6.7. संधारणीयता, क्षमता निर्माण और प्रौद्योगिकी के उपयोग के मुद्दे

4.6.7.1 स्व-सहायता समूहों की संस्थात्मक संधारणीयता और उनके प्रचालनों की गुणवत्ता काफी अधिक वाद-विवाद के विषय हैं। सामान्य रूप से यह समझा जाता है कि बहुत कम स्व-सहायता समूह अपने आपको माइक्रो-वित्त के स्तर से ऊपर उठाकर माइक्रो-उद्यमशीलता के स्तर तक लाने में समर्थ हैं। और न ही ऐसे बैंक संयोजनों के कारण बैंक के सामान्य ऋणदान कार्यक्रमों के अन्तर्गत बहुत बड़े अलग-अलग ऋणों की मंजूरी मिलती है। इस प्रकार के संयोजन का अन्तिम लक्ष्य स्व-सहायता समूहों को वित्तीय शक्ति प्रदान करना है, ताकि वे किसी बाह्य सहायता के बिना स्थानीय वित्तीय संस्थाओं के साथ स्थिर सम्बन्ध स्थापित कर सकें। अपने बहुत वर्षों के अस्तित्व के बाद भी, कुल मिला कर, स्व-सहायता समूह अपने प्रवर्तक गैर-सरकारी संगठनों अथवा सरकारी अभिकरणों पर बहुत अधिक निर्भर होते हैं। उन क्षेत्रों से भी, जहां स्व-सहायता समूहों ने फेडरेशनें बना ली हैं, गैर-सरकारी संगठनों/सरकारी अभिकरणों के पीछे हट जाने से वे समूह प्राय: ढह जाते हैं। स्व-सहायता समूहों की फेडरेशनों का नेतृत्व और प्रबन्ध गैर-सरकारी संगठनों को हाथ में बना हुआ है।

4.6.7.2 छोटे समूहों/सदस्यों की क्षमता का निर्माण संगठनात्मक प्रभावकारिता का एक महत्वपूर्ण संघटक है। इसमें भागीदारिता प्रशिक्षण शामिल है, जिसमें स्व-सहायता समूह को बनाने, उसे सशक्त बनाने, लेखा-पुस्तकें रखने और वित्तीय प्रबन्धन की कुछ प्रारम्भिक तकनीकों जैसे मुद्दे शामिल होते हैं। सरकारी पदाधिकरियों और बैंक कार्मिकों की क्षमता का निर्माण उस साम्यिक त्रिकोणीय सम्बन्ध का एक आवश्यक तत्व है, जिसमें स्व-सहायता समूह, सरकारी पदाधिकारी और स्थानीय बैंक शामिल होते हैं और सरकारी पदाधिकारियों/बैंक कार्मिकों द्वारा प्राप्त किए गए प्रशिक्षण और स्थानीय संगठनों के प्रति उनके समग्र रवैए के बीच एक सकारात्मक सम्बन्ध होता है। आयोग का मत है कि ऐसे सहकारी/सामाजिक पूंजी उद्यमों की सफलता के लिए स्व-सहायता आन्दोलन के सभी तीनों स्तम्भों को विस्तृत प्रशिक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता है।

4.6.7.3 प्रौद्योगिकी का उपयोग: इस समय, सरकारी क्षेत्र के बहुत से बैंक और माइक्रो-वित्त संस्थाएं गरीबों को वित्तीय सेवाएं प्रदान करने की इच्छुक नहीं होतीं, क्योंकि सर्विसिंग की लागत बहुत ऊंची बनी हुई है। उपयुक्त प्रौद्योगिकी के उपयोग से इसे घटाया जा सकता है। आयोग का विचार है कि भारत में दूर-संचार कनेक्टिविटी के उच्च प्रवेश और उसके साथ अद्यतन मोबाइल प्रौद्योगिकी का उपयोग देश में वित्तीय समावेश को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

4.6.8 एस.एच.पी. संस्थाओं और अन्य समर्थक संस्थाओं को वित्तीय सहायता

4.6.8.1 देश में महिलाओं के कुल स्व-सहायता समूहों में से पैंतालीस प्रतिशत समूह आन्ध्र प्रदेश में हैं। राज्य की यह स्पृहणीय स्थिति प्राथमिक रूप से उन प्रवर्तक गैर-सरकारी संगठनों द्वारा की गई पहलों के

कारण है, जिन्हें प्राय: स्व-सहायता संवर्धक संस्थाओं/परामर्शदाता (मेंटर) संगठनों के रूप में जाना जाता है। आयोग का विचार है कि यदि स्व-सहायता आन्दोलन का प्रसार समूचे देश भर में किया जाना है, तो एस.एच.पी. संस्थाओं / प्रवर्तक गैर-सरकारी संगठनों को भारी प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है। इस समय, एस.एच.मी. संस्थाओं को वित्तीय सहायता नाबार्ड की माइक्रो वित्त विकास और इक्विटी निधि (एम.एफ.डी.ई.एफ.) से प्राप्त होती है। यह 1500 रुपए प्रति स्व-सहायता समूह की राशि तक सीमित है। अधिक से अधिक एस.एच.पी. संस्थाओं को ग्रामीण क्षेत्रों की ओर आकर्षित करने के लिए, सहायता की इस मात्रा को संशोधित किए जाने की आवश्यकता है।

4.6.9 माइक्रो वित्त संस्थाओं की भूमिका

4.6.9.1 जैसाकि पहले बताया गया है (क) मितव्ययता और बचतें आयोजित करना और (ख) उसे औपचारिक समपार्श्विक प्रतिभूतियों के बिना निधियां प्राप्त करने के योग्य बनाना स्व-सहायता समूहों के दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्रियाकलाप हैं। चूंकि बड़े वाणिज्यिक बैंक अपने जटिल प्रचालनात्मक ढांचे और प्रबन्धन सम्बन्धी अन्य प्रतिबन्धों के कारण आम तौर पर इस क्षेत्रक की आवयश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते, इसलिए हाल के वर्षों में देश के विभिन्न भागों में बहुत-सी माइक्रो वित्त संस्थाएं इस कमी को पूरा करने के लिए स्थापित की गई हैं। देश में माइक्रो-वित्त संस्थाओं के क्रियाकलापों से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों की जांच बगले पैराओं में की गई है।

4.6.9.2 माइक्रो-ऋण की परिभाषा ग्रामीण, अर्धशहरी और शहरी क्षेत्रों में गरीब लोगों को बहुत थोड़ी मात्रा में बचत, ऋण और अन्य सेवाएं (जैसे राशि जमा करना, ऋण, भुगतान सेवाएं, धन अंतरण, बीमा और अन्य उत्पाद) प्रदान करने के रूप में की गई है, ताकि वे लोग अपनी आय के स्तरों को ऊंचा उठा सकें और अपने रहन-सहन के स्तर में सुधार कर सकें। माइक्रो-वित्त संस्थाएं ऐसी संस्थाएं होती हैं, जो इस प्रकार की माइक्रो-वित्त सुविधाएं मुहैया करती हैं। वाणिज्यिक बैंको को छोड़कर, इस क्षेत्रक की जरूरतें निम्नलिखित चार प्रमुख खिलाड़ियों द्वारा पूरी की जा रही हैं:

(i) ग्रामीण बैंक

(ii) सहकारी समितियां

(iii) वे संस्थाएं, जो प्रचालनात्मक/वित्तीय संधारणीयता के बारे में माइक्रो-वित्त का कार्य हाथ में लेने के लिए समितियों, सार्वजनिक न्यासों और धारा 25 की कम्पनियों के रूप में पंजीयित की गई हैं

(iv) वैयक्तिक साहूकार

4.6.9.3 माइक्रो-वित्त सामाजिक और आर्थिक नीति दोनों का एक साधन है। यह सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया शुरू करता है, जैसे वित्तीय और तकनीकी संसाधनों का उपयोग, सुविधाहीन लोगों के लिए बुनियादी सेवाएं और प्रशिक्षण के अवसर। बचतों, ऋण, धन-अन्तरण, अदायगी और बीमा तक पहुंच गरीब लोगों को अपने वित्तीय जीवन का नियंत्रण करने में सहायता दे सकती है। यह उन्हें व्यापार में निवेश करने, बच्चों को स्कूल भेजने, परिवार के स्वास्थ्य की देखभाल में सुधार करने, प्रमुख सामाजिक दायित्वों को निभाने और अप्रत्याशित स्थितियों के बारे में नाजुक फैसले करने में भी सशक्त बनाती है। लेकिन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वित्त तक पहुंच उनके अन्दर आत्म-सम्मान पैदा करती है। भारतीय सन्दर्भ में, माइक्रो-ऋण की संकल्पना का मूल बहुत प्राचीन है, जो व्यापारियों और ऋणदाता साहूकारों द्वारा बहुत ऊंची ब्याज दरों पर गरीबों को ऋण देने के रूप में प्रचलित है। इसके परिणामस्वरूप ऋण लेने वालों को बहुत कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, जो प्राय: गैर-कानूनी कुरीतियों, जैसे बंधुआ मजदूरी का रूप ले लेती हैं। लेकिन, आधुनिक काल में, माइक्रो-ऋण का अर्थ गरीबों को युक्तिसंगत किन्तु संधारणीय ब्याज दरों पर ऋण देना है।

4.6.9.4 रघुराम राजन समिति ने, जिसकी स्थापना अगस्त 2007 में देश में वित्तीय क्षेत्रक के विकास की व्यापक कार्यसूची तैयार करने के लिए की गई थी, "वित्त तक पहुंच को व्यापक बनाने" के मुद्दे का गहराई से विश्लेषण किया है। इस सन्दर्भ में, उस समिति का एक सुझाव "बड़े बैंकों के नेतृत्व वाली, सरकारी क्षेत्रक के प्रभुत्व वाली, आदेशों के वशीभूत और शाखा-विस्तार में केन्द्रित कार्यनीति पर दिए जाने वाले बल में (माइक्रो बैंकों के पक्ष में) कुछ परिवर्तन" करना है। गरीब लोगों को कार्यकुशलता, नवाचार और धन के मूल्य की जरूरत है, जो अभिप्रेरित वित्तदाताओं से प्राप्त हो सकता है, जिनका ढांचा कम लागत वाला है और जो गरीबों को लाभदायक समझ सकते हैं। उनमें शीघ्रता से और न्यूनतम कागज़ी कार्रवाई के साथ निर्णय लेने की क्षमता भी है।

4.6.9.5 समिति ने सिफारिश की[20] "(क) अपेक्षाकृत अधिक ऊंचे पूंजी पर्याप्तता प्रतिमानों को जरूरी बनाकर भौगोलिक रूप से केन्द्रित होने के कारण अपने अधिक ऊंचें जोखिमों को प्रतिसन्तुलित करने वाले, सुचारू रूप से विनियमित, जमा राशियां लेने वाले छोटे प्राइवेट बैंकों के अधिक प्रवेश को अनुमति देना, सम्बन्धित पार्टी लेनदेनों पर कड़ा प्रतिबन्ध ओर कम अनुमत संकेन्द्रण प्रतिमान (पूंजी के हिस्से के रूप में ऋण, जो किसी एक पार्टी को दिया जा सकता है), और (ख) अधिक मानीटरन की व्यवस्था करने के लिए, जिसकी जरूरत इन बैंकों को प्रारम्भ में होगी, पर्यवेक्षण की क्षमता पैदा करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास करना, और (ग) कड़ी और तुरन्त सुधारात्मक कार्रवाई की व्यवस्था स्थापित करना, जो यह सुनिश्चित करे कि ये बैंक सार्वजनिक प्रभार न बन जाएं"।

[20] वित्तीय क्षेत्रक के सुधार के बारे में रघुराम राजन समिति की रिपोर्ट (अप्रैल 2008)

4.6.9.6 औपचारिक क्षेत्रक में माइक्रो–वित्त संस्थाएं

4.6.9.6.1 इस समय, माइक्रो-वित्तीय सेवाओं, जैसे बचतों को संभालने और समाज के आर्थिक रूप से सक्रिय और निम्न आय वाले वर्गों, विशेष रूप से महिलाओं, गरीब परिवारों और उनके माइक्रो उद्यमों को ऋण प्रदान करने के एक प्रमुख भाग को सामूहिक रूप से सरकारी क्षेत्रक की संस्थाओं, जैसे नाबार्ड, भारतीय लधु उद्योग विकास बैंक, राष्ट्रीय महिला कोष और वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाओं और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा संभाला जा रहा है।

4.6.9.7 माइक्रो-वित्त में प्राइवेट/गैर-सरकारी संगठनों की पहल

4.6.9.7.1 औपरचारिक क्षेत्रक के संगठनों के अलावा प्राइवेट/गैर-सरकारी संगठनों की पहल ने भी देश में माइक्रो-वित्त का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कुछ गैर-सरकारी संगठनों नें, जिन्होंने स्व-सहायता आन्दोलन के शुरू के वर्षों में स्व-सहायता समूहों का सक्रिय रूप से संवर्धन किया था, अपना प्रसार माइक्रो-ऋण देने के क्षेत्र में कर लिया है (जैसे गुजरात में "सेवा", झारखंड में "नवभारत जागृति केन्द्र" और उत्तर प्रदेश में "श्रमिक भारती")। इन संस्थाओं के दूसरे समूह में वे संस्थाएं शामिल हैं, जो अपने आपको विशुद्ध रूप से माइक्रो-वित्त संस्थाओं के रूप में पंजीयित कराकर इस क्षेत्र में बाद में (जब स्व-सहायता समूहों का अस्तित्व एक महत्वपूर्ण स्तर पर पहुंच चुका था) आई थीं, जैसे बन्धन, बी.ए.एस.आई.एक्स. और एस.के.एस.। वर्ष 2006 में, देश में 800 गैर-सरकारी संगठन माइक्रो-ऋण देने के कार्य में संलग्न थे, जिनकी पहुंच 7.3 मिलियन परिवारों[21] तक थी।

4.6.9.7.2 उनके रूप अलग-अलग हैं; इनमें से कुछ माइक्रो-वित्त संस्थाएं समितियों के रूप में पंजीयित हैं, कुछ न्यासों के रूप में और कुछ एन.बी.एफ.सी. के रूप में। कुछ ऐसी भी हैं, जो कम्पनी अधिनियम की धारा 25 के तहत पंजीयित कराई गई थीं।

4.6.9.7.3 पिछले वर्षों के दौरान, इन संस्थाओं ने संख्या के रूप में और अपने क्रियाकलापों के विस्तार के रूप में भी बहुत अधिक वृद्धि की है। फोर्ब्स सूची-2007 के अनुसार, जो सकल ऋण पोर्टफोलियो, प्रचालनों की दक्षता, अग्रिमों और इक्विटी तथा परिसम्पत्तियों के प्रतिलाभों की गुणवत्ता के सूचकांकों के आधार पर तैयार की गई थी, भारत की 7 माइक्रो-वित्त संस्थाएं विश्व की ऐसी 50 सर्वोच्च संस्थाओं की सूची में शामिल थीं। बंधन (संख्या 2 पर), माइक्रो-क्रेडिट फाउंडेशन आफ इंडिया (संख्या 13 पर), और साधना माइक्रो-वित्त सोसाइटी (संख्या 15 पर) का स्थान बंगलादेश ग्रामीण बैंक से ऊपर, जो 17वें स्थान पर है। अन्य महत्वपूर्ण माइक्रो-वित्त संस्थाएं, जो देश के विभिन्न भागों में लोगों को माइको-वित्त मुहैया कर रही हैं, ये हैं: आगा खां एजेन्सी फार माइक्रोफाइनेंस; एसोसिएशन फार सर्व सेवा फार्म्स;

[21]माइक्रो-वित्त क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 के बारे में आई.आर.एम.ए. द्वारा तैयार किया गया शोध-पत्र

एम.वाई.आर.ए.डी.ए., साधन - दि एसोसिएशन आफ कम्यूनिटी डवेलपमेंट फाइनेंस इन्स्टिट्यूशन्स; सेवा; एस.के.एस. माइक्रो-फाइनेंस (आन्ध्र प्रदेश); बी.ए.एस.आई.एक्स.; सम्पदा; स्त्रीधन; और वर्किंग वीमेन्स फोरम, मद्रास; स्पन्दन(आन्ध्र प्रदेश); फ्रेंड्स आफ वीमेन्स वर्ल्ड बैंकिंग; संघमित्र रूरल फाइनेंस सर्विसेज, और नवभारत जागृति केन्द्र। इसके अलावा, ए.पी.एम.ए.एस., मित्रभारती और दि इंडियन माइक्रोफाइनेंस इन्फार्मेशन हब जैसे संगठन हैं, जो इन माइक्रोवित्त संस्थाओं को मानव संसाधन विकास, गुणवत्ता मूल्यांकन/संवर्धन और अनुसन्धान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सहायता देते हैं। हालांकि भारत में माइक्रो-वित्त संस्थाएं बहुत बड़ी संख्या में लाभ-निरपेक्ष संगठनों के रूप में कार्य करती हैं, लेकिन बहुत से बड़े खिलाड़ी (एस.के.एस., बी.ए.एस.आई.एक्स., शेयर माइक्रोफिन, स्पन्दन) वित्तीय संधारणीयता के माडल के अनुसार काम करते हैं। इनमें से बहुत सी माइक्रो-वित्त संस्थाएं अपनी कार्यचालन पूंजी प्राइवेट इक्विटी से प्राप्त करती हैं, लेकिन कुछ संस्थाएं नई पीढ़ी के प्राइवेट बैंकों और उद्यम पूंजी निधियों के सहारे पनपती है। इस क्षेत्रक ने मोटे रूप से निम्नलिखित नौ मुद्दों की पहचान की है, जिनका सामना उसे अपने कार्यचालन के दौरान करना पड़ता है: (i) प्रचालनात्मक/वित्तीय संधारणीयता, (ii) मितव्ययता/बचत को संभालने पर प्रतिबन्ध, (iii) भली-भांति विकसित एम.आई.एस. का अभाव, मानव संसाधन क्षमता और उसे बनाए रखना, (iv) ऋणकर्त्ताओं के उत्पादों का विपणन, (v) अन्य गैर-सराकरी संगठनों और वित्तीय क्षेत्रक की संस्थाओं के साथ सम्बन्ध, (vi) भुगतान में चूक से निपटना, (vii) वाणिज्यिक बैंकों के साथ सम्बन्ध, (viii) पूंजी की प्राप्ति, और (ix) सरकार के साथ अन्तर्क्रिया। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि एक एकरूपात्मक विनियामक तंत्र स्थापित करने से इस क्षेत्रक में प्राइवेट पहल की और संवृद्धि और विकास करने में बहुत अधिक सहायता मिलेगी ।

4.6.9.8 माइक्रो–वित्त संस्थाएं और साहूकार अधिनियम

4.6.9.8.1 एक महत्वपूर्ण मुद्दा, जो बड़े तीव्र वाद-विवाद का विषय बन गया है, ब्याज की दरों और एम.एफ.आई. के वसूली के तरीकों के सम्बन्ध में है। इस समय देश में 22 ऐसे राज्य हैं, जहां साहूकार अधिनियम हैं। तमिलनाडु और कर्नाटक एक कदम और आगे बढ़े हैं और उन्होंने अत्यधिक ब्याज दरें वसूल करने का निषेध नाम का एक नया विधान बनाया है। बहुत से मामलों में, उन्होंने माइक्रो-वित्त संस्थाओं के क्रियाकलापों पर इन दो अधिनियमों के उपबन्धों को लागू किया है और उन्हें अपना कारबार बन्द करने के लिए मजबूर कर दिया है। हाल में, केरल सरकार ने यह घोषित किया था कि उन प्राइवेट बैंकों और संस्थाओं के साथ कड़ाई से निपटने के लिए, जो नियमों का उल्लंघन करते हुए कार्य करती हैं, कड़े उपबन्ध शामिल करने के लिए साहूकार अधिनियम को संशोधित किया जाएगा। केरल उच्च न्यायालय के इस निर्णय द्वारा इसका समर्थन किया गया है कि केरल साहूकार अधिनियम के उपबन्ध गैर-बैंकिंग वित्तीय

संस्थाओं पर लागू होंगें। इस निर्णय में यह भी निर्धारित किया गया था कि ब्याज की दर की अधिकतम सीमा 12 प्रतिशत निर्धारित करने वाली सरकारी अधिसूचना उन सभी प्रकार के ऋणों पर लागू होगी, जिनके लिए वाणिज्यिक बैंकों द्वारा लिए जाने वाले ब्याज की दर लगभग 10 प्रतिशत है। आन्ध्र प्रदेश में, माइक्रो-वित्त संस्थाओं की ज्यादितियों की जांच करने के लिए नियुक्त किए गए जांच आयोग ने भी ब्याज की दरों, ऋण की अवधि, वसूली की प्रक्रिया ओर जिला मेजिस्ट्रेट और पुलिस अधीक्षक द्वारा उनके क्रियाकलापों को मानीटर किए जाने के बारे में बहुत सी सिफारिशें दी थीं। विजयवाड़ा में एक माइक्रो-वित्त संस्था के खिलाफ आई.पी.सी. की धारा 384, 420 के अन्तर्गत और आन्ध्र प्रदेश साहूकार अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों का उल्लंघन किए जाने के बारे में मामले दर्ज किए गए थे। सम्बन्धित माइक्रो-वित्त संस्था द्वारा एक लेख्य याचिका के जरिए आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में इसे चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि राज्य सरकार ने इस मामले की जांच करने और आई.पी.सी. तथा साहूकार अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत आरोप-पत्र दायर करने का कार्य अपने अधिकारों के अन्तर्गत किया था।

बाक्स 4.6 : माइक्रो-वित्त संस्थाओं की ब्याज दरें और वसूली की रीतियां

वर्ष 2006 में प्राधिकारियों ने दो प्रमुख माइक्रो-वित्त संस्थाओं की कृष्णा जिले में लगभग 50 शाखाओं को इस आधार पर बन्द कर दिया था कि वे कुसीदात्मक ब्याज दरें वसूल कर रही थीं, गैर-कानूनी समपार्श्विक प्रतिभूतियों की मांग कर रही थीं और ऋण वसूली के बड़े निरंकुश/दबावकारी तरीके अपना रहीं थीं। इस मामले को माइक्रो-वित्त संस्थाओं द्वारा ब्याजदरों, बचतों, वसूली के तरीकों और मंजूरी देने की प्रक्रियाओं जैसे मुद्दों के बारे में स्वैच्छिक पारस्परिक आचार संहिता अपनाने के लिए सहमत होने के बाद ही तय किया जा सका था । माइक्रो-वित्त संस्थाओं ने उन ब्याज दरों (21 से 24 प्रतिशत) की एक निर्देशात्मक अनुसूची भी रिलीज की थी, जो ऋण लेने वालों से इन संगठनों के प्रचलित लागत ढांचे के आधार पर वसूल की जानी चाहिएं।

श्रोत : ई.पी.डब्ल्यू. मई 20-26, 2006 खंड XLI

4.6.9.8.2 आयोग का विचार है कि साहूकार अधिनियमों और बहुत ऊंची ब्याज दरें वसूल करने का निषेध करने वाले अधिनियमों की तुलना में, जैसेकि विभिन्न राज्यो में लागू हैं, माइक्रो-वित्त संस्थाओं के दायरे और उनके क्रियाकलापों को स्पष्ट किए जाने की आवश्यकता है। वर्ष 2006 में, भारतीय रिजर्व बैंक ने राज्यों के धन उधार देने सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करने के लिए एक कार्य-समूह गठित किया था। इस समूह ने अपनी रिपोर्ट जुलाई, 2007 में प्रस्तुत कर दी थी। इस समूह ने राज्यों के साहूकार अधिनियमों में काफी बड़े परिवर्तन करने के सुझाव दिए थे और एक माडल विधान का मसौदा तैयार किया था, जो राज्यो द्वारा अपने मौजूदा कानूनों के स्थान पर अधिनियमित किया जा सकता था। इसने सिफारिश की थी कि एन.बी.एफ.सी., पंजीयित पूर्त समितियों और लोक न्यासों के ऋणदान के लेनदेनों को राज्यों के

ऋणदान सम्बन्धी कानूनों के उपबन्धों से छूट दी जानी चाहिए। आयोग का विचार है कि माइक्रो-वित्त संस्थाओं और राज्यों के ऋणदान सम्बन्धी कानूनों के बीच के सम्बन्धों के मुद्दों की और आगे जांच किए जाने और सभी श्रेणियों की माइक्रो-वित्त संस्थाओं, समितियों, लोक न्यासों, सहकारी समितियों, धारा 25 की कम्पनियों और एन.बी.एफ.सी. को इन कानूनों के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखने की जरूरत है। आयोग का यह भी विचार है कि माइक्रो-वित्त संस्थाओं द्वारा वसूल किए जाने वाले ब्याज की दर के मुद्दे को उस विनियामक प्राधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए जिसे स्थापित करने का प्रस्ताव माइक्रो-वित्त क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 के अन्तर्गत है (पैरा 4.6.9.9)।

4.6.9.9 **माइक्रो–वित्त क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक**, 2007

4.6.9.9.1 इस समय, उनको छोड़कर, जो गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों (एन.बी.एफ.सी.) के रूप में पंजीयित हैं, माइक्रो-वित्त कम्पनियों के प्रमुख क्रियाकलाप किसी विनियम द्वारा कवर नहीं किए जा रहे हैं। इस क्षेत्रक का विनियमन करने के उद्देश्य से, केन्द्रीय सरकार ने 20 मार्च, 2007 को माइक्रो-वित्त क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 लोकसभा में प्रस्तुत किया था। प्रस्तावित विधान का उद्देश्य "विशेष रूप से महिलाओं और लोगों के कतिपय सुविधावंचित वर्गों के लिए एकीकृत वित्तीय सेवाओं की सर्वव्यापक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए एक समर्थकारी वातावरण की व्यवस्था करने के लिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में माइक्रो-वित्त क्षेत्रक के संवर्धन, विकास और सुनियोजित संवृद्धि की व्यवस्था करना और उसके द्वारा ऐसे क्षेत्रों की खुशहाली सुनिश्चित करना और माइक्रो-वित्त संस्थाओं का विनियमन करना, जो इस समय लागू किसी कानून द्वारा विनियमित नहीं की जा रही हैं और उनसे सम्बन्धित अथवा उनके अनुषंगी मामलों का विनियमन करना है"। इस विधेयक की मुख्य विशेषताएं ये हैं।

(क) यह राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) को इस क्षेत्रक के विकास और विनियमन के लिए जिम्मेदार अभिकरण निर्धारित करता है।

(ख) यह माइक्रो-वित्त क्षेत्रक की सुनियोजित संवृद्धि और विकास के हित में अपेक्षित नीतियां, स्कीमें और अन्य उपाय तैयार करने के बारे में नाबार्ड को परामर्श देने के लिए एक माइक्रो-वित्त परिषद गठित करना चाहता है।

(ग) इसमें माइक्रो वित्त के क्रियाकलापों में संलग्न विभिन्न सत्ताओं, जैसे राज्यों के अधिनियमों के अन्तर्गत पंजीयित सहकारी समितियों, पारस्परिक लाभ समितियों अथवा पारस्परिक सहायता प्राप्त समितियों अथवा बहु-राज्य सहकारी समितियां अधिनियम, 2002 के तहत पंजीयित बहु-राज्य सहकारी समितियों, समिति पंजीयन अधिनियम, 1860 अथवा ऐसी समितियों का

विनियमन करने वाले अन्य राज्य अधिनियमों के तहत पंजीयित समितियों और भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 के अन्तर्गत स्थापित न्यास अथवा किसी राज्य के अधिनियम के तहत पंजीयित लोक न्यास की परिभाषा दी गई है, जिनका विनियमन उस विनियामक ढांचे द्वारा किया जाएगा, जिसे स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है।

(घ) इसमें विभिन्न श्रेणियों के ग्राहकों, जैसे स्व-सहायता समूहों/संयुक्त देनदारी वाले समूहों की परिभाषा दी गई है, जो माइक्रो-वित्त सेवाओं से लाभ उठाएंगे।

(ङ) यह नाबार्ड द्वारा विहित उच्चतम सीमा के अध्यधीन, वित्तीय सेवाओं के रूप में पात्र ग्राहकों को माइक्रो वित्तीय सेवाएं प्रदान करना चाहता है।

(च) इसमें राष्ट्रीय बैंक द्वारा पंजीयित माइक्रो-वित्त संगठनों द्वारा उन शर्तों और निबन्धनों के अध्यधीन जो विहित की जाएं, पात्र ग्राहकों की किफायत, अर्थात बचतों को, जो चालू खाते अथवा मांग जमा खाते के रूप से भिन्न हो, स्वीकार किए जाने की व्यवस्था की गई है।

(छ) इसमें आरक्षित निधि को बनाने और माइक्रो-वित्त संगठनों को प्रस्तुत किए जाने वाले लेखे और नियतकालिक विवरणियां रखने की व्यवस्था की गई है।

(ज) इसमें माइक्रो-वित्त क्षेत्रक के विकास के लिए उपयोग किए जाने के लिए (संवर्धन के क्रियाकलापों, इक्विटी भागीदारिता अथवा ऋण देने के लिए) माइक्रो वित्त विकास और इक्विटी निधि बनाने का उपबन्ध है।

(झ) यह नाबार्ड को पात्र ग्राहकों और माइक्रो-वित्त संगठनों के बीच के विवादों को सुलझाने के लिए एक अथवा एक से अधिक माइक्रो-वित्त ओमबड्समैन नियुक्त करने की स्कीम तैयार करने की शक्ति प्रदान करता है।

(ञ) इसमें विधेयक की विनियामक आवश्यकताओं का पालन न करने के अपराधों और शास्तियों के बारे में व्यवस्था की गई है।

(ट) यह संघ सरकार को विधेयक के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए नियम विहित करने की शक्ति प्रदान करता है।

(ठ) यह नाबार्ड को विधेयक के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए संघ सरकार के पूर्वानुमोदन से विनियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

4.6.9.9.2 प्रस्तावित विधेयक ने पणधारियों और सिविल सोसाइटी संगठनों के बीच बड़ा भीषण विवाद उत्पन्न कर दिया है। विधेयक का प्रतिरोध निम्नलिखित तर्कों पर आधारित है:

(क) विधेयक का संवैधानिक औचित्य इस हद तक संदिग्ध हो सकता है कि किसी राज्य के अधिनियम द्वारा सृजित किसी सत्ता (समितियों, न्यासों और सहकारी समितियों) के उद्देश्यों और दायरे का विस्तार/की अवहेलना किसी केन्द्रीय विधान द्वारा नहीं किया जा सकता/नहीं की जा सकती।

(ख) कम्पनी अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत निर्मित समितियां, न्यास और कम्पनियां सिविल सोसाइटी की भाग हैं, जबकि कम्पनियां, सहकारी समितियां, भागीदारी फर्में, निधियां, आदि मार्केट की भाग हैं और इसलिए, माइक्रो-वित्तीय सेवाएं प्रदान करने के लिए संस्थाओं के इन दोनों सेटों को एक ही डलिया (बास्केट) में नहीं रखा जा सकता।

(ग) नाबार्ड को प्राथमिक विनियामक के रूप में नामित करना, प्राकृतिक न्याय, साम्या और स्वायत्तता के बुनियादी सिद्धान्तों के विरूद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि नाबार्ड स्वयं इस क्षेत्रक का एक प्रमुख खिलाड़ी है।

(घ) प्रस्तावित विधेयक में माइक्रो-वित्त सेवाओं, सेवा प्रदाताओं, सेवा प्राप्तिकर्त्ताओं, आदि की परिभाषा के बारे में कुछ अस्पष्टता है। इसे दूर किए जाने की आवश्यकता है।

(ड़) माइक्रो-वित्त संस्थाओं द्वारा वसूल किए जाने वाले ब्याज की दरों और शुल्क (फीस) के मुद्दे की ओर ध्यान न दिए जाने से, विधेयक समाज के सुविधावंचित वर्गों को वहनीय ऋण प्रदान करने के अभिप्रेत प्रयोजन को विफल बना देता है।

(च) यह विधेयक गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों और धारा 25 कम्पनियों को, जो इस क्षेत्रक में काम करती हैं, कवर नहीं करता। वे माइक्रो-वित्त मार्केट के एक काफी बड़े हिस्से को संभालती है।

4.6.9.9.3 "वित्तीय समावेश" सम्बन्धी रंगराजन समिति ने भी प्रस्तावित विधेयक की जांच की थी और निम्नलिखित सुझाव दिए थे:

(i) कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 25 के अन्तर्गत निर्मित कम्पनियों को इस विधेयक के सीमाक्षेत्र को अन्तर्गत लाए जाने की जरूरत है।

(ii) राज्यों के अधिनियमों और केन्द्रीय विधान के बीच नियंत्रण के दोहरेपन से बचने के लिए सहकारी समितियों को प्रस्तावित विधेयक के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिए।

4.6.9.9.4 सामाजिक पूंजी संस्थाओं के नए रूपों, जैसे स्व-सहायता समूहों/अन्य संयुक्त देनदारी संगठनों के उभरने से, ग्रामीण अर्थव्यवस्था में माइक्रो-वित्त संस्थाओं के लिए काफी बड़ा स्थान बन गया है। आयोग का विचार है कि देश में माइक्रो-वित्त क्षेत्रक के संवर्धन, विकास और सुव्यवस्थित संवृद्धि के लिए एक व्यापक विधान होने की आवश्यकता है। यह उन उत्पादों की व्यापक श्रृंखला को कवर करेगा, जिनकी आवश्यकता गरीबों को है, जैसे माइक्रो ऋण, बचतें, बीमा और धन-अन्तरण। आयोग ने प्रस्तावित विधेयक के बारे में विभिन्न पणधारियों के विचारों पर भी विचार किया है। यद्यपि आयोग इस सम्बन्ध में व्यक्त की गई कुछ चिन्ताओं से सहमत है, लेकिन उसका मत है कि चूंकि नाबार्ड पिछले 25 वर्षों से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और सहकारी बैंकों का पर्यवेक्षण करता आ रहा है और उसने माइक्रो-ऋण के विकास में पर्याप्त विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है, इसलिए उसे माइक्रो-वित्त संस्थाओं का पर्यवेक्षण और विनियमन करने का कार्य दिया जा सकता है, जैसाकि विधेयक में प्रस्तावित है। रंगराजन समिति द्वारा भी यह सिफारिश की गई है। आयोग ने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा है कि नाबार्ड प्राइमरी ऋणदाताओं को केवल पुनर्वित्त सुविधा मुहैया करता है और प्रत्यक्ष रूप से ऋण नहीं देता। यह मुख्य रूप से एक सुविधाप्रदाता है, सेवा-प्रदाता नहीं। नाबार्ड के पर्यवेक्षणकारी और विनियमनकारी कृत्यों के बीच टकराव की कोई गुंजाइश प्रतीत नहीं होती।

4.6.9.9.5 जहां तक माइक्रो-वित्त संस्थाओं को मितव्ययता/बचत और धन-अन्तरण को संभालने की छूट देने के प्रश्न का सम्बन्ध है, आयोग सावधानी के मार्ग को अपनाना पसन्द करेगा। चूंकि इसमें देश के निर्धनतम लोगों की कठिनाई से अर्जित बचतें शामिल होंगी, इसलिए आयोग का विचार है कि माइक्रो-वित्त संस्थाओं को अनुसूचित बैंकों के केवल व्यापारिक सहसम्बन्धियों (बिज़नेस कारसपौंडेंट) के रूप में बचतें स्वीकार करने की अनुमति दी जानी चाहिए, माइक्रो-वित्त ऋणदाता के रूप में अपनी वैयक्तिक हैसियत के रूप में नहीं। मानीटरन, लेखापरीक्षा और दंड के बारे में अन्य उपबन्ध, जैसे कि विधेयक में सुझाए गए हैं, बने रह सकते हैं।

इसलिए, माइक्रो वित्तीय क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 पर निम्नलिखित रूप से पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है:

(i) माइक्रो-वित्त सेवाओं की परिधि का काफी अधिक विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि उसमें ऋण/बचत, बीमा, पेंशन सेवाएं, धन अन्तरण, भांडागार रसीदों के निर्गम/डिस्काउंट और कृषि जिन्सों और वन उत्पादों के वायदे/विकल्प के संविदाओं को शामिल किया जा सके।

(ii) गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों को पहले से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विनियमित किया जाता है। लेकिन, कम्पनी अधिनियम की धारा 620 क के तहत पंजीयित निधियों, और उत्पादक कम्पनियों को भी नए विधान के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।

(iii) धारा 25 की कम्पनियों के क्रियाकलापों को भी, जहां तक उनका सम्बन्ध प्रस्तावित विधेयक में यथावर्णित माइक्रो-वित्तीय सेवाओं से हो, इस विधान के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लाए जाने की आवश्यकता है। लेकिन, उनके प्रबन्ध और अन्य कार्यों के मामले में, वे कम्पनी अधिनियम के उपबन्धों द्वारा नियंत्रित होती रहेंगी।

(iv) बचतें, सामान्य रूप से, आगे ऋण देने के लिए एक कम लागत वाला श्रोत है। लेकिन गरीब लोगों की बचतों की रक्षा करने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिएं कि यदि माइक्रो वित्त संस्थाओं को मितव्ययता/बचतें और धन अन्तरण सेवाएं संभालने की अनुमति दी जाए, तो वे अनुसूचित बैंकों की केवल व्यापारिक सह-सम्बन्धियों के रूप में यह कार्य करेंगी।

4.6.10 सिफारिशें

क) स्व–सहायता समूह आन्दोलन की संवृद्धि और विकास में सरकार की भूमिका एक सुविधाप्रदाता और प्रोत्साहक के रूप में होनी चाहिए। इसका उद्देश्य इस आन्दोलन के लिए समर्थनकारी वातावरण का निर्माण करना होना चाहिए।

ख) चूंकि देश के उत्तर–पूर्वी राज्यों और केन्द्रीय–पूर्वी भागों के राज्यो (बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान) में ऋण के औपचारिक श्रोतों तक पर्याप्त पहुंच नहीं है, इसलिए स्व–सहायता समूह आन्दोलन के विस्तार पर मुख्य जोर इन क्षेत्रों में दिया जाना चाहिए। इन स्थानों पर नाबार्ड की उपस्थिति बहुत अधिक सुस्पष्ट होनी चाहिए।

ग) स्व–सहायता समूह आन्दोलन का विस्तार शहरी और शहरों के बाहरी क्षेत्रों में किए जाने की आवश्यकता है। राज्य सरकारों, नाबार्ड और वाणिज्यिक बैंकों को आपस में मिल कर ऐसे क्षेत्रों के लिए संगत क्रियाकलापों और वित्तीय उत्पादों की निर्देशिका तैयार करनी चाहिए।

घ) इस समय, वाणिज्यिक बैंक, परियोजना की वित्तीय सक्षमता के आधार पर, शहरी और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में माइक्रो–ऋणों का संवितरण अपने आप कर सकते हैं। लेकिन ऐसे माइक्रो–

ऋण संवितरणों को नाबार्ड से पुनर्वित्त प्राप्त करने की हकदारी नहीं होती। यदि आवश्यक हो, तो शहरी/अर्ध–शहरी क्षेत्रों को नाबार्ड के पुनर्वित्त के अन्तर्गत लाने के लिए नाबार्ड अधिनियम, 1981 को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए।

ङ) स्व–सहायता समूह – बैंक संयोजन माडल को, जिसका नियंत्रण परामर्शदाता एस.एच.पी.आई. के हाथ में हो, देश भर में वित्तीय मध्यस्थता के तरजीही मोड के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

च) यह जरूरी है कि अनुसुचित बैंक और नाबार्ड राज्य सरकारों के सहयोजन से उन समूहों के लिए नए वित्तीय उत्पादों की खोज करते रहें और उन्हें तैयार करते रहें।

छ) देश के उन 87 जिलों में, जहां क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की उपस्थिति नहीं है, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के नेटवर्क स्थापित करने के लिए सुनियोजित प्रयास किया जाना चाहिए।

ज) सरकारी पदाधिकारियों के प्रशिक्षण/उनकी क्षमता के निर्माण के लिए विशेष कदम उठाए जाने चाहिएं, ताकि वे एक सकारात्मक रवैया विकसित करें और गरीब तथा सीमान्त पर बैठे लोगों के साथ सक्षम और जिम्मेदार ग्राहकों और भावी उद्यमकत्ताओं के रूप में व्यवहार करें।

झ) ग्रामीण ऋण को अक्सर एक सम्भाव्य गैर–निष्पादनकारी परिसम्पत्ति के रूप में देखा जाता है। सरकारी कर्मचारी और बैंकों के कार्मिकों को इस बारे में शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। देश के निर्धनतम लोगों तक पहुंचने की लागत को घटाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा सकता है।

ञ) नाबार्ड द्वारा एस.एच.पी. संस्थाओं को दिए जाने वाले संवर्धनात्मक अनुदान की मात्रा पर (जो इस समय निर्मित और सक्रिय बनाए गए प्रति स्व–सहायता समूह के लिए 1500/– रुपए है) पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है।

ट) राष्ट्रीय महिला कोष के प्रचालनों का विस्तार करने के लिए इसकी समग्र निधि (कारपस) को काफी अधिक बढ़ाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय महिला कोष की भौगोलिक पहुंच का विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि ऋण के आवेदनों को तेजी से प्रोसेस किया जा सके और दूर–दराज के क्षेत्रों में स्वीकृत परियोजनाओं का प्रभावकारी मानीटरन किया जा सके। कोष देश

के चुने हुए स्थानों पर अपने क्षेत्रीय कार्यालय खोल सकता है, जिनमें पर्याप्त स्टाफ हो, और ऋण की कमी वाले राज्यों की ओर अधिक ध्यान दे सकता है।

ठ) माइक्रो वित्तीय क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 को, निम्नलिखित सुझाव शामिल किए जाने के लिए, संशोधित करने की आवश्यकता है:

(i) माइक्रो–वित्तीय सेवाओं की परिधि का काफी अधिक विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि उसमें ऋण/बचत, बीमा, पेंशन सेवाएं, धन अन्तरण, भाडांगार रसीदों के निर्गम/डिस्काउंट और कृषि जिन्सों और वन उत्पादों के वायदे/विकल्प के संविदाओं को शामिल किया जा सके।

(ii) कम्पनी अधिनियम की धारा 620 क के अन्तर्गत पंजीयित "निधियों", और उत्पादक कम्पनियों को नए विधान के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।

(iii) धारा 25 की कम्पनियों के क्रियाकलापों को भी, जहां तक उनका सम्बन्ध प्रस्तावित विधेयक मं यथावर्णित माइक्रो–वित्तीय सेवाओं से हो, इस विधान के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। लेकिन, उनके प्रबन्ध और अन्य कार्यों में, वे कम्पनी अधिनियम के उपबन्धों द्वारा नियंत्रित होती रहेंगी।

(iv) माइक्रो वित्त संस्थाओं द्वारा लिए जाने वाले ब्याज की दरों के मुद्दे को उस विनियामक प्राधिकरण के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, जिसकी स्थापना प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत की जा रही है।

(v) यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यदि माइक्रो–वित्त संस्थाओं को मितव्ययता/बचतें और धन अन्तरण सेवाएं संभालने की अनुमति दी जाएगी, तो वे यह कार्य अनुसूचित बैंकों की केवल व्यापारिक सहसम्बन्धियों के रूप में करेंगी। अन्य सरोकारों पर, जिनका उल्लेख पैरा 4.6.9.9.2 में किया गया है, विचार किए जाने की आवश्यकता है।

ड) प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत शामिल की गई माइक्रो–वित्त संस्थाओं को राज्यों के साहूकारी सम्बन्धी कानूनों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिए।

5

स्व: विनियामक प्राधिकरण

5.1 प्रस्तावना

5.1.1 किसी व्यवसाय के स्व:विनियामक प्राधिकरण का अर्थ उसके सदस्यों के एक चयनित निकाय से है जो समाज और राज्य के प्रति अपने दायित्वों की पृष्ठभूमि में व्यवसाय के विकास और संवृद्धि के लिए जिम्मेदार है। ऐसे स्व: विनियामक निकाय के कार्यों में निम्नलिखित सम्मिलित हो सकते हैं (i) व्यावसायिक शिक्षा के मुद्दे: डिग्रियों की मान्यता आदि; और (ii) लाइसेंस पद्धति से संबंधित मामले तथा अभ्यासकर्ताओं का नैतिक आचरण।

5.1.2 वर्तमान में, भारत में कार्यरत छ: प्रमुख व्यावसायिक निकाय हैं जिनमें से प्रत्येक का गठन एक विशिष्ट कानून के तहत किया गया है।

बार काउन्सिल आफ इण्डिया (बी सी आई) - एडवोकेट्स एक्ट, 1961 के अधीन गठित

मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया (एम सी आई) - इण्डियन मेडिकल काउन्सिल एक्ट, 1956 के अधीन गठित

इन्स्टिट्यूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स आफ इण्डिया (आई सी ए आई) - चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स एक्ट, 1949 के अधीन गठित

इन्स्टिट्यूट आफ कास्ट एण्ड वर्क्स एकाउन्टेन्ट्स आफ इण्डिया (आई सी डब्ल्यु ए आई) - कोस्ट एण्ड वर्कस एकाउन्टेन्ट्स एक्ट, 1959 के अधीन गठित

इन्स्टिट्यूट आफ कम्पनी सेक्रेटरीज आफ इण्डिया (आई सी एस आई) - कम्पनी सेक्रेटरीज एक्ट, 1980 के अधीन गठित

काउन्सिल आफ आर्किटेक्चर (सी ओ ए) - आर्किटेक्ट्स एक्ट, 1972 के अधीन गठित

5.1.3 इनके अलावा इन्स्टिट्यूशन आफ इंजीनियर्स जैसे संगठन हैं जो व्यवसाय के संबंधित सदस्यों द्वारा विशुद्धत: स्वैच्छापूर्वक गठित किए गए हैं। उनकी कोई सांविधिक पृष्ठभूमि नहीं है।

5.1.4 उपरोक्त सभी व्यवसाय, समाज और देश की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं। वस्तुत: चिकित्सकों, वकीलों, चार्टर्ड लेखाकारों, इंजीनियरों व अन्य व्यावसायिकों की समाज में प्रति एक

लाख संख्या एक ऐसा सूचक है जिसके अनुसार किसी राष्ट्र की उन्नति की स्थिति मापी जा सकती है। एक अनुमान के अनुसार, देश में 2006 में पंजीकृत वकीलों की संख्या 8.47 लाख थी तथा डाक्टरों, इंजीनियरों, चार्टर्ड लेखाकारों, कम्पनी सेक्रेटरियों, कोस्ट लेखाकारों और वास्तुकारों की तदनुरूपी संख्या क्रमश: 6.59 लाख, 4.0 लाख, 1.30 लाख, 0.17 लाख, 0.13 लाख और 0.02 लाख [22] थी।

5.1.5 भारतीय संदर्भ में, व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्षेत्र को नियंत्रित करने और सदस्यों के आचरण और व्यवहार के संबंध में मानक निर्धारित करने के अलावा, इन स्व: विनियामक निकायों ने, नागरिकों के लिए महत्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने के लिए नीतियों और मानकों की अवधारणा, निर्माण और कार्यान्वयन में सरकार के लिए तकनीकी सलाहकारों के रूप में प्राय: महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। (उदाहरणार्थ स्वास्थ्य परिचर्या और न्याय प्रदान करने के संबंध में)

5.1.6 व्यावसायिकों और नागरिकों के बीच विश्वास

5.1.6.1 सामान्यत: एक व्यावसायिक और उसके ग्राहकों के बीच अगाढ भरोसे का संबंध होता है। व्यावसायिक अभ्यासकर्ता को किसी व्यक्ति के अधिकांश वैयक्तिक विवरण सुलभ होते हैं और इसलिए वह इस भरोसे को न्यायसंगत ठहराने के लिए लाभ व न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप कार्य करने के लिए बाध्य होता है। व्यावसायिकों द्वारा अभ्यास के उच्च स्तर बनाए रखने और व्यावसायिक नैतिक मूल्यों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने की जरूरत है। इस विश्वास में यह भी अन्तर्निहित है कि वे समय-समय पर अपनी जानकारी, निपुणता और योग्यता को अद्यतन बनाएं और जिससे कि अपनी सेवाएं दक्षता के साथ प्रदान कर सकें।

5.1.6.2 उत्साह और कल्पना के साथ गठित, विनियामक प्राधिकरणों ने अपने अस्तित्व के प्रारम्भिक वर्षों में बड़े जोश और रुचि के साथ काम किया। यद्यपि, आत्म-हित किसी न किसी रूप में उनका ध्येय रहा होगा तथापि, आजादी के प्रारम्भिक वर्षों में व्यावसायिक दक्षता आचरण का स्तर पर्याप्त रूप से उच्च था और कुल मिलाकर, मेडिकल व्यावसायिकों, इंजीनियरों, वकीलों व अन्यों ने बड़े दायित्व और व्यावसायिकता के साथ कार्य किया। किन्तु हाल ही के वर्षों में लगभग सभी व्यवसायों में आत्म-हित के प्रति झुकाव पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। सामान्य धारणा यह है कि स्व:विनियामक होने की बजाए, विनियामक निकाय "स्व: प्रोत्साहक लाबी बन गए हैं जो अपराधियों का बचाव करते हैं, की जाने वाली किसी भी कार्रवाई के खिलाफ आन्दोलन करते हैं, हड़तालें आयोजित करते हैं तथा स्तरों को बनाए रखने अथवा व्यावसायिक दुराचरण के खिलाफ शायद ही कोई कार्रवाई करते हैं।"

"वकील ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें कानून की अज्ञानता के लिए दण्ड नहीं दिया जाता"

जेरेमी बेनथम

[22] स्रोत: एन सी आई, बी सी आई आदि की वार्षिक रिपोर्टों व अन्य ोतों से संकलित

5.2 व्यावसायिक शिक्षा को स्व:विनियामक प्राधिकरणों से अलग करना

5.2.1 वर्तमान में, स्व: विनियामक प्राधिकरणों का एक प्रमुख कार्य व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध और उसे नियंत्रित करना है। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (एन के सी), जिसका गठन देश को एक ज्ञान सोसायटी के रूप में परिवर्तित करने के लिए एक योजना तैयार करने के उद्देश्य से, वर्ष 2005 में किया गया था, देश में उच्च शिक्षा के मुद्दों पर (अर्थात प्रबंधन, कानून और औषधि) ध्यान दे रहा है। इसकी एक प्रमुख सिफारिश यह है कि व्यावसायिक शिक्षा को इन विद्यमान विनियामक निकायों के कार्यक्षेत्र से अलग किया जाना चाहिए। एन के सी ने टिप्पणी की है कि:

> *"उच्च शिक्षा में वर्तमान विनियामक पद्धति अनेक दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण है। प्रवेश के लिए बाधाएं बहुत अधिक हैं। प्रवेश को प्राधिकृत करने की पद्धति बोझिल है तथा प्रवेश के पश्चात अत्यधिक नियम हैं, क्योंकि फीस से लेकर पाठ्यचर्या तक एक संस्थान का प्रत्येक पहलू नियंत्रित है। अन्य विनियामक, उदाहरणार्थ, व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में, प्राय: सिद्धान्तों के पालन में अननुरूप हैं। विद्यमान विनियामक संरचना उत्तम संस्थान पैदा करने में बाधक है, गलत जगहों पर विद्यमान संस्थानों को अत्यधिक विनियंत्रित करती है और उच्च शिक्षा में नूतनता अथवा सृजनात्मकता के लिए प्रेरक नहीं है। इसलिए चुनौती एक ऐसी विनियामक पद्धति तैयार करने की है जिससे उत्तम संस्थानों की स्थापना में वृद्धि हो और जिससे इन संस्थानों में जवाबदेही को बढ़ावा मिले। एक स्वतन्त्र विनियामक ऐसी पद्धति का आधार हो सकता है। कुल मिलाकर पद्धति अत्यधिक विनियंत्रित और अल्प-शासित हैं। "*

5.2.2 इस क्रम में, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने उच्च शिक्षा के लिए एक स्वतन्त्र विनियामक प्राधिकरण (आई आर ए एच ई) की स्थापना की सिफारिश की है। आई आर ए एच ई सरकार के नियंत्रण से दूर रहे तथा सभी पणधारियों से आजाद रहे, जिनमें सरकार के संबंधित मंत्रालय भी शामिल हैं।

- आई आर ए एच ई की स्थापना संसद के एक अधिनियम के तहत की जानी चाहिए और यह मापदण्ड निर्धारित करने व प्रवेश के संबंध में निर्णय लेने के लिए उत्तरदायी हो।
- यही एकमात्र एजेन्सी होगी जो उच्च शिक्षा संस्थानों को डिग्री प्रदान करने की शक्ति प्रदान करने के लिए प्राधिकृत होगी।
- यह मानकों का मानीटरन करने और विवादों का निपटारा करने के लिए जिम्मेदार होगी।
- यह सरकारी तथा निजी दोनों प्रकार के संस्थानों पर एक जैसे मानदण्ड लागू करेगी जैसाकि वह घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों के लिए लागू करेगी।
- यह प्रत्यायन एजेन्सियों को लाइसेंस प्रदान करने वाला एक प्राधिकरण होगा।

5.2.3 प्रस्तावित नए परिवेश में, वि. अ. आ. की भूमिका को फिर से परिभाषित करने की जरूरत होगी जिससे कि यह (क) अनुदानों के संवितरण और (ख) सरकारी संस्थानों के अनुरक्षण तक सीमित रहे। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (ए आई सी टी ई) को समाप्त करना होगा तथा मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया (एम सी आई) और बार काउन्सिल आफ इण्डिया (बी सी आई) के कार्य व्यावसायिक एसोसिएशनों के रूप में उनकी भूमिका तक सीमित रहेंगे। विभिन्न क्षेत्रों में उपरोक्त कार्यों की देखभाल करने के लिए आई आर ए एच ई की पद्धति के अन्तर्गत पृथक स्थायी समितियों की स्थापना की जाएगी।

5.2.4 विधि शिक्षा के विषय पर भारत के विधि आयोग द्वारा " विधि शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण और अधिवक्ता अधिनियम 1961 और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956, दिसम्बर 2002 में संशोधनों के लिए प्रस्तावों पर " अपनी 184वीं रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई थी। विधि आयोग ने, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (ए आई सी टी ई) के नमूने पर अखिल भारतीय विधि शिक्षा परिषद गठित करने के सुझाव पर चर्चा की थी। नई व्यवस्था के अन्तर्गत बी सी आई केवल व्यवसाय में प्रवेश को विनियंत्रित करने और स्तरों के अनुरक्षण के लिए जिम्मेदार होगी।

5.2.5 अधिवक्ता अधिनियम 1961 की धारा 7(1) (ज) के अनुसार बार काउन्सिल, विश्वविद्यालयों के परामर्श से देश में विधि शिक्षा के स्तर निर्धारित करने में समर्थ है। विधि आयोग का मत था कि सामान्यत: विधि शिक्षा के स्तरों के मामले में वि. अ. आ. अथवा विश्वविद्यालयों को प्राथमिकता प्राप्त है किन्तु जो व्यक्ति न्यायालयों में प्रेक्टिस करेंगे, उनके लिए विधि शिक्षा के स्तरों के मामले में बार और न्यायपालिका की प्राथमिकता अविवादित है। आयोग ने भी ऐसा ही दृष्टिकोण कोट किया जो श्री एम.सी. सीतलवाड द्वारा विधि आयोग (1958) की 14वीं रिपोर्ट में प्रस्तुत किया गया था। यदि विधि शिक्षा को पूर्णत: बी सी आई के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाए तो यह विधि शिक्षा का ऐसा कोई निश्चित पाठ्यक्रम निर्धारित करने मे समर्थ नहीं होगी जिससे बार की जरूरतें पूरी हो सकें।

> *" हमने पहले ही देखा है कि किस प्रकार इंगलेण्ड में व्यावसायिक विधि शिक्षा और इस पेशे के लिए प्रवेश एक निकाय द्वारा नियंत्रित होते हैं जिसमें मात्र रूप से व्यावसायिक व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि क्यों ऐसा ही नियंत्रण और विनियमन भारत में व्यवसाय में विहित नहीं किया जाए। न्यूनतम स्तर सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, व्यावसायिक प्रशिक्षण को विनियंत्रित करने वाले निकायों और विश्वविद्यालयों के बीच समन्वय ऊपर बताए गए ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। हमारे विचार में अखिल भारतीय बार परिषद की विधि शिक्षा समिति को,*

विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रदान की जाने वाली विधि शिक्षा के स्तरों पर, दौरों और निरीक्षणों के जरिए नजर रखने का अधिकार प्रदान किया जा सकता है जैसाकि मेडिकल और डेन्टल व्यवसाय के बारे में है अथवा जैसाकि अमरीकी विधि स्कूलों के मामले में अमेरिकन बार एसोसिएशन द्वारा किया जाता है। यदि काउन्सिल अथवा इसकी समिति की यह राय हो कि विधि शिक्षा में किसी विश्वविद्यालय विशेष द्वारा निर्धारित स्तर पर्याप्त नहीं हैं अथवा कि उसके द्वारा स्थापित अथवा विधि शिक्षा प्रदान करने के लिए उससे सम्बद्ध सुसज्जित अथवा उपयुक्त रूप से संचालित नहीं है तो संस्थान इस विश्वविद्यालय के स्नातकों को व्यावसायिक परीक्षा में प्रवेश देना अस्वीकार कर सकती है जब तक कि विश्वविद्यालय द्वारा न्यूनतम स्तरों तक पहुंचने के लिए उपाय न किए जाएं। "

- श्री एम.सी. सीतलवाड की अध्यक्षता वाले विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट

5.2.6 राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों के पीछे मुख्य दलील यह है कि वर्तमान युग में किसी विषय विशेष की पाठ्यचर्या केवल व्यवसाय के पारम्परिक क्षेत्रक की पूर्ति नहीं करती बल्कि अन्य दक्षता वाले क्षेत्रों की भी पूर्ति करती है। उदाहरण के लिए हमारे विधि कालेज/संस्थान छात्रों को केवल बार अथवा न्यायपालिका में आजीविका के लिए तैयार नहीं करते। पाठ्यचर्या के अन्तर्गत उन्हें अन्य समान रूप से महत्वपूर्ण कार्यों के लिए भी प्रशिक्षित किया जाता है जैसे कि नीति निर्माता, व्यवसाय सलाहकार, शिक्षाविद, कार्यकर्ता और सरकारी अधिकारीगण। व्यापार और वाणिज्य में विस्तार होने से और वैश्विक एकीकरण के परिणामी परिवेश के फलस्वरूप अनेक जटिल वाणिज्यिक मुद्दे सामने आए हैं जिनके लिए उच्चतम कोटि की योग्यता और ज्ञान की जरूरत है।

5.2.7 वर्तमान में विधि और प्रेक्टिस के कुल मिलाकर कार्यक्षेत्र के लिए गहन शैक्षिक अनुसंधान और जाँच पड़ताल की जरूरत है।

5.2.8 मेडिकल शिक्षा भी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अनुसंधान और ज्ञान के स्तर एक उच्च स्तर पर पहुँच गए हैं। पाठ्यचर्या तैयार करना, स्तर निर्धारित करना तथा अनुसंधान का प्रबंध करना उच्च वैज्ञानिक अध्ययन का एक विषय बन गया है जिसका प्रबंधन केवल उत्कृष्ट लोगों द्वारा ही किया जा सकता है। चुनावों की वर्तमान प्रणाली व्यावसायिक निकायों में उच्च कोटि के व्यक्तियों के प्रवेश को हतोत्साहित करती है। इस दलील में एक मजबूत तर्क दिखता है कि एक पृथक निकाय को मेडिकल शिक्षा का प्रभारी बना दिया जाए जिसमें मुख्य रूप से अपने-अपने क्षेत्र का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों को शामिल किया जाए।

5.2.9 उपरोक्त को देखते हुए आयोग, राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के इस मत से सहमत है कि व्यावसायिक शिक्षा के विषय को विद्यमान विनियामकों के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया जाए। तथापि, एक ऐसा मत है कि राष्ट्रीय स्तर पर एक उच्च अधिकार प्राप्त एकल निकाय, आई आर ए एच ई का सृजन करना, जिसका व्यावसायिक शिक्षा के सभी विषयों पर समग्र रूप से नियंत्रण हो, विकेन्द्रीयकरण के मूल सिद्धान्त के विरूद्ध होगा - जो उत्तम अधिशासन का एक अनिवार्य तत्त्व है। दूसरे, एन के सी ने, विभिन्न विषयों की देखभाल करने के लिए आई आर ए एच ई में पृथक स्थायी समितियाँ गठित करने का प्रस्ताव किया है, विधि, मेडिसिन, प्रबंधन, चार्टर्ड लेखांकन, फार्मेसी, नर्सिंग आदि के लिए एक-एक, वे वही कार्य करेंगी जो फिलहाल बी सी आई, एम सी आई, ए आई सी टी ई व अन्यों द्वारा किया जाता है (मानदण्डों और स्तरों की योजना तैयार करना, उनका निर्माण और अनुरक्षण, प्रत्यापन के माध्यम से कोटि आश्वासन, प्राथमिकतापूर्ण क्षेत्रों के लिए वित्तपोषण, मानीटरन और मूल्यांकन, प्रमाणन। अवार्डों की समतुल्यता बनाए रखना तथा विषय का समन्वित और एकीकृत विकास और प्रबंधन सुनिश्चित करना)। आयोग का विश्वास है कि उच्च शिक्षा के हितों की बेहतर ढंग से देखभाल की जा सकती है यदि एक वृहद निकाय स्थापित करने की बजाए अध्ययन के प्रत्येक व्यावसायिक क्षेत्र के लिए अलग-अलग संस्थानों का गठन किया जाए (मेडिसिन, विधि, प्रबंधन, प्रौद्योगिकी आदि)।

5.2.10 शीर्ष विनियामक एजेन्सियों की स्थापना - प्रत्येक व्यावसायिक शैक्षिक विषय के लिए एक-एक- कानून द्वारा की जाए। उन्हें नेशनल स्टेण्डर्ड्स एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार लॉ, नेशनल स्टेण्डर्ड्स एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार मेनेजमेंट आदि कहा जा सकता है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उनके गठन और संरचना में एकरूपता हो। इन परिषदों के कामकाज में पारदर्शिता और उद्देश्यपरकता सुनिश्चित करने के उद्देश्य से, कानून में उनके कार्यों, शक्तियों और अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाए। आयोग का यह भी मत है कि इन काउन्सिलों को क्लासिकल दृष्टि से विनियामकों के रूप में कार्य करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उनके पास कोई लाइसेंस प्रदान करने का कार्य नहीं होगा। उन्हें केवल निम्नलिखितों के संबंध में केवल मानदण्ड, मानक और प्राचल निर्धारित करने का काम सौंपा जाए : (क) नए संस्थान स्थापित करना, (ख) पाठयचर्या तैयार करना और उसे अद्यतन बनाना, (ग) संकाय सुधार, (घ) अनुसंधान/नूतनता लागू करना, और (ड.) विषय से संबंधित अन्य प्रमुख मुद्दे । इन परिषदों का गठन करते समय, कानून के अन्तर्गत निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

(1) ऐसी परिषदें पूर्णत: स्वायत्त हों,

(2) इन परिषदों के सर्वोच्च नीति और निर्णय निर्माण निकाय में अधिकांशत: स्वतन्त्र सदस्य होने चाहिए और अधिमानत: 2 अथवा 3 से अधिक सरकारी सदस्य नहीं होने चाहिए जो उनमें पदेन हैसियत से काम कर सकते हैं।

(3) इन परिषदों में एक मजबूत और प्रभावी शिकायत समाधान तंत्र होना चाहिए।

(4) परिषदें संसद के प्रति जवाबदेह हों और उनकी रिपोर्टें प्रत्येक वर्ष सदन के समक्ष प्रस्तुत की जाएं। इसके अलावा, आर टी आई अधिनियम के तहत स्वत: प्रकटन के लिए मजबूत मानदण्ड होने चाहिए।

(5) इन परिषदों का एक महत्वपूर्ण कार्य, उनके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले संस्थानों के प्रत्यायन/प्रमाणन से संबंधित होगा। इसलिए, इन राष्ट्रीय परिषदों में से प्रत्येक में उन्हें इन मामलों में सलाह देने के लिए विशेषज्ञों का एक निकाय होना चाहिए।

(6) ऐसी परिषदों के कुछेक सदस्यों का चयन विशेषज्ञता एसोसिएशनों के पदाधिकारियों में से किया जा सकता है (उदाहरणार्थ इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन) क्योंकि इन सदस्यों का चुनाव अभ्यासकर्ता व्यावसायिकों द्वारा उनकी वैयक्तिक विशेषज्ञता के अनुसार किया जाता है।

निर्धारित मानदण्डों, मानकों और प्राचलों के अध्यधीन विश्वविद्यालय/स्वायत्त संस्थान उपरोक्त सभी मामलों में निर्णय लेने में स्वतन्त्र होंगे।

ऊपर यथा प्रस्तावित नए कानून के अधिनियमन और प्रौद्योगिकी तथा प्रबंधन के लिए पृथक राष्ट्रीय मानक और गुणवत्ता परिषदों की स्थापना होने के बाद ए आई सी टी ई को समाप्त करने की जरूरत होगी।

5.2.11 विश्वविद्यालयों की बढ़ी हुई भूमिका के साथ, जैसाकि ऊपर पैराग्राफ 5.2.10 में प्रस्ताव किया गया है, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से विश्वविद्यालयों की संख्या और आकार, पाठ्यचर्या, आकलन, अनुसंधान, संकाय, वित्त, अवस्थापना और अधिशासन के संबंध में पर्याप्त सुधार लागू करने की जरूरत होगी। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने इस सबंध में महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं जिनकी सरकार द्वारा जाँच और प्राथमिकता के आधार पर लागू की जानी चाहिए। आयोग कुलपतियों की नियुक्ति के संबंध में एन के सी की सिफारिशों पर विशेष रूप से प्रकाश और उनका समर्थन करना चाहेगा। नियुक्ति की प्रक्रिया सरकार के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए। एक बार नियुक्त किए जाने पर कुलपति की कार्यावधि छ: वर्ष होनी चाहिए। उन्हें, कार्यकारी परिषद की सलाह और सहमति से विश्वविद्यालयों को शासित करने का पर्याप्त प्राधिकार और शिथिलनीयता होनी चाहिए।

5.2.12 शिक्षा क्षेत्रक में एक मजबूत निजी पहल देखने में आई है तथा उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान करने के लिए अनेक शिक्षण संस्थान स्थापित किए गए हैं। इससे निजी और सरकारी क्षेत्र के शिक्षा संस्थानों

के बीच एक उपयुक्त पद्धति के जरिए, संकाय के आदान-प्रदान सहित, मजबूत कड़ियाँ कायम करने की जरूरत का पता चलता है। इससे इन दोनों क्षेत्रकों की तुलनात्मक शक्ति को परस्पर रूप से बल मिलेगा।

5.2.13 सिफारिशें

(क) **व्यावसायिक शिक्षा को विद्यमान विनियामक निकायों के क्षेत्राधिकार से हटा दिया जाना चाहिए और विशेष रूप से सृजित एजेन्सियों को सौंप दिया जाना चाहिए – उच्च/व्यावसायिक शिक्षा के प्रत्येक विषय के लिए एक –एक। इन निकायों को, नेशनल स्टेण्डड्र्स एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार मेडिसिन, नेशनल स्टेण्डर्डस एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार मेनेजमेंट आदि। इस विभाजन के पश्चात, विद्यमान विनियामक निकायों का कार्य पंजीकरण से संबंधित मुद्दों, दक्षाता उन्नयन और व्यावसायिक मानकों व नीतिशास्त्र के प्रबंधन तक सीमित रहेगा। इन पृथक परिषदों की स्थापना हो जाने पर ए आई सी टी ई समाप्त हो जाएगी।**

(ख) **ऐसी परिषदें कानून के तहत स्थापित की जानी चाहिए तथा उनका कार्य अपने विषय के विकास और संवृद्धि से सम्बन्धित मुद्दो के संबंध में मानदण्ड, मानक और प्राचल निर्धारित करना होना चाहिए यथा (क) नए संस्थान स्थापित करना, (ख) पाठयचर्या डिजाइन करना/ इसे अद्यतन बनाना, (ग) संकाय सुधार, (घ) अनुसंधान/नूतनता आयोजित करना, और (ड.) विषय से सबंधित अन्य प्रमुख मुद्दे।**

(ग) **इन परिषदों का गठन करते समय प्रस्तावित कानून में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :**

(i) **ऐसी परिषदें पूर्णत: स्वायत्त हों।**

(ii) **इन परिषदों के सर्वोच्च नीति और निर्णय निर्माण निकाय में अधिकांशत: स्वनन्त्र सदस्य होने चाहिए और अधिमानत: 2 अथवा 3 से अधिक सरकारी सदस्य नहीं होने चाहिए जो उनमें पदैन हैसियत से काम कर सकते हैं।**

(iii) **इन परिषदों में एक मजबूत और प्रभावी शिकायत समाधान तंत्र होना चाहिए।**

(iv) **परिषदें संसद के प्रति जवाबदेह हों और उनकी रिपोर्टें प्रत्येक वर्ष सदन के समक्ष प्रस्तुत की जाएं। इसके अलावा, आर टी आई अधिनियम के तहत स्वत: प्रकटन के लिए मजबूत मापदण्ड होने चाहिए।**

(v) **इनमें से प्रत्येक परिषद में, उसे उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले संस्थानों के प्रत्यायन/प्रमाणन के संबंध में सलाह देने के लिए विशेषज्ञों का एक निकाय होना चाहिए।**

(vi) **ऐसी परिषदों के कुछ सदस्यों का चयन विशेषज्ञता एसोसिएशनों के पदाधिकारियों में से किया जा सकता है (उदाहरणार्थ इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन), क्योंकि इन सदस्यों का चुनाव अभ्यासकर्ता व्यावसायिकों द्वारा उनकी वैयक्तिक विशेषज्ञता के अनुसार किया जाता है।**

(घ) **ऐसे मानदण्डों, मानकों और प्राचलों के अन्दर विश्वविद्यालयों/स्वायत्त संस्थानों को उनके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत संस्थान स्थापित और संचालित करने के लिए पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।**

(ड.) **विश्वविद्यालयों की सरंचना, अधिशासन और कार्यकरण में सुधारों के सबंध में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों की जाँच और प्राथमिकता के तौर पर कार्यान्वित की जानी चाहिए। कुलपतियों की नियुक्ति की प्रक्रिया सरकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए। कुलपतियों की एक निश्चित कार्यावधि होनी चाहिए तथा उन्हें कार्यकारी परिषद की सलाह और सहमति के साथ विश्वविद्यालयों को शासित करने के लिए पर्याप्त प्रधिकार और शिथिलनियता होनी चाहिए।**

(च) **संकाय के आदान-प्रदान जैसी पद्धतियों के माध्यम से सरकारी और निजी क्षेत्रकों में शिक्षा संस्थानों के बीच मजबूत संबंध होना चाहिए।**

5.3 व्यावसायिक उन्नयन

5.3.1 वर्तमान युग में जबकि प्रौद्योगिकी और दक्षताओं में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, व्यावसायिकों द्वारा अपने ज्ञान और तकनीकी दक्षताओं को अद्यतन बनाने की जरूरत है।

5.3.2 विशेषज्ञ जानकारी प्रदान करने के उद्देश्य से, आई सी ए आई, प्रबंधन, लेखांकन, कोरपोरेट मामलों और कर प्रबंधन में अल्पकालिक अर्हता पश्चात पाठयक्रम प्रदान करता है। इसने, सूचना पद्धति

आडिट, बीमा और जोखिम प्रबंधन, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कानून और डब्ल्यु टी ओ में भी पाठयक्रम प्रारंभ किए हैं। यह कम्प्यूटर सहाय्यित आडिटिंग तकनीकों के संबंध में समय-समय पर कार्यक्रम आयोजित करता है।

5.3.3 आई सी ए आई, अपने सतत व्यावसायिक और शिक्षा निदेशालय के माध्यम से अपने सदस्यों को नए विधानों, प्रौद्योगिकी परिवर्तनों और सरकार व अन्य एजेन्सियों/संगठनों की नवीनतम नीतियों और उदघोषणाओं से उत्पन्न व्यावसायिक मुद्दों के सबंध में अद्यतन जानकारी प्रदान करने का भी दायित्व सम्भालता है। वर्ष 2003 से, आई सी ए आई सदस्यों के लिए सतत व्यावसायिक शिक्षा (सी पी ई) अनिवार्य बना दी गई है। अब, सदस्यों को ऐसा प्रशिक्षण प्राप्त करके सी पी ई क्रेडिट प्राप्त करने होंगे। अब एम सी आई भी, कुछेक प्रख्यात मेडिकल संस्थानों द्वारा आयोजित किए जा रहे सी पी ई कार्यक्रमों को सुकर बनाती है। यह उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

5.3.4 किन्तु बहुत से व्यवसाय अपने सदस्यों को ऐसे गुणवत्ता संवर्धन कार्यक्रम प्रदान नहीं करते। उदाहरणार्थ, एक अभ्यासकर्ता वकील के लिए उपलब्ध एकमात्र विकल्प किसी विश्वविद्यालय के दो वर्षीय मास्टर्स पाठयक्रम में प्रवेश लेने का है। आयोग की राय है कि व्यावसायिक विनियामक निकायों को संबंधित राष्ट्रीय कोटि और मानक परिषद तथा शैक्षिक संस्थानों के सहयोग से अभ्यासकर्ता व्यावसायिकों को अपनी दक्षताओं में संवर्धन और उन्नयन करने हेतु 4 से 6 सप्ताह के अल्पावधिक पाठ्यक्रम प्रदान करने चाहिए। ऐसे पाठ्यक्रमों से उन्हें अपने-अपने क्षेत्र में घटने वाली नवीनतम घटनाओं और प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त होगी तथा उन्हें नए विधानों, प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों और सरकारी नीतियों उदघोषणाओं से उत्पन्न होने वाले नैदानिक और व्यावसायिक मुद्दों से अवगत कराया जा सकेगा।

5.3.5 सिफारिश

(क) प्रत्येक व्यावसायिक विनियामक निकाय को संबंधित राष्ट्रीय गुणवत्ता और मानक परिषद व शैक्षणिक संस्थानों के सहयोग से अपने सदस्यों के दक्षता संवर्धन और उन्नयन हेतु समय-समय पर सतत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए।

5.4 नैतिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण

5.4.1 व्यावसायिकों में नैतिकता में ह्रास के दो प्रमुख कारक हैं (i) समग्र शिक्षा पद्धति की कार्य प्रणाली, और (ii) परिवेश का प्रभाव। यद्यपि आचरणात्मक परिवर्तन सावधानीपूर्वक तैयार किए गए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से लाए जा सकते हैं तथापि विद्यमान मनोवृत्ति को बदलने का प्रयास करना और

भी कठिन है। देश भर में व्यावसायिक संस्थानों द्वारा पालन की जा रही पाठ्यचर्या में इसे प्रमुख रूप से स्थान देने की जरूरत है।

5.4.2 व्यवसाय का शैक्षिक भाग किसी भिन्न तंत्र को सौंप दिए जाने पर इस समय विद्यमान विनियामक प्रणाली व्यावसायिक नीतिशास्त्र और मानकों के अनुरक्षण और प्रवेश संबंधी मुद्दों पर अधिक समय और ऊर्जा देने के लिए मुक्त होगी। इस संदर्भ में, समय-समय पर कार्यशालाएं, सेमिनार और विचार-विमर्श सत्र आयोजित करना अत्यंत महत्वपूर्ण होगा।

5.4.3 सिफारिश :

(क) व्यावसायिक शिक्षा के अलग हो जाने के बाद, व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरणों की कार्यसूची में निम्नलिखित पर बल दिया जा सकता है: (i) नए सदस्यों के पंजीकरण/ पंजीकरण के नवीकरण हेतु प्रक्रिया ; और (ii) व्यावसायिक नैतिकता मानक और आचरण से संबंधित मामले। विनियामक प्राधिकरणों को ऐसे मुद्दों पर कार्यशालाएं, सेमिनार और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने पर भी अधिक ध्यान देना चाहिए।

5.5 व्यवसाय में नामांकन

5.5.1 वर्तमान प्रथा के अनुसार, किसी व्यक्ति द्वारा व्यावसायिक डिग्री सफलतापूर्वक प्राप्त कर लेने के बाद व्यवसाय के एक सदस्य के रूप में अपना नाम पंजीकृत कराना लगभग एक नेमी मामला रह जाता है। उम्मीदवार से कतिपय फार्म भरने, निर्धारित फीस जमा करने के लिए कहा जाता है और उसके बाद वह अभ्यासकर्ता के रूप में नामांकित हो जाता है। ऐसी औपचारिक प्रक्रिया व्यवसाय के हित में नहीं है। नए सदस्यों के नामांकन/पंजीकरण के लिए एक कठोर प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

5.5.2 विधि आयोग ने 2002 में सरकार को प्रस्तुत अपनी 184वीं रिपोर्ट में सिफारिश की थी कि बार में पंजीकरण हेतु छ: माह की प्रशिक्षुता और उसके बाद एक परीक्षा अनिवार्य बना दी जानी चाहिए। इस संबंध में उसने 1999 में प्रस्तुत "विधि शिक्षा संबंधी अहमदी आयोग " की रिपोर्ट कोट की थी। राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने सिफारिश की थी कि किसी व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश संबंधित विनियामक निकाय द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित एक परीक्षा पर आधारित होना चाहिए।

5.5.3 इस समय, देश में दो प्रकार की पाठ्यचर्या अपनाई जाती है; एक स्नातकों के लिए तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम है और दूसरी वरिष्ठ स्कूल शिक्षा पास करने वालों के लिए एक पाँच वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम है। इन दोनों पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत, विधि न्यायालयों, न्यायाधीशों और वकीलों के साथ विचार-विमर्श

सत्रों के आयोजन और संस्थानों/उद्योगों के साथ लघु सम्बद्धन के जरिए छात्रों को एक प्रकार का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। मेडिकल पाठ्यक्रम के लिए, इनटर्नशिप पाठ्यविवरण का एक अभिन्न अंग होती है। चार्टर्ड लेखाकारों और कम्पनी सचिवों के लिए भी व्यावहारिक अध्ययन पर पर्याप्त बल दिया जाता है। इसलिए, आयोग का मत है कि व्यावहारिक प्रशिक्षण/इनटर्नशिप अथवा पृथक रूप से प्रवेश शिक्षा की किसी और आवश्यकता की, नए सदस्यों के नामांकन के लिए, जरूरत नहीं है। तथापि, व्यवसाय का एक संतोषजनक विकास सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संबंधित व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरण को नए सदस्यों के नामांकन के लिए बुनियादी मार्गनिर्देश निर्धारित करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए।

5.5.4 सिफारिश

(क) अधिनियम के प्राचलों के अन्दर, संबंधित विनियामक प्राधिकरण को नए सदस्य नामांकित करने के लिए मार्गनिर्देश निर्धारित करने के लिए प्राधिकृत किया जाना चाहिए।

बाक्स 5.1 : अमरीका और यू.के. में व्यावसायिक पुनर्वैधकरण

अमरीका में प्रमाणन

संयुक्त राज्य में, अनेक अस्पताल डाक्टरों को अपनी विशेषज्ञता में एक वैध बोर्ड प्रमाणन के सबूत के बिना अभ्यास करने की मनाही है। राष्ट्रीय विचारण वकालत बोर्ड (एन बी टी ए), अटार्नियों का एक गैर-लाभ वाला संगठन है, जिसकी स्थापना विचारण वकालत की कोटि को बेहतर बनाने और सौद्देश्य मानक स्थापित करने के उद्देश्य से की गई है, जिससे कि विचारण वकीलों के अनुभव और विशेषज्ञता को मापा जा सके। एन बी टी ए, अमरीकी बार एसोसिएशन द्वारा वकीलों की सिविल, आपराधिक और पारिवारिक कानूनों के क्षेत्र में विशेषज्ञता प्रमाणित करने के लिए प्रत्यायित है। प्रमाणपत्र धारकों की उनके प्रत्यय-पत्रों, अनुभव के प्रलेखन की बारीकी से जाँच, एक औपचारिक परीक्षा और उनके विरूद्ध उठाए गए अनुशासनात्मक मामलों की व्यापक रूप से चेकिंग की जाँच की जाती है। एन बी टी ए प्रमाण-पत्र धारण करने का अर्थ है कि अटार्नी को उच्च स्तर का व्यावसायिक और वैयक्तिक आचरण प्राप्त है।

स्रोत: www.nbunet.org

यू.के में मेडिकल व्यवसाय में पुनर्वैधकरण

पुनर्वैधकरण प्रक्रिया में अन्तर्गत दो प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं : (i) डाक्टर "उत्तम मेडिकल प्रथा" (जी एम पी) के अनुसार अभ्यास प्रदर्शित करता है, और (ii) जी एम सी इस बात की पुष्टि करती है कि लाइसेंस जारी रहेगा। पुनर्वैधकरण प्राप्त करने के लिए मूल्यांकन और क्लिनिक शासन और स्वतन्त्र अथवा बाह्य क्लिनिक शासन दो मार्ग हैं। मूल्यांकन/क्लिनिक शासन के माध्यम से पुनर्वैधकरण हेतु डाक्टरों के पास निम्नलिखित होना चाहिए :

- पुनर्वैधकरण अवधि के दौरान क्लिनिकल शासन के अधीन काम किया है,
- वार्षिक मूल्यांकन में भाग लिया है,
- समर्थनकारी प्रलेखन रखा है।

बाह्य क्लिनिक शासन मार्ग के माध्यम से पुनर्वैधकरण हेतु डाक्टरों को निम्नलिखित प्रदर्शित करना चाहिए :

- उन्होंने पुनर्वैधकरण अवधि के दौरान जी एम पी का पालन किया है।
- उनके पास गुणवत्ता आश्वस्त मूल्यांकन में भागीदारी का साक्ष्य है।
- प्रश्नावली माध्यम से परिणामों का विश्लेषण किया है।

"उत्तम मेडिकल प्रथा" के अन्तर्गत निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- उत्तम मेडिकल परिचर्या
- उत्तम मेडिकल प्रथा बनाए रखना
- शिक्षण और प्रशिक्षण
- रोगियों के साथ संबंध
- सहयोगियों के साथ कार्य
- सत्यता
- स्वास्थ्य

संतोषजनक साक्ष्य के अध्यधीन, पंजीकृत मेडिकल व्यावसायिकों को सामान्य मेडिकल परिषद द्वारा, प्रत्येक पाँच वर्ष, पुनर्वैधकरण मंजूर किया जाता है।

स्रोत: www.gmc.uk.org

5.6 पंजीकरण का नवीकरण/पुनर्वैधकरण

5.6.1 हमारे देश में विद्यमान प्रथा के अनुसार, सभी व्यवसायों में, एक बार किसी व्यक्ति के प्रवेशकर्ता के रूप में पंजीकृत हो जाने पर, उसे आजीवन सदस्यता प्राप्त हो जाती है। उसके बाद किसी नवीकरण अथवा पुन: पंजीकरण की प्रक्रिया की जरूरत नहीं होती। किसी व्यावसायिक द्वारा अपनी सदस्यता समाप्त हो जाने का एकमात्र आधार अत्यंत विचलन आचरण हो सकता है।

5.6.2 आयोग का मत है कि जब प्रौद्योगिकी, दक्षताओं के मानकों और कार्यात्मक परिवेश में तेजी से बदलाव हो रहा है, तब किसी एक समय पर मात्र डिग्री प्राप्त करना व्यावसायिक दक्षता आजीवन बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस बाबत एक सांविधिक प्रावधान किए जाने की जरूरत है कि पंजीकरण/लाइसेंस के लिए विनिर्दिष्ट अन्तरालों पर पुनर्वैधकरण पुन: प्रमाणन की जरूरत होगी।

5.6.3 **सिफारिश:**

क – संगत कानूनों में एक प्रावधान किया जाना चाहिए कि व्यावसायीकरण/लाइसेंस के लिए निर्धारित संख्या में वर्षों के बाद पुनर्वैधकरण की जरूरत होगी। ऐसा, संबंधित व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित एक पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा कर लेने के बाद किया जा सकता है।

5.7 अनुशासनात्मक पद्धति

5.7.1 एक व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरण व्यवसाय में मानक स्थापित और उन्हें प्रवर्तित करता है जिससे कि उसके अभ्यासकर्ता अपने ग्राहकों का विश्वास प्राप्त कर सकें। अनुशासन के मामलों में विनियामक प्राधिकरण को प्रदान की गई स्वायत्तता उसे व्यावसायिक शुद्धता बनाए रखने के लिए बाध्य करती है। उदाहरण के लिए, विधि व्यवसाय में, विधि भातृत्व से सोसायटी यह उम्मीद करती है कि वह उन सभी को किफायती कानूनी सहायता और सलाह उद्देश्यपरक ढंग से तथा बुद्धिमत्तापूर्वक प्रदान करेगा जो विधिक उपचारों को सहारा लेने के लिए बाध्य हैं। इसे सतर्क रहना चाहिए और अपने सदस्यों द्वारा नैतिकता भंग करने पर कठोर अनुशासनात्मक नियंत्रण रखना चाहिए। यह अन्य व्यवसायों के बारे में भी सही है।

5.7.2 यद्यपि, विनियामक अधिनियमों के अन्तर्गत व्यावसायिक अभ्यासकर्ताओं के लिए एक पद्धति निर्धारित की गई है, तथापि वास्तविक व्यवहार में उनके बीच नैतिक आचरण लागू करना संतोषजनक नहीं है। प्रमुख रूप से इसके दो कारण हैं : (क) निम्नलिखित की वजह से विचलित आचरण की रिपोर्ट करने में जनता की ओर से हिचकिचाहट होना है : (1) अज्ञानता, (2) व्यवसाय के प्रति सम्मान, अथवा (3) बदले का भय ; तथा (4) इनमें से अनेक निकायों ने एक सक्रियतापूर्ण रूख विकसित नहीं किया है जिसके अनुसार व्यावसायिकों को अव्यवसायिक/अनैतिक व्यवहार का स्वमेव संज्ञान लिया जा सके। इन पहलुओं के संबंध में संविधियों को मजबूत बनाए जाने की जरूरत है।

5.7.3 आई सी ए आई, की गलती करने वाले सदस्यों को दण्ड देने और अनैतिक प्रथाओं को रोकने की एक नूतन पद्धति है। इसका एक अत्यंत सक्रिय अनुशासनात्मक प्रकोष्ठ है जो इसके सदस्यों के विरूद्ध शिकायतों की तेजी से जाँच करता है। आई सी ए आई, न केवल पणधारियों से अथवा उपभोक्ता समूहों से शिकायतें प्राप्त करता है बल्कि अपनी इन-हाउस सूचना के आधार पर स्वमेव भी कार्रवाई करता है। आई सी ए आई की आचरण संहिता में दिए गए प्रावधान अत्यंत कठोर हैं और एजेन्सी अपने चूककर्ता सदस्यों के खिलाफ कार्रवाई करने में अत्यंत प्रभावी है। तकनीकी मानकों का अनुपालन और कोटि नियंत्रण नीतियों व प्रक्रियाओं का पालन सुनिश्चित के लिए प्राय: शीर्ष स्तर पर समीक्षा की जाती है। प्राय:, आई सी ए आई अपने आप विभिन्न संगठनों के सार्वजनिक लेखों की जाँच करती है, जिनमें बैंक तथा वित्तीय संस्थान शामिल हैं। रिपोर्ट करने में पाई जाने वाली किसी कमी की स्थिति में अनुशासनात्मक कार्वाई की जाती है। चार्टर्ड लेखाकारों के बीच प्रमुख दबाव और वित्तीय रिपोर्टिंग समीक्षा द्वारा कोटि नियंत्रण सुनिश्चित किया जाता है।

5.7.4 अधिवक्ताओं के लिए, राज्य बार काउन्सिल को अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में निर्णय लेने के लिए एक वर्ष का समय मिलता है, किन्तु मामले के निपटान के लिए कोई समय-सीमा नहीं है जबकि शीर्ष निकाय (बार काउन्सिल आफ इण्डिया) को अपील की जाती है। मेडिकल व्यावसायिकों के लिए, संबधित राज्य मेडिकल परिषद को अनुशासनात्मक मामले के बारे में निर्णय लेने के लिए छ: महीने का समय दिया गया है किन्तु शीर्ष निकाय (एम सी आई) के समक्ष अपील के संबंध में निर्णय लेने के लिए

तालिका 5.1 : 1 अप्रैल 2006 से 31 मार्च 2007 तक आयोजित अनुशासनात्मक समिति की बैठकें, निपटाए गए मामले और आदेशों की प्रकृति (बार काउन्सिल आफ इण्डिया)

क्रम सं0	बैठक की तारीख	बैठक का स्थान	समितियों की संख्या	मामलों की संख्या	आदेशों की प्रकृति						
					निपटाए गए	निरस्त	सचेत किया गया	निलम्बित	अपील की अनुमति	सचेत किया गया	न्याय निर्णय आरक्षित
1.	29/30.5.2006	दिल्ली	2	28	14	12	-	1	-		1
2.	6/7.5.06	इरनाकुलम		3	38	11	5	-	-	-	6
3.	13/14.5.2006	दिल्ली	2	19	5	3	-	1	-	-	1
4.	20/21.5.2006	मुम्बई	3	46	12	8	1	2	-	1	-
5.	27/28.5.2006	चन्डीगढ	2	35	13	8	-	1	-	2	2
6.	3/4.6.06	जयपुर	2	36	13	6	2	1	-	2	2
7.	19/20.6.2006	दिल्ली	2	23	6	3	2	-	1	-	-
8.	8/9.7.06	हैदराबाद	3	52	34	18	2	2	1	2	9
9.	15/16/.7.2006	दिल्ली	1	24	6	3	-	1	1	-	1
10.	24/25.6.2006	दिल्ली	1	12	2	1	-	-	-	-	1
11.	12/13.8.2006	दिल्ली	1	20	4	2	-	-	1	-	1
12.	18.8.06	कोलकाता	2	18	6	5	-	-	-	1	-
13.	26/27.8.2006	बंगलौर	3	24	10	3	3	-	3	1	-
14.	23/24/9/2006	दिल्ली	1	20	1	1	-	-	-	-	1
15.	7/8/10.2006	दिल्ली	1	22	2	2	-	-	-	-	-
16.	14/15.10.2006	इरनाकुलम	4	55	31	13	2	2	4	2	8
17.	4/5/11.2006	दिल्ली	1	19	3	1	-	1	1	-	-
18.	11/12.11.2006	हैदराबाद	4	56	20	8	-	-	-	-	12
19.	24/25.11.2006	दिल्ली	2	14	3	2	-	1	-	-	-
20.	2/3.12.2006	भोपाल	4	64	30	9	1	-	5	5	10
21.	9/10.12.2006	दिल्ली	1	22	-	-	-	-	-	-	-
22.	23/24.12.2006	चैन्ने	3	59	28	16	-	-	-	-	12

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07, बार काउन्सिल आफ इण्डिया

कोई समय सीमा नहीं है। इसके अलावा, तालिका 5.1 से स्पष्ट है कि केवल बहुत थोड़ी शिकायतों की प्रतिशतता दण्ड में बदलती है।

5.7.5 आयोग का मत है कि व्यावसायिक निकायों की विद्यमान इन-हाउस पद्धतियों ने लोगों अथवा व्यवसाय के सर्वोत्तम हित में कार्य नहीं किया है। आयोग का मत है कि पद्धति में उद्देश्यपरकता लाने के लिए पणधारियों की भागीदारी आवश्यक है। इसलिए, प्रत्येक अनुशासनात्मक पैनल के सदस्यों में वरिष्ठ व्यावसायिक और साथ ही बाहरी व्यक्ति (साधारण व्यक्ति) 60:40 के अनुपात में सम्मिलित होने चाहिए। कोई शिकायत प्राप्त होने पर उसका निपटान एक निश्चित समय-सीमा (अर्थात 90 दिन) में किया जाना चाहिए। राज्य पैनल के निर्णय के विरूद्ध अपील शीर्ष निकाय के समक्ष की जा सकेगी जिसे भी मामले को इतनी ही समय-सीमा के अन्दर निपटाना चाहिए।

5.7.6 सिफारिशें

क – संगत कानूनों में यह प्रावधान होना चाहिए कि उनके कार्यकरण में उद्देश्यपरकता लाने के उद्देश्य से, विनियामक प्राधिकरणों की राज्य और राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर अनुशासनात्मक समितियों में व्यावसायिक और गैर-व्यावसायिक सदस्य सम्मिलित होने चाहिए। उन्हें क्रमश: 60:40 अनुपात में शामिल किया जा सकता है।

ख– कानूने में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि ऐसे निकायों को सम्पूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही एक निर्धारित समयावधिक (अर्थात 90 दिन) के अन्दर पूरी कर लेनी चाहिए।

ग– कानून में ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि राज्य पैनल के निष्कर्षों से पीड़ित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय (शीर्ष) निकाय में अपील कर सकता है जो भी मामले का निपटान निर्धारित समयावधि (अर्थात 90 दिन) के अन्दर करेगा।

5.8 स्व: विनियामक प्राधिकरणों का गठन

5.8.1 सरकार तथा विनियामक निकायों के बीच अन्योन्यक्रिया

5.8.1.1 विनियामक प्राधिकरणों को कानून द्वारा पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई है। कानून का आशय जनता को पुन: आश्वस्त करना है कि ये निकाय बिना किसी बाधा के कार्य करेंगे और उन्हें उत्तम सेवा प्रदान करेंगे। किन्तु वास्तव में ऐसे निकायों की स्वायत्तता की सीमा में भिन्नताएं हैं। उदाहरण के लिए,

शिक्षा, प्रशिक्षण और व्यवहार के संबंध में एजेण्डा निश्चित करने की दृष्टि से बी सी आई को ए आई सी टी ई की तुलना में अधिक स्वायत्तता प्राप्त है। बी सी आई साधारण परिषद में कुल 21 सदस्यों में से केवल दो सरकारी प्रतिनिधि हैं (दोनों पदेन सदस्य) (महान्यायवादी और महासालिसीटर) जबकि ए आई सी टी ई में 21 में से 19 सरकारी प्रतिनिधि हैं।

5.8.2 शासन प्रणाली

5.8.2.1 सामान्यत:, विनियामक प्राधिकरणों की माडलिंग एक निर्वाचित साधारण निकाय तथा नामांकित सदस्यों वाले एक छोटे से निकाय के साथ सरकार के संसदीय स्वरूप पर आधारित है। साधारण परिषद, कार्यकारी समिति (ई सी) शैक्षिक, परीक्षा, नैतिक और वित्त समितियां सभी छ: एस आर ए के लिए एकसमान हैं। तथापि, उनके आकार, गठन और संख्या में काफी भिन्नता है। आई सी ए आई में सबसे अधिक स्थायी समितियां (37) हैं। इसके बाद आई सी एस आई (20), आई सी डब्ल्यु ए आई (18, एम सी आई (16) और बी सी आई (10) का स्थान है। साधारण निकाय के आकार की दृष्टि से, 119 सदस्यों के साथ एम सी आई का स्थान सूची में सबसे ऊपर है, जिसके बाद सी ओ ए 41, आई सी ए आई 40, बी सी आई 21, आई सी डब्ल्यु ए आई और आई सी एस आई का 20-20 सदस्यों के साथ स्थान है। इसके साथ ही, कार्यकारी समितियों की संख्या में भी भिन्नता है-एम सी आई में 10 सदस्य हैं, उसके बाद बी सी आई 9, आई सी डब्ल्यु ए आई 7 सी ओ ए 7,आई सी ए आई 6 और आई सी एस आई 5 का स्थान है।

तालिका 5.2 : विनियामक प्राधिकरणों की संरचना और गठन

संगठन का नाम	साधारण निकाय का आकार	कार्यकारी समिति का आकार	विषय स्थायी समितियों की संख्या
बी सी आई	21	9	10
एम सी आई	119	10	16
आई सी ए आई	40	6	37
आई सी डब्ल्यु ए आई	20	7	18
आई सी एस आई	20	5	20
सी ओ ए	41	7	5

स्रोत: इन एजेन्सियों की वेबसाइट से संकलित

5.8.3 शासी निकायों की सदस्यता

5.8.3.1 सामान्यत:, चार उपाय हैं जिनके जरिए एक व्यावसायिक किसी व्यावसायिक निकाय (राज्य और साथ ही शीर्ष दोनों स्तरों पर) की शासी परिषद का सदस्य बन सकता है, अर्थात चुनाव, नामांकन, सहयोजन अथवा पदेन सदस्यता द्वारा। कुछ स्थान विश्वविद्यालयों/कालेजों के शिक्षण संकायों के लिए आरक्षित हैं। चुनौती एक ऐसा माडल खोजने की है जिससे समावेशन और पारदर्शिता को बढ़ावा मिले और जिन्हें व्यवसाय और साथ ही नागरिकों का भी विश्वास प्राप्त हो।

5.8.4 कार्यकाल की अवधि तथा सामूहिक नेतृत्व

5.8.4.1 पदाधिकारियों के लिए अल्पावधि के साथ खुले और निष्पक्ष आवधिक चुनावों से सामूहिक और ईमानदारीपूर्ण नेतृत्व को प्रोत्साहन मिलता है। लम्बी अवधि तक कुछेक व्यक्तियों द्वारा किसी संस्थान का नियंत्रण एक अच्छी प्रथा नहीं है और इससे निहित स्वार्थों को स्पष्ट रूप से बढ़ावा मिलता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति 21 वर्ष तक (1973-1997) केवल दो वर्ष के ब्रेक के साथ भारतीय वास्तुकार परिषद का प्रधान बना रहा। एम सी आई के प्रधान का कार्यकाल 5 वर्ष है और उसके पुन: चुनाव पर कोई रोक नहीं है। इस प्रकार एक पदधारी दस वर्ष तक कार्यालय में बना रहा और इसे भ्रष्टाचार के आरोपों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा उसे हटने की सलाह दी गई। ऐसी लम्बी कार्यावधि से युवा व्यावसायिकों को प्रवेश करने का अवसर नहीं मिलता जो ऐसे निकायों में नए विचारों का समावेश कर सकते हैं। आई सी ए आई और आई सी डब्ल्यु ए आई के प्रधान का कार्यकाल केवल एक वर्ष है।

5.8.4.2 अनुभव किया गया है कि व्यावसायिक विनियामक निकायों की वर्तमान शासी प्रणालियों की प्रकृति समावेशी नहीं है। ग्राहकों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है (यू.के. और यू.एस.ए. के विपरीत)। दूसरे, निर्वाचित और मनोनीत सदस्यों का अनुपात भी अत्यंत विषम है। बी सी आई में, 21 सदस्यों में से 19 सदस्य निर्वाचित होते हैं तथा शेष दो पदेन हैसियत वाले होते हैं। दूसरी ओर ए आई सी टी ई में 21 सदस्यों में से 19 सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत अथवा पदेन सदस्य हैं। तीसरे, महत्वपूर्ण कार्यात्मक समितियों में कोई क्षेत्रकीय प्रतिनिधित्व नहीं होता (अर्थात विभिन्न उप-विशेषज्ञताओं, दन्त चिकित्सकों फार्मेसी, तत्रिका विज्ञान और जीव-विज्ञानों से एम सी आई में अथवा कोरपोरेट, मानव अधिकारों अथवा व्यवसाय कानून से बी सी आई में)। प्राय: समितियों में किसी खास क्षेत्र, श्रेणी, समूह/समुदाय के प्रति झुकाव प्रतीत होता है। मात्र 21 सदस्यों के साथ बी सी आई जैसा संगठन वास्तव में समावेशी बनने के लिए छोटा है।

5.8.5 इन प्राधिकरणों में सुधार के किसी भी प्रयास के लिए निम्नलिखित चार प्रमुख सिद्धान्तों का पालन करने की जरूरत होगी :

प्रभावशालिता: विनियामक निकाय द्वारा यथासम्भव प्रभावी ढंग से अपने सांविधिक कार्यों का निपटान करने की जरूरत। ये निकाय, प्रमुख पणधारियों से इनपुटों के साथ प्रभावी और जल्द से जल्द आपरेट कर सकते हैं यदि इनका संगठनात्मक ढाँचे का आकार उपयुक्त, सरल और कार्योन्मुखी हो।

समावेशन : प्रमुख पणधारियों के विश्वास और भागीदारी की जरूरत।

जवाबदेही: पणधारियों के प्रति जवाबदेही की जरूरत।

पारदर्शिता: उनके द्वारा लिए गए निर्णयों और कार्रवाई के बारे में खुलेपन की जरूरत।

5.8.6 इन विनियामक निकायों के गठन के संबंध में निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। प्रथमत: निर्वाचित व्यावसायिकों का कुल मिलाकर बहुमत होना चाहिए (व्यावसायिक-नेतृत्व विनियामक के सिद्धान्त के अनुसार) । दूसरे इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए कि व्यावसायिक नेतृत्त्व वाले विनियामकों के आम जनता के साथ भागीदारी से कार्य करना होता है, उनमें साधारण सदस्यों का पर्याप्त अनुपात होना चाहिए (अर्थात 60:40 का अनुपात) । तीसरे, बोर्ड में मनोनीत सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य भी होने चाहिए। जनता और व्यवसाय के प्रति निकाय की जवाबदेही का नवीकरण और उसे सुदृढ़ किया जाना चाहिए। अन्ततः, संसद के प्रति स्पष्ट जवाबदेही होनी चाहिए।

5.8.7 आयोग का मत है कि विनियामक निकायों की साधारण परिषद बड़ी और कार्यकारी परिषद (ई सी) छोटी होनी चाहिए, जिनमें से प्रत्येक की सुपरिभाषित सांविधिक शक्तियां और जिम्मेदारियां होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, 50.60 सदस्यों वाली साधारण परिषद से प्रभावशालिता की जरूरतों और समावेशन व जवाबदेही की जरूरतों के बीच सही संतुलन कायम हो सकेगा। अपने व्यवसाय का निपटान करने के लिए ऐसे निकाय की बैठकें प्राय: आयोजित की जा सकती हैं। इसके आकार से चर्चाधीन मामलों के संबंध में व्यापक परिदृश्य प्राप्त हो सकता है। दूसरी ओर, 20-25 सदस्यों वाली साधारण परिषद के संबंध में गैर-प्रतिनिधिक होने का खतरा हो सकता है। बड़ा निकाय सृजित करने से माडल समावेशी और साथ ही प्रभावी बन सकता है। इससे नीति निर्माण में पणधारियों की भागीदारी सुनिश्चित हो सकती है और लोगों को निकाय के अन्य कार्यकलापों में भाग लेने का अवसर प्राप्त होगा। साधारण परिषद के सांविधिक कार्यों में, कार्यकारी समिति के सदस्य चुनना, अन्य सांविधिक कार्यों में अथवा गैर-सांविधिक नीति समितियों के लिए चयन/मनोनयन करना, कार्यकारी समिति व अन्य समितियों को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए कहना और उन दस्तावेजों की छानबीन/विश्लेषण करना सम्मिलित होगा।

5.8.8 नीति पत्र तैयार करने, नीतियों के कार्यान्वयन और मानीटरन के लिए तथा तत्काल कार्यकारी कार्रवाई करने के लिए 10-15 सदस्यों वाली एक छोटी कार्यकारी समिति उपयुक्त होगी। इस निकाय को, साधारण परिषद द्वारा जारी पारदर्शी स्थायी आदेशों की सीमाओं के अन्दर कार्य करना होगा। पंजीकरण, अभ्यास के मानक तय करना और व्यावसायिकों के खिलाफ शिकायतों पर कार्यवाही करने जैसे मुख्य सांविधिक कार्यों के निपटान की समग्र जिम्मेदारी कार्यकारी समिति की होगी।

5.8.9 जहाँ तक सदस्यों और पदाधिकारियों की कार्यावधि के संबंध है, आयोग का मत है कि किसी भी पदाधिकारी को एक कार्यावधिक से ज्यादा जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। तथापि, परिषद के सदस्यों के मामले में अधिकतम दो कार्यावधि की सीमा होनी चाहिए।

5.8.10 सिफारिशें

क- व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरणों की साधारण परिषद और कार्यकारी समिति को युक्तिसंगत बनाया जाना चाहिए। जहाँ तक व्यवहार्य हो यह उन सभी के संबंध में एकसमान होना चाहिए।

ख- प्रत्येक प्राधिकरण की पर्याप्त बड़ी और प्रतिनिधिक साधारण परिषद होनी चाहिए (आदर्शत: संख्या 50 हो सकती है; ऐसे निकाय से व्यापक परिदृश्य और मतों की विविधता को बढ़ावा मिलता है।)।

ग- कार्यकारी समिति 10 से 15 सदस्यों वाला एक छोटा निकाय होना चाहिए (एक सुसहंत मंच से प्रशासनिक कार्यकुशलता और जवाबदेही सुनिश्चित होती है)।

घ- एक स्पष्ट प्रावधान यह होना चाहिए कि कोई व्यक्ति प्रधान/उप-प्रधान अथवा महासचिव के पद के लिए एक कार्यकाल से अधिक के लिए नहीं चुना जाना चाहिए। तथापि, किसी व्यक्ति को अधिकतम दो कार्यकाल के लिए निकाय का सदस्य चुना जा सकता है।

5.8.11 समितियां/कार्य समूह

5.8.11.1 यद्यपि, सामान्यत: कार्यकारी परिषद/समिति विनियामक निकाय के दिन-प्रतिदिन के समग्र कामकाज के लिए उत्तरदायी होगी, तथापि इसकी सहायतार्थ विशेषज्ञ समितयां/कार्य समूह होने चाहिए। ये विशेषज्ञ समितियां तथा कार्य समूह, अपने कार्यों के निपटान के लिए कार्यकारी परिषद के प्रति

जवाबदेह रहनी चाहिए। उपयुक्त पाए जाने पर ऐसे निकायों में परिषद से बाहर के लोगों को भी सहयोजित किया जा सकता है।

5.8.12 ग्राहक/उपभोक्ता–विनियामक प्राधिकरणों में साधारण सदस्यों के रूप में

5.8.12.1 व्यवसाय से बाहर के प्रमुख पणधारियों की भागीदारी के बिना व्यावसायिक विनियमन प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकते। ऐसे पणधारियों (साधारण सदस्य) की भागीदारी बहुत से विकसित देशों में व्यावसायिक निकायों की एक मूलभूत विशेषता रही है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि व्यवसाय और व्यापक समुदाय के बीच संतुलन बना रहे, ऐसे बहुत से संगठनों में आधे सदस्य साधारण व्यक्तियों में से होते हैं (साधारण व्यक्ति आजकल उन व्यक्तियों को कहा जाता है जो संबंधित विनियामक प्राधिकरण के सदस्यों के रूप में पंजीकृत किए जाने के लिए पात्र नहीं हैं)। बड़ी संख्या में पणधारी प्रतिनिधित्व से प्राधिकरण को विविधता लाने का अवसर प्राप्त होता है, चाहे वह लिंग, क्षेत्र अथवा समाजार्थिक समूहों की दृष्टि से हो।

5.8.12.2 साधारण सदस्यों की नियुक्ति में यू.के. में जनरल मेडिकल काउन्सिल (जी एम सी) द्वारा अपनाई गई पद्धति से इस दिशा में कुछ मार्गदर्शन प्राप्त होता है। प्रिवी काउन्सिल, यू.के. स्वास्थ्य विभाग की सिफारिश पर, आजकल जी एम सी में साधारण सदस्यों को नियुक्त करती है।

5.8.12.3 आयोग का मत है कि पणधारियों की भागीदारी सुनिश्चित करने तथा मतों की विविधता को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से, विनियामक प्राधिकरण के प्रत्येक फोरम में साधारण व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाना चाहिए। एक पूर्व-निर्धारित मापदण्ड के आधार पर ऐसे साधारण सदस्यों की नियुक्ति करने के लिए एक निष्पक्ष पद्धति होनी चाहिए। यह सुनिश्चित किया जा सकता है यदि सरकार संबंधित विनियामक प्राधिकरण के साथ परामर्श करके नियुक्तियां करे।

5.8.12.4 **सिफारिशें**

क– साधारण परिषद और साथ ही कार्यकारी समिति की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि कुल सदस्यों में से 40 प्रतिशत साधारण सदस्य हों।

ख– साधारण सदस्यों का मनोनयन संबंधित मंत्रालय/विभाग द्वारा उपयुक्त विनियामक प्राधिकरण के साथ परामर्श करके, किया जाना चाहिए।

5.9 जवाबदेही और संसदीय निगरानी

5.9.1 स्व:विनियामक प्राधिकरणों को काफी कार्यात्मक स्वायत्तता प्राप्त होती है। यद्यपि, इनकी स्थापना कानून के अन्तर्गत की जाती है, तथापि उनकी जवाबदेही आजकल अस्पष्ट और अधूरी है। कानून में ऐसी कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं है जिसके तहत उन्हें उनके निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके। जनता, संसद, सरकार और व्यवसाय को यह जानने का अधिकार है कि किस प्रकार स्व: विनियामक प्राधिकरण अपने कार्यों का निपटान करते हैं तथा उन्हें जिम्मेदार ठहराया जा सके।

5.9.2 यहाँ मेडिकल व्यवसाय के विनियमन की जाँच करने संबंधी समिति (मेरिसन रिपोर्ट) से उद्धरण देना उपयुक्त होगा, जिसे यू.के. में प्रकाशित किया गया था। रिपोर्ट में कहा गया है कि व्यावसायिक विनियमन:

> *"जनता और व्यवसाय के बीच एक संविदा है ... विधान मंडल-अर्थात संसद, इस संदर्भ में जनता के लिए कार्य करती है और यह निर्णय करना संसद का कार्य है कि इस संविदे की क्या प्रकृति हो तथा इसे किस ढंग से निष्पादित किया जाए"।*

5.9.3 आयोग की राय है कि एक सांविधिक निकाय के रूप में स्व: विनियामक प्राधिकरण की प्रमुख जवाबदेही संसद के प्रति होनी चाहिए, जो जनता की ओर से इसकी शक्तियों और जिम्मेदारियों की परिभाषा करती है।

5.9.4 सिफारिश:

क- स्व:विनियामक प्राधिकरणों को शासित करने वाले कानूनों में एक व्यवस्था होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत विनियामक प्राधिकरण द्वारा एक वार्षिक रिपोर्ट छानबीन हेतु संसद को प्रस्तुत की जानी चाहिए।

6 सहकारिताएं

6.1 प्रस्तावना

6.1.1 "एक सहकारिता व्यक्तियों की एक स्वायत्त एसोसिएशन है, जो एक संयुक्त स्वामित्व वाले और प्रजातान्त्रिक रूप से नियंत्रित उद्यम के माध्यम से, अपनी सामान्य आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करने के लिए स्वैच्छापूर्वक इकट्ठे होते हैं।" एक व्यवसाय उद्यम के रूप में सहकारिताओं के कुछ बुनियादी हित होते हैं, जैसे कि स्वामित्व और नियंत्रण, किन्तु उनके हित सीधे ही उपभोक्ता के हाथों में विहित होते हैं। इसलिए वे विशुद्धत: लाभ अर्जन से जुड़े मूल्यों से इतर कतिपय स्थूल मूल्यों का पालन करती हैं। लाभप्रदत्ता की जरूरत सदस्यों की जरूरतों और समुदाय के व्यापक हितों द्वारा संतुलित होती है। सहकारितापूर्ण आचरण के आधार के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार किए जाने वाले मूल्य हैं: स्व: सहायता, प्रजातन्त्र, समानता, साम्यता और एकता। स्वैच्छिक तथा खुली सदस्यता, प्रजातान्त्रिक नियंत्रण, आर्थिक भागीदारी, स्वायत्तता, प्रशिक्षण और जानकारी तथा समुदाय के लिए चिन्ता कुछेक महत्वपूर्ण बातें हैं जिनके माध्यम से सहकारिताएं अपने मूल्यों को मूर्त रूप प्रदान करती हैं।

6.2 भारत में सहकारिताओं का इतिहास

6.2.1 भारतीय सहकारिता क्षेत्रक ने वर्ष 2007 में अपने अस्तित्व के 103 वर्ष पूरे कर लिए। ये, किसानों की ऋणग्रस्तता और गरीबी की दोहरी समस्याओं का समाधान करने के लिए प्रमुख रूप से एक सरकारी पहल के रूप में उपनिवेशी युग को अन्तिम अवधि के दौरान, अस्तित्व में आईं। इस पहल को "सहकारी ऋण सोसायटी अधिनियम, 1904" नामक 1904 में अधिनियमित एक विधान में औपचारिक रूप दिया गया। अपने अस्तित्व के एक दशक के दौरान इस क्षेत्रक ने एक कड़ी कायम कर ली है जिसमें 5.45 लाख से अधिक अलग-अलग सहकारी संगठन तथा 236 मिलियन से अधिक सदस्य सम्मिलित हैं। संख्या की दृष्टि से यह विश्व भर में एक सबसे बड़ा अभियान है। 34,00,555 मिलियन रुपए के पूंजी आधार ग्रामीण जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में विद्यमानता और देश के लगभग सभी गांवों में फैली अपनी कवरेज के साथ, सहकारिताओं को राष्ट्र के जीवन में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक संगठन के रूप में माना जाने लगा है। सहकारिताओं का उद्देश्य नागरिकों का उद्यम बनना है और परिकल्पना की गई है कि एक कम्पायमान और जोरदार सहकारी अभियान समाज के और अधिक लाभ के लिए सामाजिक पूंजी की सकारात्मक क्षमता का दोहन करने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

6.2.2 1904 के सहकारी ऋण सोसायटी अधिनियम के बाद अनेक समर्थनकारी अधिनियमों का अधिनियमन किया गया जिनमें सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1912 सम्मिलित है, जिनमें ऋण - भिन्न सोसायटियों और संघीय सहकारी संगठनों के निर्माण की व्यवस्था की गई। बोम्बे, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और बंगाल जैसे प्रान्तों ने 1912 के अधिनियम की तरह ही अपने खुद के सहकारी कानूनों का अधिनियमन किया। 1928 में, कृषि संबंधी रायल आयोग ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें सहकारिता क्षेत्र के महत्व पर बल दिया गया तथा टिप्पणी की गई कि "यदि सहकारिता असफल रहती है तो ग्रामीण भारत की सर्वोत्तम उम्मीद नाकाम हो जाएगी", 1942 में, सरकार ने बहु-यूनिट सहकारी सोसायटी अधिनियम का अधिनियमन किया जो सहकारी सोसायटियों की स्थापना और समापन के संबंध में एक समर्थनकारी उपाय था। 1934 में स्थापित भारतीय रिजर्व बैंक के बुनियादी अधिदेश के अन्तर्गत कृषि ऋण इसका एक भाग था। सहकारी ऋण पद्धति के लिए पुनर्वित्त की सुविधाएं उपलब्ध कराकर इसने देश के दूर-दराज के इलाकों में सहकारी अभियान का प्रसार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

6.2.3 आजादी के बाद, सहकारिताओं को नियोजित आर्थिक विकास की कार्यनीति का भाग समझा गण। पन्डित नेहरू ने एक ऐसे भारत की परिकल्पना की जिसमें प्रत्येक गाँव में एक पंचायत, एक सहकारिता और एक स्कूल होगा। [23] तीव्र तथा साम्यतापूर्ण आर्थिक विकास राज्य नीति की प्राथमिकतापूर्ण नीति बन गई। 1960 के दशक के प्रारंभ में, देश भर में सहकारिता विधान में, श्री ए.डी. गोरवाला की अध्यक्षता में गठित अखिल भारत ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति (1951-54) के निष्कर्षों के आधार पर, बड़े परिवर्तन किए गए। समिति की सिफारिशों की एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि राज्य को सहकारी अभियान के प्रसार में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। इन सिफारिशों के आधार पर राज्यों ने संविधान की सूची II प्रविष्टि सं.32, अनुसूची के अन्तर्गत विद्यमान कानूनों में संशोधन किए/नए अधिनियमों का अधिनियमन किया। नए विधानों के अन्तर्गत उन्होंने सहकारी संस्थानों के कार्यकरण में एक बड़ी भूमिका निभाई। एक राज्य से अधिक राज्य के क्षेत्राधिकार वाली सहकारी सोसायटियों को भिन्न-भिन्न कानूनों का सामना करना पड़ा और इसलिए उनके लिए एक पृथक समेकित विधान लागू करने की जरूरत महसूस की गई। तदनुसार, संसद ने संविधान की अनुसूची 7 की सूची I की प्रविष्टि संख्या 44, के अन्तर्गत, 1984 में एक बहु-राज्य सहकारी सोसायटी अधिनियम का अधिनियमन किया।

6.2.4 पिछले वर्षों के दौरान यह बात अधिकाधिक समझी जाने लगी है कि राज्य द्वारा अनुचित हस्तक्षेप, स्वायत्तता की कमी और व्यापक रूप से राजनीतिकीकरण की वजह से इन संस्थानों के कार्यकरण में गम्भीर रूप से बाधा पहुँची है तथा इस क्षेत्र में तत्काल सुधार किए जाने की जरूरत है। विगत दो दशकों के दौरान, सहकारिताओं के विभिन्न मुद्दों की जाँच करने के लिए अनेक समितयां गठित की

[23] ग्रामीण सहकारिताएं संबंधी कार्य बल की स्थापना की घोषणा करते समय भारत के माननीय प्रधानमंत्री का भाषण, नवम्बर 2004

गई थी। चौधरी ब्रह्म प्रकाश समिति (जिसने एक माडल कानून का प्रस्ताव किया था) (1990), मिर्धा समिति (1996), जगदीश कपूर समिति (2000), विखे पाटिल समिति (2001) और वी.एस. व्यास समिति (2001 और 2004) ने इस क्षेत्र के पूरे विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया तथा सहकारिताओं को आत्म-निर्भर स्वायत्त और प्रजातान्त्रिक संस्थानों के रूप में बदलने के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। इन समितियों ने विद्यमान सरकारी प्रभुत्व वाले सहकारिता कानूनों के स्थान पर एक नए जन-केन्द्रिक विधान का अधिनियमन करने की जोरदार वकालत की।

6.2.5 इन सिफारिशों के परिणामस्वरूप तथा सहकारी समुदाय के एक बहुत बड़े भाग की सहायता से, देश के सहकारिता क्षेत्रक में दो बड़ी घटनाएं घटी।

(क) आन्ध्र प्रदेश सरकार ने आ. प्र. परस्पर सहाय्यित सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1955 गठित किया। इसके बाद आठ अन्य राज्यों, यथा बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, जम्मू और काशमीर, कर्नाटक, उड़ीसा और उत्तराखण्ड में ऐसे ही अधिनियमों का अधिनियमन किया गया।

(ख) केन्द्रीय सरकार ने विद्यमान बहु-राज्य सहकारी कानून के स्थान पर एक नई संविधि - बहु-राज्य सहकारी सोसायटी (एम एस सी एस) अधिनियम 2002 का अधिनियमन किया।

6.2.6 भारत सरकार ने 2002 में सहकारिताओं के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति की घोषणा की। राष्ट्रीय नीति का अन्तिम उद्देश्य स्वायत्त, स्वतन्त्र और प्रजातान्त्रिक संगठनों के रूप में सहकारिताओं का विकास और प्रोत्साहित करने के लिए सहायता प्रदान करना है ताकि वे देश के समाजार्थिक विकास में अपनी उचित भूमिका निभा सकें। क्षेत्रीय असंतुलनों में कमी लाना और सहकारी शिक्षा को मजबूत बनाना, सहकारिता प्रबंधन के व्यावसायीकरण के लिए प्रशिक्षण व मानव संसाधन विकास करना भी नीति का उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत सहकारिताओं की भिन्न पहचान को स्वीकारा गया है तथा इसका उद्देश्य राज्यों के लिए एक उपयुक्त प्रशासनिक व विधायी परिवेश की व्यवस्था करने के लिए, उन्हें प्रेरित करके उनके मूल्यों और सिद्धान्तों को समर्थन प्रदान करना है।

6.2.7 भारत में सहकारिताओं का एक खण्डित इतिहास रहा है। आजादी के बाद पहले कुछ दशकों के दौरान इस क्षेत्रक ने हमारे प्राथमिक क्षेत्रक उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान करके अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख भूमिका निभाई। हरित क्रान्ति के जरिए खाद्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करने, नई किस्मों के बीजों के वितरण और नकद ऋण के लिए एक नेटवर्क का निर्माण करने और लोगों के बीच भागीदारी व आशा का माहौल कायम करने में इसने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुजरात में अमुल से शुरू करके इसने

डेयरी क्षेत्रक में भी असाधारण प्रगति की। वर्तमान में, 198 जिला सहकारी दुग्ध उत्पादक यूनियन और 18 राज्य डेयरी संघ, (क) भारत को विश्व में एक सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक राष्ट्र बनाने, और (ख) देश भर में करोड़ों दुग्ध उत्पादक परिवारों की आय में पर्याप्त रूप से वृद्धि करने के लिए, श्रेय के पात्र हैं। किन्तु, इस क्षेत्रक में भी सुस्ती के कुछ संकेत दिखने लगे हैं। बहुत से क्षेत्रों में, उत्पादन स्थिर हो गया है तथा पूंजी निर्माण की दर अपर्याप्त है।

6.3 विद्यमान कमजोरियां

6.3.1 उपरोक्त उपलब्धियों के बावजूद, सहकारिता क्षेत्र, जैसाकि आज अधिकांश राज्यों में इसकी स्थिति है, कमजोर और निष्क्रिय है। अधिकांश सहकारिताएं, व्यवसाय और अपनी पूंजी आवश्यकता दोनों ही के लिए सरकार का संरक्षण प्राप्त करना चाहती हैं। इस संबंध में चिन्ता के दो प्रमुख क्षेत्र हैं :

(i) अफसरशाही तथा सरकारी नियंत्रण : जब उपनिवेशी शासक अधिकारिक रूप से भारत में सहकारिताएं लाए उन्होंने रजिस्ट्रार, सहकारी सोसायटियों के सर्वशक्तिमान पद का सृजन किया, एक ऐसा पद जिसका सृजन सरकार द्वारा इन संस्थानों पर नियंत्रण के अन्तिम उपायों के रूप में प्रचालित करने तथा सहकारी क्षेत्रक को एक जन आन्दोलन के रूप में फलने-फूलने की अनुमति न देने के लिए किया गया था। आजाद भारत की सरकार ने, सहकारिताओं के हितों को समर्थन प्रदान करते हुए न केवल इस प्रमुख स्थिति को बनाए रखा बल्कि विद्यमान प्रणाली में अफसरशाही शक्ति केन्द्रों की जटिल परम्परा को भी और बढ़ावा दिया। ऐसी सरकार नियंत्रित सहकारी अवस्थापना की विद्यमानता से सहकारी आन्दोलन के बुनियादी तर्क को ही नुकसान पहुँचा है।

(ii) सहकारी नेतृत्व का राजनीतिकरण - अधिकांश सहकारी निकायों के बोर्डों में राजनीतिज्ञों का प्रभुत्त्व है। वे ही गलती से सहकारी हैं। उनमें से बहुत से इस वजह से सहकारिताओं में हैं कि वे इस स्थिति का उपयोग अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं को बढ़ाने के लिए करना चाहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो इस क्षेत्र में इसलिए आए हैं क्योंकि उनकी वर्तमान राजनीतिक स्थिति में कमी आई है। पहले प्रकार का आन्दोलन एक सामान्य लक्षण हो सकता है, किन्तु सहकारिताओं में प्रवेश करने वाले राजनीतिज्ञ पद्धति में ह्रास लाते हैं।

6.3.2 इसके अलावा, भारतीय सहकारी क्षेत्रक दो मूल अनिवार्य सहकारी मूल्य कायम करने में असफल रहे हैं। पहला मूल्य स्व: सहायता का है। स्व: सहायता की परिकल्पना सहकारिताओं के एक मूल सिद्धान्त के रूप में की गई है। अपने मूलाधार में ही आन्दोलन बाजार और शासन दोनों ही के विपरीत है। यह

अधिकाधिक समझा जाता है कि ये दोनों संस्थान आम आदमी के हित को संरक्षण प्रदान करने में असफल रहे हैं। एक दृष्टि से दोनों ताकतें ऐसी हैं जिनका सहकारिताओं द्वारा अन्तरंग रूप से विरोध किया जाना चाहिए। ऐसे ाोतों से समर्थन प्राप्त करना अनिवार्यत: आजकल की राजनीतिक जटिलताओं का परिणाम है। यह समझे जाने की जरूरत है कि सरकारें, केन्द्रीय नियोजित अर्थव्यवस्थाओं और मुक्त बाजार व्यवस्था दोनों ही के अन्तर्गत सामान्यत: सहकारिताओं के लिए वित्तीय तथा अन्य सहायता दोनों ही प्रदान करने की अत्यंत उत्सुक रहती हैं और क्षेत्रक शायद प्राय: इस प्रलोभन का शिकार हो जाता है। इस प्रकार सरकार उन पर अपना प्रभुत्व कायम करने में सफल रहती है। इस प्रवृत्ति को उल्टा जाना चाहिए। प्रत्येक सहकारी प्रयास को अनिवार्य रूप से अपने ही संसाधनों पर निर्भर रहना चाहिए चाहे वे कितने ही कम हों। इसका विकास और विस्तार विकासात्मक होना चाहिए।

6.3.3 एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो गुम है सदस्य केन्द्रिकता की है। सहकारिताएं अपनी बुनियादी प्रकृति से ही अन्तर्मुखी संगठन हैं। इनका उद्देश्य सदस्य-समुदाय की सेवा करना है, न कि बहिर्मुखी संगठन जैसे कि लाभ हेतु प्रचालन करने वाले कारपोरेट। एक सहकारी संगठन के कार्यकलापों के अन्तर्गत इसके सदस्यों की जरूरतों पर बल दिया जाना चाहिए। इसके व्यवसाय के उनकी जरूरतों के अनुरूप विकसित किया जाना चाहिए, नीतियां उनके विचारों के अनुसार तैयार की जानी चाहिए और प्रशासन सदस्यों की भागीदारी के अनुसार संचालित किया जाना चाहिए। किन्तु, व्यवहार्यत :- भारत में सहकारिताओं ने उपरोक्त मानदण्डों का पालन नहीं किया है। उभरते विश्व एकीकरण के संदर्भ में, अनुभव किया जाता है कि देश में वैश्वीकरण के दबावों का काफी सीमा तक स्वयं-सेवी/सहकारी प्रयासों में वृद्धि करके समाधान करना होगा। इसीलिए, आर्थिक विकास के साधनों के रूप में स्वयं-सेवी/सहकारी समूहों के विकास के लिए एक इनपुट के रूप में सामाजिक पूंजी के मुद्दे पर चर्चा की जा रही है।

6.3.4 सहकारिता क्षेत्रक में निश्चय ही विश्वास का संकट है। कुछ सेवा क्षेत्रकों से राज्य के हटने की प्रक्रिया से सामान्य तौर पर निजीकरण की बजाए सहकारिता के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए था किन्तु ऐसा नहीं हुआ है। ऐसा समझा जाता है कि वर्तमान रूप में सहकारी क्षेत्रक का न तो मूल्य है और न ही इस चुनौती सामना करने की उसमें दक्षता है। इसलिए हमारे सहकारी संगठनों में स्वयं-सेवा और सदस्य केन्द्रिकता के मूल्य पैदा करने की जरूरत है जिससे कि वे न केवल "उद्यम" के रूप में कार्य करें बल्कि वे वृहद "सहकारी समुदायों" की इकाइयों के रूप में भी कार्य करें।

6.3.5 सहकारिताओं के महत्व को समझते हुए, केन्द्रीय सरकार ने हाल ही में पीछे अनेक पहलें की हैं (अल्पावधिक और दीर्घावधिक ऋण प्रणालियों के संबंध में विशेषज्ञ समितियों का गठन करके, माडल

कानून का एक मसौदा तैयार करके, राज्य सरकारों के साथ सुधार करार निष्पादित करके तथा पुनरूद्धार पैकेजों की घोषणा करके)। तथापि, काफी कुछ किया जाना अभी बाकी है, विशेष रूप से उन राज्यों में जहाँ आगे बढ़ने में हिचकिचाहट है। माननीय प्रधान मंत्री की चिन्ताओं का उल्लेख करना महत्वपूर्ण है जो उन्होंने 2004 में, ग्रामीण सहकारिताओं के पुनरूद्धार संबंधी कार्यबल के गठन की घोषणा करते समय व्यक्त की थी। *"सहकारिता अभियान के कार्य क्षेत्र में विस्तार के बावजूद बहुत सी चुनौतियां हैं जिनका इस क्षेत्रक को सामना करना पड़ रहा है तथा इनका समाधान करना होगा। उदाहरण के लिए सहकारिता अभियान के कवरेज के विस्तार और सघनता में पर्याप्त रूप से सक्षमता है। कुछ स्थानों पर और कुछ राज्यों में हमें सहकारिताओं की तीव्र और सक्रिय गतिविधि देखने को मिलती है तथापि कुछ अन्य राज्यों में उन्होंने अपनी क्षमता का थोड़ा सा भी उपयोग नहीं किया है। दुर्भाग्यवश अनेक स्थानों पर सहकारिताएं केवल कागजों में हैं तथा सहकारिता की भावना का बिल्कुल अभाव है। जहाँ वे विद्यमान भी हैं, उनकी वित्तीय और व्यवसाय स्थिति में पर्याप्त भिन्नता है। इससे इस बात का आश्चर्य होता है कि क्यों सहकारिताएं हमारे कुछेक राज्यों के परिवेश में सफल और फलीभूत नहीं हुई हैं? विभिन्न कार्यकलापों, क्षेत्रकों और इलाकों के बीच सहकारिताओं के निष्पादन में इतनी भिन्नताएं क्यों हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में भावी सार्थक और रचनात्मक कार्रवाई का आधार छिपा है। "*

6.3.6 यह स्वीकार करना भी महत्वपूर्ण है कि लगभग सौ साल पहले जिन परिस्थितियों और हालातों में सहकारिता आन्दोलन की शुरूआत हुई वे ग्रामीण भारत के बहुत बड़े भाग में अभी भी विद्यमान हैं। हमारे 84 % किसान अब भी भूमिहीनों, सीमान्तिक और छोटे जोतधारियों की श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं, उन्हें अपने उत्पाद के लिए संगठित बाजारों की सुलभता नहीं है तथा कृषि ऋण की उपलब्धता अत्यंत अपर्याप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि - भिन्न गतिविधियों के लिए भी ऋण की उपलब्धता अपर्याप्त है। इस पृष्ठभूमि में सर्वाधिक उपयुक्त संस्थागत प्रणाली सहकारिताएं हैं जिनमें उन समस्याओं का समाधान करने की क्षमता है। ये ग्रामीण लोगों को वहनीय दरों पर ऋण उपलब्ध करा सकती हैं। ये अन्य प्राथमिक क्षेत्रक कार्यकलापों में एक बड़ी भूमिका निभा सकती हैं, जैसे कि पशुधन विकास, डेयरी उत्पादन, मात्स्यिकी और कृषि-वानिकी। सहकारिताएं ऋण और बाजार के बीच संयोजन कायम कर सकती हैं और इस प्रकार बहु-प्रयोजन ग्राम संस्थानों के रूप में अपना विकास कर सकती हैं। अन्य सम्बद्ध प्रचालनों में भी, जैसे कि उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री, शर्करा उत्पादन और आवासन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। विधिक, संस्थागत और नीतिगत परिवर्तनों के सभी पहलुओं को कवर करते हुए एक बहु-आयामीय सुधार एजेण्डा अपनाकर इस क्षेत्रक का बड़े पैमाने पर पुनरूद्धार करने और मजबूत बनाने की जरूरत है।

6.4 संवैधानिक संदर्भ

6.4.1 भारतीय संविधान में दो स्थानों पर सहकारिताओं का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है: (i) भाग IV अनुच्छेद 43 में एक निदेशात्मक सिद्धान्त के रूप में, जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार पर ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग अथवा सहकारिता आधार पर कुटीर उद्योग को प्रोत्साहित करने का दायित्व है, और (ii) अनुसूची में संघ सूची में प्रविष्टि 43 और 44 और राज्य सूची में प्रविष्टि 32 के रूप में।

6.4.2 उपरोक्त के अलावा, सहकारिताएं गठित करने के अधिकार को भी "एसोसिएशन अथवा यूनियनें गठित करने के अधिकार" के रूप में, अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) और अनुच्छेद 19(1) (ग) से उत्पन्न मूलभूत अधिकार के रूप में भी समझा जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप में, अपने सदस्यों की कुछ सांझी जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ लोगों द्वारा सहकारिता का गठन किया जाना अन्तर्निहित रूप से अनुच्छेद 19(1) (ग) के अन्तर्गत आता है। उस सीमा तक यदि राज्य ऐसे संस्थान के लिए वित्तीय व अन्य सहायता प्रदान करता है तो संवैधानिक रूप से उसे उस पर कोई नियंत्रण रखने की अनुमति नहीं है। सहकारिताओं को विनियंत्रित अथवा नियंत्रित करने के लिए राज्य द्वारा बनाया गया कोई भी कानून संविधान और मूलभूत अधिकार का उल्लंघन है। तथापि, व्यवहार्यत: सहकारिता क्षेत्रक के विकास में एक भिन्न मार्ग अपनाया गया है और सरकार सदैव यह मानकर चलती है कि वह राज्य सूची में अन्य विषयों की तरह ही सहकारिता क्षेत्रक के विनियमन के लिए भी कानून बना सकती है।

6.4.3 इसी पृष्ठभूमि में तथा सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरूद्धार संबंधी कार्यबल की सिफारिशों के आधार पर संघ सरकार ने 22 मई 2006 को संसद में संवैधानिक (106वाँ संशोधन) विधेयक 2006 प्रस्तुत किया था। प्रस्तावित विधेयक प्रस्तुत करने के संबंध में उद्देश्यों और कारणों के विवरण में कहा गया है कि :

> *" केन्द्रीय सरकार यह सुनिश्चित करने के प्रति प्रतिबद्ध है कि देश में सहकारी सोसायटियां एक प्रजातान्त्रिक, व्यावसायिक, स्वायत्त और किफायती मजबूत ढंग से कार्य करें। आवश्यक सुधार लाने के उद्देश्य से संविधान में एक नया भाग सम्मिलित करने का प्रस्ताव है जिससे कि सहकारी सोसायटियों के कार्यकरण के महत्वपूर्ण पहलुओं, जैसे कि प्रजातान्त्रिक, स्वायत्त और व्यावसायिक कार्यकरण को कवर करते हुए कतिपय प्रावधानों की व्यवस्था की जा सके। संविधान में प्रस्तावित नए भाग का उद्देश्य, अन्य बातों के साथ-साथ संसद को बहु-राज्य सहकारी सोसायटियों के संबंध में और राज्य विधान मन्डलों को अन्य सहकारी सोसायटियों के मामले में, निम्नलिखित मामले निर्धारित करते हुए उपयुक्त कानून बनाने के लिए सशक्त बनाना है, अर्थात:*

(क) प्रजातान्त्रिक सदस्य-नियत्रंण, सदस्य-आर्थिक भागीदारी और स्वायत्त कार्यकरण के सिद्धान्तों के आधार पर सहकारी सोसायटियों की स्थापना, विनियमन और समापन के लिए प्रावधान;

(ख) एक सहकारी सोसायटी के निदेशकों की अधिकतम संख्या का विनिर्धारण करना (21 सदस्यों से अधिक नहीं) ;

(ग) बोर्ड के निर्वाचित सदस्यों और उसके पदाधिकारियों के संबंध में चुनाव की तारीख से पाँच वर्ष की एक निश्चित अवधि का प्रावधान करना;

(घ) अधिकतम छः महीने की सीमा की व्यवस्था करना जिसके दौरान किसी सहकारी सोसायटी के निदेशक मण्डल को निलम्बित रखा जा सकता है;

(ङ.) स्वतन्त्र व्यावसायिक आडिट की व्यवस्था करना;

(च) सहकारी सोसायटियों के सदस्यों को सूचना के अधिकार की सुलभता की व्यवस्था करना;

(छ) राज्य सरकारों को सहकारिता सोसायटियों के कार्यकलापों और लेखों की आवधिक रिपोर्टें प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाना;

(ज) सहकारी सोसायटियों से संबंधित अपराधों के लिए और ऐसे अपराधों के संबंध में दण्ड की व्यवस्था करना।

उम्मीद है कि इन प्रावधानों से न केवल सहकारिताओं का स्वायत्त और प्रजातान्त्रिक कार्यकरण सुनिश्चित होगा बल्कि सदस्यों व अन्य पणधारियों के प्रति प्रबंधन की जवाबदेही भी सुनिश्चित होगी और कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए निवारण की भी व्यवस्था हो सकेगी।"

6.4.4 आयोग ने, प्रस्तावित संवैधानिक संशोधन विधेयक की अच्छाइयों और बुराइयों के बारे में विभिन्न पणधारियों और सहकारी नेताओं/कार्यकर्ताओं द्वारा व्यक्त किए गए विचारों की जाँच की है। उनमें से कुछेक ने जोर देकर कहा है कि यदि विधेयक का उद्देश्य स्वैच्छिक, प्रजातान्त्रिक, व्यावसायिक, सदस्य नियंत्रित सहकारिता को बढ़ावा देना है तो संशोधन से ठीक इसके विपरीत होगा और वास्तव में ये संगठन, इन्हें सरकार पर और अधिक आश्रित बनाकर, सरकारी तंत्र का भाग बन जाएंगे, इस प्रकार इनकी विद्यमानता का पूरा प्रयोजन निष्फल हो जाएगा। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का भी मत है कि "सहकारिताएं, एसोसिएशन, यूनियन और व्यवसाय उद्यम राज्य के भाग नहीं हैं। उनके कार्यकरण के संबंध में संविधान में एक विस्तृत प्रावधान बेढंगा, अनावश्यक और प्रगतिरोधी है क्योंकि इससे नागरिकों की आजादी प्रतिबन्धित होती है।"[24]

[24] 19.4.2005 को राष्ट्रीय सलाहकार परिषद से केन्द्रीय सरकार के नाम पत्र

6.4.5 आयोग, प्रस्तावित संवैधानिक संशोधन विधेयक के उल्लिखित उद्देश्य की सराहना करता है जिसका उद्देश्य सहकारी सोसायटियों का स्वैच्छा और खुली सदस्यता, प्रजातान्त्रिक और सदस्य-केन्द्रिक भागीदारी तथा स्वायत्त कार्यकरण के सिद्धान्तों का निर्माण और प्रोत्साहित करना है। तथापि, मूल प्रश्न यह है कि क्या प्रस्तावित संशोधन इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति है। यह समझे जाने की जरूरत है कि सहकारी सोसायटियां अपनी सांझी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए स्वेच्छा से इकट्ठे हुए व्यक्तियों की स्वायत्त एसोसिएशनें हैं। इन्हें सरकारी तंत्र का भाग नहीं समझा जाना चाहिए- जैसे कि स्थानीय शासन के संस्थान, जिनकी स्थापना 73वें संविधान संशोधन के बाद सरकार की तीसरी प्रणाली के रूप में की गई है। संविधान का उद्देश्य, राज्य की भूमिका की परिभाषा करना, राज्य के विभिन्न अंगों के उचित कार्यकरण के लिए प्रणालियों की व्यवस्था करना और नागरिकों को उनकी आजादी पर अनुचित अतिक्रमणों से संरक्षण प्रदान करना है। इसलिए, संविधान में केवल उस सीमा तक विस्तृत प्रावधान किए जाने चाहिए। वस्तुतः, राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों में देश के शासन के लिए मूलभूत सिद्धान्त निर्धारित किए गए हैं और कानून बनाते समय इन सिद्धान्तों पर अमल करना राज्य का कर्त्तव्य है।

6.4.6 कृषि संबंधी संसदीय स्थायी समिति ने भी प्रस्तावित संशोधन विधेयक के संबंध में अपनी 32वीं रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया था कि सहकारिताओं के संबंध में संविधान में विस्तृत संशोधन आवश्यक नहीं है। समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि "विधेयक को, माडल कानून को लागू करने अथवा लागू न करने वाले राज्यों के लिए कतिपय प्रोत्साहनों और हतोत्साहनों के साथ सहकारिताओं के स्वैच्छिक निर्माण, स्वायत्त कार्यकरण, प्रजातान्त्रिक नियंत्रण और व्यावसायिक प्रबंधन के लिए एक व्यापक केन्द्रीय माडल कानून के रूप में बदला जाना चाहिए।" संविधान में संशोधन के संबंध में समिति ने सिफारिश की कि सहकारिताओं के सशक्तीकरण के संबंध में एक नया अनुच्छेद 43 ख संविधान के भाग IV में जोड़ा जाना चाहिए जिसमें राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धान्त दिए गए हैं तथा जिसे निम्न प्रकार पढ़ा जा सकता है:

> *"43 ख - सहकारिताओं के स्वैच्छिक निर्माण, स्वायत्त कार्यकरण, प्रजातान्त्रिक नियंत्रण और व्यावसायिक प्रबंधन को प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा।"*

समझा जाता है कि केन्द्रीय मंत्रीमंडल ने प्रस्तावित 106वें संवैधानिक संशोधन विधेयक को उपयुक्त रूप से संशोधित करके उपरोक्त के संबंध में अपनी मंजूरी प्रदान कर दी है।

6.4.7 आयोग, स्थायी समिति की उपरोक्त सिफारिश से सहमत है और उसका मत है कि प्रस्तावित संशोधन का उद्देश्य निदेशात्मक सिद्धान्त के रूप में मात्र रूप से एक अनुच्छेद जोड़कर पूरा किया जा

सकता है जिसके तहत राज्य को ऐसे कानून बनाने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जो स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य-प्रेरित और व्यावसायिक सहकारी संस्थान सुनिश्चित करेगा। यह एक नए अनुच्छेद 43 ख के रूप में हो सकता है जैसा कि स्थायी समिति द्वारा सिफारिश की गई है। आयोग ने आगामी पैराग्राफ 6.5.6 में सहकारिताओं के संबंध में एक माडल कानून के अधिनियमन की भी सिफारिश की है।

6.4.8 इसके साथ ही, सहकारिताएं गठित और संचालित करने के अधिकार को, आर्थिक व गैर-आर्थिक प्रयोजनार्थ, और राज्य के नियंत्रण से मुक्त, स्पष्ट शब्दों में एक मूलभूत अधिकार माना जाना चाहिए। यह निम्नलिखित दो प्रकार से किया जा सकता है:

विकल्प – क

यह स्पष्ट करने के लिए कि एसोसिएशन अथवा यूनियन गठित करने के अधिकार के अन्तर्गत सहकारिता गठित करने का अधिकार शामिल है, संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ग) में एक लघु परिवर्तन का समावेश करके।

इस समय 19(1)(ग) को निम्न प्रकार पढ़ा जाता है, "सभी नागरिकों को "एसोसिएशन अथवा यूनियन गठित करने का अधिकार होगा। "

उपरोक्त प्रस्तावित संशोधन के बाद यह निम्न प्रकार पढ़ा जाएगा : "सभी नागरिकों को" एसोसिएशन अथवा यूनियन अथवा सहकारिताएं" गठित करने का अधिकार होगा।

विकल्प–ख

विकल्प के तौर पर इसे अनुच्छेद 19(1)(ज) के रूप में "सहकारिताएं गठित करने का अधिकार" के संबंध में एक पृथक प्रविष्टि जोड़कर भी किया जा सकता है। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने सुझाव दिया है कि 19(1)(छ) के बाद 19(1)(ज) शामिल करके निम्नलिखित संशोधन किया जा सकता है :

"(ज) स्वैच्छा और खुली सदस्यता, प्रजातान्त्रिक सदस्य-नियत्रंण, सदस्य आर्थिक भागीदारी और स्वायत्त कार्यकरण, राज्य नियंत्रण से मुक्त सिद्धान्तों के आधार पर सहकारिताएं गठित और संचालित करना"।

तदनुसार, अनुच्छेद 19(4) में संशोधन करने की जरूरत है जिससे कि विधानमंडलों द्वारा समर्थनकारी कानून बनाए जा सकें। इस समय अनुच्छेद 19(4) निम्न प्रकार पढ़ा जाता है:

"(4) उक्त खण्ड के उप-खण्ड (ग) में कोई बात, किसी विद्यमान कानून के प्रचालन को प्रभावित नहीं करेगी जहाँ तक यह राज्य को, (भारत की प्रभुसत्ता अथवा अखण्डता अथवा) सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता, उक्त उप-खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर समुचित प्रतिबंध, के हित में कोई कानून बनाने को रोकता है अथवा आरोपित करता है।"

संशोधित अनुच्छेद 19(4) निम्न प्रकार पढ़ा जाएगा:

"(4) उक्त खण्ड के उप खण्ड (ग) और (ज) में कोई बात, किसी विद्यमान कानून के प्रचालन को प्रभावित नहीं करेगी जहाँ तक यह राज्य को (भारत की प्रभुसत्ता अथवा अखण्डता अथवा) सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता, उक्त उप-खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार के प्रयोग पर समुचित प्रतिबंध के हित में, कोई कानून बनाने को रोकता है अथवा आरोपित करता है।"

6.4.9 आयोग, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा सुझाए गए संशोधन का समर्थन करता है। सहकारिताएं गठित और संचालित करने के अधिकार को एक मूलभूत अधिकार के रूप में बनाने के लिए एक नया अनुच्छेद 19(1)(ज) जोड़ा जा सकता है। अनुच्छेद 19(4) को तदनुसार संशोधित किया जा सकता है ताकि विधानमंडलों द्वारा सहकारिताओं के संबंध में समर्थनकारी कानून बनाए जा सकें। इसके साथ ही राज्य को ऐसे कानून बनाने के लिए जिनसे स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य-प्रेरित और व्यावसायिक सहकारी संस्थान सुनिश्चित हों, जिम्मेदार ठहराने के वास्ते 43 ख के रूप में एक अनुच्छेद संविधान के भाग IV में जोड़ा जा सकता है। आयोग का मत है कि इन परिवर्तनों से, 73वें और 74वें संशोधनों की तरह बड़े पैमाने पर संवैधानिक संशोधन करने की जरूरत नहीं होगी।

6.4.10 सिफारिशें

(क) संविधान के भाग IV में 43 ख के रूप में एक अनुच्छेद जोड़ा जाना चाहिए जिससे कि राज्य को ऐसे कानून बनाने के लिए जिनसे स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य प्रेरित और व्यावसायिक संस्थान सुनिश्चित करने के लिए राज्य को जिम्मेदार ठहराया जा सके। ऐसी स्थिति में भाग–IX और IX क की पद्धति पर, जिसे 73वें और 74वें संशोधनों द्वारा लागू किया गया था, बड़े पैमाने पर संवैधानिक संशोधन आवश्यक नहीं होंगे। प्रस्तावित अनुच्छेद 43 ख को निम्न प्रकार पढ़ा जा सकता है :

अनुच्छेद 43 ख : सहकारिताओं का सशक्तिकरण : "राज्य, उपयुक्त विधान के जरिए, आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य तरीके के जरिए आर्थिक कार्यकलापों, विशेष रूप से कृषि से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य–प्रेरित और व्यावसायिक संस्थान सुनिश्चित करेगा। "

(ख) आयोग, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा सुझाए गए संशोधनों का समर्थन करता है और यह महसूस करता है कि इससे और साथ ही निदेशात्मक सिद्धान्तों में सुझाए गए संशोधन के साथ, सहकारी संस्थानों को स्वैच्छिक, प्रजातान्त्रिक, व्यावसायिक, सदस्य प्रेरित और सदस्य केन्द्रिक उद्यम बनाने की दिशा में सही कदम होगा। तदनुसार, संविधान में निम्नलिखित संशोधन किए जा सकते हैं :

(i) **अनुच्छेद** 19, 19(1)(ज) **के अन्तर्गत निम्न प्रकार जोड़ा जा सकता है:**

"(ज) स्वैच्छा और खुली सदस्यता, प्रजातान्त्रिक, सदस्य नियंत्रित, सदस्य-आर्थिक भागीदारी के सिद्धान्तों और राज्य नियंत्रण से मुक्त स्वायत्त कार्यकरण के आधार पर सहकारिता गठित और संचालित करने के लिए। "

(ii) **तदनुसार, अनुच्छेद** 19(4) **को निम्न प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए:**

"(4) उक्त खण्ड के उप-खण्ड (ग) और (ज) में कोई बात किस विद्यमान कानून के प्रचालन को प्रभावित नहीं करेगी जहाँ तक यह राज्य को, सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता के हित में भारत की प्रभुत्ता और अखण्डता के हित में आरोपित कोई कानून बनाने से आरोपित अथवा निवारण करेगी, उक्त उप-खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार का इस्तेमाल करने पर उचित प्रतिबंध लगाती है। "

6.5 विधायी संरचना

6.5.1 विधायी परिवेश और संरचना, सहकारी सुधारों का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम है। पर्याप्त रूप से यह महसूस किया जाता है कि देश में विद्यमान सहकारी विधान, भारत में सहकारी आन्दोलन के अधिक सफल होने के पीछे एक प्रमुख कारक है। सहकारिताओं को शासित करने वाले अधिकांश कानून नियंत्रण और जवाबदेही से जुड़ी समस्याओं से पीड़ित हैं। जैसाकि पहले चर्चा की गई है, एम एस सी एस अधिनियम 2002 और नौ राज्यों द्वारा परस्पर सहाय्यित/आत्म-निर्भर/आत्म-पर्याप्त सोसायटी अधिनियमों के अधिनियमन ने सहकारी सोसायटियों के पुनर्गठन और पुनर्संरचना के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है किन्तु अभी तक इन विधानों का प्रभाव मन्द रहा है। इन विधानों में सभी सहकारी मूल्यों और सिद्धान्तों को समाहित किया गया है तथा इनमें सहकारी पहचान को परिरक्षित करने व मजबूत करने के लिए पर्याप्त प्रावधान सम्मिलित हैं। एक सहकारी उद्यम को एक उत्पादक कम्पनी के रूप में कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराने की अनुमति प्रदान करने के लिए

कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों में 2002 में संशोधन किया गया। तथापि, दोहरे नियंत्रण का मुद्दा अभी कायम है।

6.5.2 एम एस सी एस अधिनियम 2002 उन सहकारी सोसायटियों पर लागू होता है जिनके उद्देश्य केवल एक राज्य तक सीमित नहीं हैं (जिनका गठन एक से अधिक राज्यों में सदस्यों के हित के लिए किया गया है) । इस अधिनियम के तहत किसी सोसायटी के पंजीकरण के लिए दूसरी अनिवार्य शर्त यह है कि इसके उप-नियमों में, सहकारी सिद्धान्तों के अनुसार स्व: सहायता और परस्पर सहायता के माध्यम से इसके सदस्यों की सामाजिक और आर्थिक बेहतरी के लिए प्रावधान होने चाहिए। एम एस सी एस अधिनियम का उद्देश्य, प्रतिबन्धात्मक प्रावधानों को दूर करके, सहकारी सोसायटी के शासन में सुधार करना है, जो रजिस्ट्रार और सरकार को अत्यधिक शक्तियां प्रदान करते हैं (जैसे कि निदेश जारी करने, नियम बनाने, मनोनीतों को नियुक्त करने, चुनाव आयोजित करने, विशेष आडिट का निदेश देने आदि की शक्तियां)। अधिनियम के अन्तर्गत, सहकारिताओं के बीच सहयोग, कम्पनियों, निजी और सरकारी क्षेत्रक इकाइयों के साथ नीतिगत गठबंधन व अन्य कम्पनियों में इक्विटी भागीदारी से संबंधित प्रावधान भी सम्मिलित हैं। निष्कर्ष रूप में, इस अधिनियम द्वारा किए गए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को निम्न प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है। [25]

1) अधिनियम के उद्देश्य का विस्तार किया गया है (अधिनियम की भूमिका)।
2) पंजीकरण के लिए प्रक्रिया का सरलीकरण, अर्थात समझे जाने वाले पंजीकरण के लिए प्रावधान।
3) उप-नियम: उप-नियमों के अन्तर्गत कवर किए जाने वाले मामलों को पर्याप्त रूप से संहिताबद्ध कर दिया गया है।
4) सहायक संगठनों के प्रोन्नयन के लिए प्रावधान।
5) सहकारिताओं के विस्तारित कर्त्तव्यों और कार्यों के संहिताबद्धन और पंजीकरण के लिए उचित प्रावधान करते हुए संघीय सहकारिताओं के लिए एक पृथक चेप्टर।
6) अपने सदस्यों, निदेशकों और कर्मचारियों के लिए सहकारी शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करने के लिए सहकारिताओं को सकारात्मक ड्यूटी सौंपना।
7) सदस्यों की अर्हता समाप्त करने के लिए स्पष्ट आधार निर्धारित करना।
8) शेयरों के अंकित मूल्य पर विमोचन हेतु प्रावधान।

[25] सहकारिता विधान और नीतिगत सुधार संबंधी तीसरा समालोचनात्मक अध्ययन, इन्टरनेशनल कोअपरेटिव अलाएंस, एशिया तथा प्रशांत क्षेत्रीय कार्यालय, नई दिल्ली

9) सदस्यों के मंत्री, सांसद और विधान सभा सदस्य बन जाने के बाद उनके द्वारा अध्यक्ष अथवा प्रधान आदि का पद धारण करने पर रोक।

10) चुनाव: समय पर चुनाव कराने की जिम्मेदारी सोसायटी को सौंपी गई है। यदि सोसायटी ऐसा करने में असमर्थ रहती है तो रजिस्ट्रार, सोसायटी की लागत पर चुनाव आयोजित करा सकता है।

11) सहकारी सोसायटी के बोर्ड में केन्द्रीय और राज्य सरकार का नामांकन न्यूनतम एक तक सीमित है, यदि सरकार की शेयर पूंजी 26 % से कम हो और अधिकतम तीन तक, यदि शेयर पूंजी 51 % अथवा अधिक हो।

12) बोर्ड और मुख्य कार्यपालक की शक्तियों और कार्यों को पर्याप्त रूप से संहिताबद्ध कर दिया गया है।

13) एक सहकारिता द्वारा अन्य सहकारिता में निधियों के निवेश की अनुमति दे दी गई है।

14) किसी राजनीतिक दल को किसी प्रकार के धन का अंशदान पूर्ण रूप से निषिद्ध है।

15) ऋणों और उधारों पर प्रतिबंध लगा दिए गए हैं।

16) सोसायटियों को आडिटर नियुक्त करने और अर्हता-प्राप्त चार्टर्ड लेखाकारों, प्रमाणित/ विभागीय लेखा परीक्षकों द्वारा समय पर लेखा परीक्षा आयोजित कराने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। सोसायटी द्वारा तैयार तथा रजिस्ट्रार द्वारा अनुमोदित लेखा परीक्षकों में से लेखापरीक्षक की सेवांए लेने के लिए प्रावधान किया गया है।

17) जिन सोसायटियों में सरकार की शेयर पूंजी 51 प्रतिशत तक अथवा उससे अधिक हो उन सोसायटियों के विशिष्ट मामलों में विशेष लेखा परीक्षा का निदेश देने के लिए केन्द्रीय सरकार को शक्ति प्रदान करना।

18) लेखा परीक्षा आयोजित कराने और निरीक्षण करने की रजिस्ट्रार की स्वमेव शक्ति को समाप्त कर दिया गया है। रजिस्ट्रार को, जाँच आयोजित करने और निरीक्षण कराने के लिए शक्तियां सौंप दी गई हैं, किन्तु सदस्यों, लेनदारों आदि के निर्धारित बहुमत द्वारा विशिष्ट अनुरोध किए जाने पर।

19) मध्यस्थों द्वारा विवादों के निपटान के लिए प्रावधान।

20) सरकार को केवल उन सहकारिताओं की यथापूर्वक निर्वाचित प्रबंधन समितियों का अतिक्रमण

करने की शक्ति प्रदान की गई है जहाँ सरकार कुल शेयर पूंजी में 50 प्रतिशत अथवा अधिक की धारक हो। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं : (क) लगातार चूक करना और (ख) आरोपित डयूटियों के निष्पादन में लापरवाही अथवा सोसायटी ने ऐसा कोई कार्य किया हो जो सोसायटी अथवा इसके सदस्यों के हित के विपरीत हो अथवा जारी निदेशों का पालन करने में असमर्थ रही हो अथवा चूक गई हो, आदि।

6.5.3 ऐसे ही प्रावधान, नौ राज्यों, यथा आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, कर्नाटक और जम्मू और कश्मीर द्वारा पारित परस्पर सहाय्यित/आत्मनिर्भर अधिनियमों में भी सम्मिलित हैं। अन्य राज्य अभी इस मुद्दे पर विचार कर रहे हैं और इस प्रक्रिया में सहकारिता क्षेत्रक की बहाली में बहुमूल्य समय गँवा रहे हैं। इन नौ राज्यों में भी, अभी तक वांछित प्रभाव नहीं दिखाई दिया है जिसका मुख्य कारण यह है कि अधिकांश सोसायटियां अभी भी पुराने अधिनियम द्वारा अधिशासित हैं। उन्हें नए अधिनियम के छत्र के अन्तर्गत आने के लिए प्रोत्साहित करने के वास्ते कोई खास प्रयास नहीं किए गए हैं। इनमें से एक कारण सोसायटियों की वित्तीय क्षमता है; उनके पास अपने देयों का निपटान करने और नई पद्धति के अन्तर्गत आने के लिए संसाधन नहीं हैं। सम्बद्ध मुद्दा यह है कि क्या दो समानान्तर सहकारी कानून आवश्यक हैं अथवा क्या दोनों प्रकार के संस्थानों को अधिशासित करने के लिए एकल मिश्रित विधान हो सकता है। कार्यात्मक दृष्टि से हमारे देश में चल रहे दो भिन्न प्रकार के सहकारी संस्थान हैं। एक प्रकार के वे संस्थान हैं जो दुर्लभ संसाधनों के विभाजन हेतु चैनलों के रूप में सजग सरकारी नीतियाँ और उपायों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए हैं। ये उद्यम न तो प्रतिस्पर्धी हैं और न ही पूर्णत: व्यवसायोन्मुखी। सरकार की पर्याप्त वित्तीय भागीदारी के कारण, इन निकायों का स्वामित्व, प्रबंधन और नियंत्रण पूर्णत: उनके सदस्यों के पास नहीं है। अन्य प्रकार की सहकारिताएं वे हैं जो अनिवार्य रूप से अपने सदस्यों की जरूरतों को पूरा करती हैं। ऐसी सहकारिताओं का गठन उन व्यक्तियों द्वारा किया गया है जो एक संयुक्त स्वामित्व वाले और प्रजातान्त्रिक ढंग से नियमित उद्यम के माध्यम से अपनी साँझी जरूरतें पूरा करने के लिए स्वैच्छापूर्वक इक्ट्ठे हुए हैं। आयोग का मत है कि पहली किस्म के सहकारी संगठन भी महत्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य निष्पादित करते हैं और इसीलिए उन्हें बन्द नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि वे बिलकुल अव्यवहार्य न हो जाएं। क्योंकि वे मुख्यत: दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों के साथ डील करते हैं इसलिए उन्हें पूरी आजादी भी नहीं दी जा सकती। इसके साथ ही, परस्पर सहाय्यित/आत्मनिर्भर और सदस्य प्रेरित सोसायटियों को पूर्णत: स्वायत्त बनाना होगा ताकि वे वांछित परिणाम प्राप्त कर सकें। इस प्रकार दो प्रकार के भिन्न-भिन्न विधान होने चाहिए जो उपरोक्त दो प्रकार के संगठनों

को अपने-अपने क्षेत्राधिकार के अन्दर कार्य करने के लिए समर्थ बना सकें। सार्वजनिक सेवा सहकारिताओं और सदस्य-प्रेरित सहकारिताओं, दोनों के लिए एक ही कानून विधिक रूप से जटिल हो जाएगा। तथापि, सहकारिता पद्धति में इस प्रकार से सुधार करना होगा कि इस क्षेत्रक पर से सरकार का नियंत्रण धीरे-धीरे समाप्त हो जाए।

6.5.4 सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरूद्धार संबंधी कार्यबल ने अपनी रिपोर्ट (दिसम्बर 2004) में सहकारिताओं के संबंध में समर्थनकारी विधानों की विस्तारपूर्वक जाँच की थी और सभी राज्यों द्वारा अपनाए जाने के लिए एक माडल परस्पर सहाय्यित सहकारी सोसायटी अधिनियम सुझाया था। कार्य बल द्वारा सुझाए गए माडल कानून के मसौदे की मुख्य-मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :

(i) कानून, सहकारिता के अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत सिद्धान्तों पर आधारित है और यह सुनिश्चित करता है कि सहकारिताएं एक प्रजातान्त्रिक ढंग से कार्य करें।

(ii) माडल कानून सदस्य-केन्द्रिक है। यह सुनिश्चित करता है कि सदस्यों का उनके संगठन पर नियंत्रण रहे और कि वे जिन्हें चुने उन्हें जवाबदेह ठहरा सकें। यह सदस्यों पर जिम्मेदारियां डालता है तथा उन्हें, अपने द्वारा निश्चित की गई जिम्मेदारियों के आधार पर, अपने मामलों का प्रबंध करने का अधिकार प्रदान करता है।

(iii) यह निर्वाचित निदेशकों को इस प्रकार से जिम्मेदारियाँ सौंपता है कि निर्वाचित पद जिम्मेदारीपूर्ण पद हों न कि केवल शक्ति और प्राधिकार वाले पद। साधारण निकाय के प्रति निदेशकों की जिम्मेदारी अन्तर्निहित है और प्रति चूक को गम्भीरतापूर्वक लिया जाता है। उम्मीद की जाती है कि निदेशक के व्यवहार की उसकी छानबीन हेतु साधारण निकाय को रिपोर्ट की जाएगी।

(iv) माडल कानून में यह स्पष्ट किया गया है कि सहकारी सोसाटियां राज्य द्वारा सृजित नहीं हैं और न ही वे सांविधिक सृजित हैं। इन सोसायटियों की सदस्यता स्वैच्छिक है और इसलिए कम्पनियों, सोसायटियों, ट्रेड यूनियनों तथा अ-संस्थापित एसोसिएशनों की तरह ही प्रत्येक संगठन का चुनाव एक आन्तरिक मामला होना चाहिए।

(v) ऐसे ही कारणों से, इस कानून के अन्तर्गत आडिट बोर्ड की परिकल्पना की गई है। प्रत्येक सहकारी सोसायटी का साधारण निकाय (सभा) एक लेखा परीक्षक की नियुक्ति करेगा तथा लेखापरीक्षक की जिम्मेदारियां स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई हैं। प्रत्येक सदस्य को पिछले वर्ष

के सबंधं में परीक्षित लेखा विवरण की प्रतियां, लेखा परीक्षा आपत्तियों के साथ-साथ, प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य बना दिया गया है।

(vi) स्टाफ की भर्ती करना प्रत्येक सहकारी सोसायटी की जिम्मेदारी होगी। सांझे संवर्गों और भर्ती बोर्डों की परिकल्पना नहीं की गई है। जिस प्रकार से नागरिकों के अन्य संगठन (कम्पनियां, सोसायटियां, ट्रेड यूनियन, अ-संस्थापित एसोसिएशन) स्टाफ की भर्ती और कार्मिक प्रबंधन की जिम्मेदारी लेते हैं उसी प्रकार सहकारी सोसायटियों को भी सभी स्टाफ सम्बद्ध निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए। उम्मीद की जाती है कि श्रम कानून लागू होंगे।

(vii) लाभ (अधिशेष) और हानि (घाटा) सदस्यों के बीच विभाजित किया जाएगा। उम्मीद की जाती है कि सहकारिताएं शब्द के सच्चे अर्थों में व्यावसायिक रूप से प्रबंधित होंगे क्योंकि निदेशकों को प्रत्येक वर्ष साधारण निकाय (सभा) का सामना करना होगा और सदस्यों को अधिशेष/घाटे की हिस्सेदारी की सिफारिश करनी होगी।

(viii) कानून के अन्तर्गत परस्पर सहायता और सदस्यों के बीच विश्वास पर आधारित सहकारी सोसायटियों की स्थापना की परिकल्पना की गई है। यद्यपि सहकारी समितियों को सदस्यों की बचत और जमाओं तथा अन्यों से उधारों को स्वीकार करने की अनुमति है, तथापि उन्हें गैर-सदस्यों से बचतें स्वीकार करने की अनुमति नहीं होगी। यदि सहकारी सोसायटी सार्वजनिक (मत न देने वाले सदस्य) जमा स्वीकार करना चाहें तो उसे भा.रि.बैंक से लाइसेंस प्राप्त करना होगा और ऐसे अन्य विनियामक मानदण्डों का पालन करना होगा जो भा.रि.बैंक द्वारा निर्धारित किए जाएं।

(ix) सदस्यों से देयों की वसूली की पद्धति संस्था अन्तर्नियमों में अन्तर्निहित होनी चाहिए।

6.5.5 आयोग का मत है कि कार्य बल द्वारा सुझाए गए माडल कानून में, सहकारी सोसायटियों से संगत सभी मुद्दों का व्यापक रूप से समाधान किया जाना चाहिए तथा इन संस्थानों को स्वायत्त, स्वैच्छिक, आत्म निर्भर तथा प्रजातान्त्रिक व्यवसाय उद्यमों के रूप में कार्य करने के लिए समर्थ बनाया जाएगा जिससे कि वे अपने सदस्यों की आर्थिक जरूरतों और आकांक्षाओं को पूरा कर सकें।

संयोगवश, केन्द्रीय सरकार ने कार्य बल की रिपोर्ट को पहले ही स्वीकार कर लिया है तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। सहकारिताओं संबंधी राष्ट्रीय नीति को कार्यान्वित करने के लिए कार्रवाई योजना का भी उद्देश्य इस लक्ष्य को प्राप्त करना है।

6.5.6 सिफारिशें

क) सभी राज्यों को (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, कर्नाटक और जम्मू तथा काश्मीर को छोड़कर), सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरूद्धार संबंधी कार्यबल द्वारा सुझाए माडल कानून की पद्धति पर अपने-अपने परस्पर सहाय्यित/आत्म-निर्भर सहकारी सोसायटी अधिनियम अधिनियमित करने के लिए तत्काल उपाय करने चाहिए। जिन राज्यों में ऐसे अधिनियम पहले से ही विद्यमान हैं उन्हें भी कार्य बल द्वारा सुझाए गए माडल कानून की जाँच करनी चाहिए और, आवश्यक होने पर, विद्यमान विधानों में संशोधन करने चाहिए।

ख) अगले कुछेक वर्षों के लिए, (i) हाल ही के अधिनियमों (1995 के बाद) के अन्तर्गत स्थापित परस्पर सहाय्यित/आत्म-निर्भर सहकारी सोसायटियों, और (ii) पुराने नियमों के अन्तर्गत गठित सोसायटियों, जिनमें अभी भी सरकार की वित्तीय हिस्सेदारी है, के साथ पृथक रूप से डील करने के लिए समानान्तर कानूनों की जरूरत है। ऊपर (ii) पर संदर्भित सोसायटियों को धीरे-धीरे अपनी देयताएं समाप्त करने और उन्हें परस्पर रूप से सहाय्यित सोसायटियों के रूप में बदलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

6.6 उत्पादक कम्पनियां

6.6.1 आर्थिक उदारीकरण से सहकारिताएं विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए खुल गई हैं। जबकि अधिकांश उद्योगों को विनियंत्रित और वि-लाइसेंस कर दिया गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि क्यों सहकारिताओं को भी उसी स्तर पर न रखा जाए। सहकारिताएं अपने सदस्यों की जरूरतों को पूरा करने में क्यों समर्थ नहीं रही हैं उसका एक कारण, कुल मिलाकर यह है कि वे अब भी प्रतिबन्धात्मक सहकारी कानूनों द्वारा अधिशासित है। इन कानूनों के अन्तर्गत उन्हें स्वायत्त व्यवसाय इकाइयों के रूप में कार्य करने के लिए बहुत कम अथवा कोई आजादी नहीं है। भारत में सहकारिताओं के सदस्य, जो अधिकांशत ग्रामीण हैं, उनकी सीमित परिसम्पत्तियों, संसाधनों, शिक्षा और उन्नत प्रौद्योगिकी सुलभता की दृष्टि से, पर्याप्त रूप से अलाभ की स्थिति में रहते हैं; वर्तमान प्रतिस्पर्धी स्थिति में, यदि सहकारी उद्यमों को ग्रामीण उत्पादकों की सेवा करनी है तो उन्हें वर्तमान संस्थागत स्वरूप के एक विकल्प की जरूरत है।

6.6.2 इस बात को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने निम्नलिखित के संबंध में जाँच और सिफारिश करने के लिए एक प्रमुख अर्थशास्त्री और पूर्व केन्द्रीय मंत्री डा. वाई. के. अलघ की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति गठित की थी : (क) एक ऐसा विधान तैयार करना जिससे सहकारिताओं की स्थापना

कम्पनियों के रूप में हो सके, और (ख) यह सुनिश्चित करना कि प्रस्तावित विधान के अन्तर्गत, कम्पनियों की तरह ही एक विनियामक रूपरेखा के अन्दर सहकारी व्यवसाय की अनूठी विशेषताओं को शामिल किया जा सके। समिति की सिफारिशों के आधार पर, " कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2002 " के माध्यम से, कम्पनी अधिनियम 1956 में एक नया भाग IX क शामिल किया गया। विधान 6 फरवरी 2003 से लागू हो गया।

6.6.3 कानून में स्पष्टत: निर्धारित है कि भाग IX के प्रावधान कम्पनी अधिनियम के सभी अन्य प्रावधानों व अन्य कानूनों (धारा 758 जेड क्यु) को निरस्त कर देंगे। कम्पनी अधिनियम, उत्पादक कम्पनियों को निजी कम्पनियों की श्रेणी के अन्तर्गत रखता है, किन्तु सदस्यों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाता। इसमें निर्धारित है कि उत्पादक कम्पनी, किसी भी परिस्थिति में सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी नहीं बनेगी अथवा समझी जाएगी। इसके शेयरों की स्टाक एक्सचेंजों में बिक्री नहीं की जा सकती। अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनी कानून की शिथिलनीयता और स्वायत्ता के साथ सहकारिताओं की संस्थागत और दार्शनिक खूबियों को मिला दिया गया है (स्वामित्व उपभोक्ताओं तक सीमित है; शेयरों पर सीमित ब्याज; इक्विटी ट्रेडिंग, संरक्षण का अभाव और पूंजी आधारित नहीं)।

6.6.4 उत्पादक कम्पनी विधान की महत्वपूर्ण विशेषताएं

6.6.4.1 कम्पनी अधिनियम, 1956 के भाग IX क के अन्तर्गत उत्पादक कम्पनी विधान की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नांकित हैं:

- कोई भी दस अथवा अधिक व्यक्ति, जिनमें से प्रत्येक उत्पादक हो, अथवा कोई भी दो अथवा अधिक उत्पादक संस्थान अथवा दस या अधिक व्यक्तियों और उत्पादक संस्थानों का मिश्रण, जो उत्पादक कम्पनी गठित करने के इच्छुक हों, जिनके उद्देश्य विधान में यथा विनिर्दिष्ट हों, कम्पनी अधिनियम, 1956 के भाग IX क के अन्तर्गत एक उत्पादक कम्पनी के रूप में एक संस्थापित कम्पनी गठित कर सकते हैं। प्रकृति से अन्तर-राज्य सहकारिताओं को मिलाकर भी जिनके उद्देश्य एक से अधिक कम्पनियों पर लागू होते हो, भी एक उत्पादक कम्पनी गठित की जा सकती है।
- कानून में यह भी व्यवस्था है कि कम्पनी के संस्था अन्तरनियमों के अन्तर्गत भागीदारी के न्यूनतम स्तर निर्धारित किए जा सकते हैं अथवा जो भाग लेना बन्द कर दें, उन्हें पद धारण करने अथवा मत देने अथवा अपनी सदस्यता को जारी रखने के लिए अपात्र बनाया जा सकता है।

- अलग-अलग सदस्यों अथवा व्यक्तियों और संस्थानों के मिश्रण द्वारा उत्पादक कम्पनी गठित किए जाने के मामले में, प्रत्येक सदस्य का एक मत होगा चाहे उसकी शेयरधारिता कितनी भी हो। मात्र रूप से उत्पादक कम्पनियों द्वारा गठित उत्पादक कम्पनी के मामले में मताधिकार का परिकलन व्यवसाय में भागीदारी के आधार पर किया जा सकता है।

- अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत सहकारिता सिद्धान्तों के अनुरूप, उत्पादक कम्पनी विधान में "परस्पर सहायता सिद्धान्तों" के रूप में कुछेक सिद्धान्त सम्मिलित किए गए हैं। तदनुसार कानून में निर्धारित है कि कम्पनी के संस्था अन्तर-नियमों में निम्नलिखित परस्पर सहायता सिद्धान्त शामिल होंगे :

  क - सदस्यता स्वैच्छिक होगी और सभी पात्र व्यक्तियों के लिए उपलब्ध होगी जो कम्पनी की सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं और सदस्यता की ड्यूटियां स्वीकार करने के इच्छुक हों।

  ख- शेयर पूंजी पर प्रतिफल सीमित होगा।

  ग- उत्पादक कम्पनी के प्रचालनों से उत्पन्न अधिशेष का संवितरण-उत्पादक कम्पनी के व्यवसाय के विकास के लिए; सांझी सुविधाओं; और सदस्यों के बीच संवितरण के लिए, सदस्यों के बीच संवितरित करते हुए, साम्यतापूर्ण ढंग से किया जाएगा, जैसा व्यवसाय में उनकी अपनी-अपनी भागीदारी के अनुपात में अनुमत्य हो।

  घ - पारस्परिकता और परस्पर सहायता की तकनीकों के सिद्धान्तों के आधार पर, सदस्यों, कर्मचारियों व अन्यों की शिक्षा के लिए प्रावधान किया जाएगा।

  ड. - उत्पादक कम्पनी, अन्य उत्पादक कम्पनियों (और ऐसे ही सिद्धान्तों का पालन करने वाले अन्य संगठन) के साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सक्रिय रूप से सहयोग करेगी जिससे कि वे अपने सदस्यों के हितों की सर्वोत्तम सेवा कर सकें।

- कानून, उत्पादक कम्पनी के संस्था अन्तर्नियम के अन्तर्गत, विभाजन, विलयन और अभिसरण, सहायक कम्पनियां स्थापित करने, संयुक्त उद्यम गठित करने आदि के लिए समर्थ बनाता है।

- उत्पादक कम्पनी के शेयरों अथवा किन्हीं अन्य अधिकारों के स्टाक एक्सचेंज में बिक्री नहीं की जा सकती, इस प्रकार यह सुनिश्चित होता है कि उन्हें बहुराष्ट्रिकों अथवा अन्य कम्पनियों द्वारा नहीं लिया जा सकता।

- कानून को अन्तर्गत, बोर्ड के लिए आवश्यक विशेषज्ञ/व्यावहारिक सहायता को ध्यान में रखते हुए, बोर्ड में निदेशकों की कुल संख्या के 1/5 तक विशेषज्ञ निदेशक सहयोजित करने का प्रावधान है।
- निदेशक बोर्ड, उत्पादक कम्पनी का मुख्य कार्यपालक नियुक्त करेगा। उत्पादक कम्पनी के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति, बोर्ड द्वारा उसे प्रत्यायित शक्तियों के अनुसार मुख्य कार्यपालक द्वारा की जाएगी ।
- उत्पादक कम्पनी का निदेशक बोर्ड, समय पर लेखा परीक्षा संचालन, चुनाव और साधारण सभा की बैठकों के आयोजन के लिए जिम्मेदार और जवाबदेह होगा। ,
- विवादों का निपटान मध्यस्थता और समाधान की सादी प्रक्रिया द्वारा किया जाएगा।

6.6.5 अन्य देशों के लिए उदाहरण

6.6.5.1 विश्व को अधिकांश भागों में, जहाँ सहकारिताएं सफल, उत्पादक-स्वामित्व वाले व्यवसाय के रूप में एक बड़ी आर्थिक भूमिका निभाती हैं, वे निगमों के समान ही उसी कानूनी रूपरेखा के अन्दर आपरेट करती हैं। दि नीदरलेण्डस, संयुक्त राज्य, स्विटजरलेण्ड, इटली, डेनमार्क, नार्वे आदि जैसे देशों में यह सच है। न्यूजीलेण्ड में, जहाँ विश्व के सर्वाधिक उत्पादक डेयरी उद्योग हैं, अधिकांश डेयरी कार्य सहकारिताओं द्वारा किया जाता है। जो सहकारी कम्पनी अधिनियम 1996 के अन्तर्गत पंजीकृत हैं। अधिनियम के अन्तर्गत सहकारिताओं को, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्द्धा करते हुए, उत्पादकों की सेवा करने की छूट है।

6.6.6 ईरानी समिति सिफारिशों के निहितार्थ

6.6.6.1 भारत सरकार द्वारा कम्पनी अधिनियम 1956 की पुनर्संरचना करने के लिए गठित जे.जे. ईरानी समिति ने सिफारिश की है कि क्योंकि उत्पादक कम्पनियों का प्रबंधन मुक्त बाजार निर्धारित कम्पनी प्रणाली के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है इसलिए भाग IX क (उत्पादक कम्पनियों से संबंधित) को प्रस्तावित कम्पनी अधिनियम से अलग कर दिया जाना चाहिए तथा उन्हें नियंत्रित करने के लिए एक नया कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। समिति ने टिप्पणी की कि -

> *"उत्पादक कम्पनियों " का प्रशासन और प्रबंधन कम्पनियों के लिए सामान्य रूपरेखा के अनुरूप नहीं है, जहाँ देयताएं, शेयरों/गारन्टियों द्वारा सीमित हैं। "उत्पादक कम्पनी" की शेयरधारिता इसकी हस्तांरणीयता पर प्रतिबंध लगाती है जिससे शेयरधारक, बाजार निर्धारित प्रणाली के*

माध्यम से अपने निर्गम विकल्पों का इस्तेमाल नहीं कर सकते। इस प्रणाली को कारपोरेट नियंत्रण हेतु एक प्रतिस्पर्धी बाजार के अनुरूप बनाना भी व्यवहार्य नहीं है।

अनुभव किया गया है कि उत्पादक कम्पनियां, सीमित देयता कम्पनियों की रूपरेखा और देयता प्रणाली के अन्दर कार्य करने में असमर्थ हैं। कम्पनी के लिए लागू कारपोरेट शासन व्यवस्था को इस प्रणाली पर उपयुक्त रूप से आरोपित नहीं किया जा सकता। सरकार, ऐसी "उत्पादक कम्पनियों" के विनियमन से डील करने के लिए एक पृथक अधिनियम लागू करने पर विचार कर सकती है। इसलिए वर्तमान कम्पनी अधिनियम में भाग IX क को, जिसका शायद ही उपयोग किया गया है और जिससे व्याख्या संबधी उत्पाद पैदा हाने की अधिक सम्भावना है, कम्पनी अधिनियम से अलग किया जा सकता है।"

6.6.7 उत्पादक कम्पनी विधान में प्रस्तावित परिवर्तन

6.6.7.1 कुल मिलाकर उत्पादक कम्पनियों के संबंध में एक नया अध्याय IX क लागू किए जाने से, हमारी अर्थव्यवस्था में विद्यमान वर्तमान मुक्त व्यवसाय परिवेश के अनुरूप, सहकारी क्षेत्रक संस्थानों को एक स्वतन्त्र रूप से काम करने का क्षेत्र प्राप्त हुआ है। कतिपय शर्तों को छोड़कर, जिन्हें अधिनियम में सदस्यों के हित में शामिल किया गया है, उनके कार्यकलापों में सरकारी हस्तक्षेप अब न्यूनतम है।

6.6.7.2 आयोग को पता चला है कि ईरानी समिति की सिफारिशों के आधार पर, केन्द्रीय सरकार एक नये कम्पनी कानून का मसौदा तैयार कर रही है।

6.6.7.3 आयोग का मत है कि कम्पनी अधिनियम के भाग IX क में विद्यमान प्रावधानों की समीक्षा करने और ऐसे परिवर्तन करने की जरूरत है जो उत्पादक कम्पनियों के सुधरे शासन और प्रबंधन के लिए आवश्यक समझे जांए। इस प्रयोजनार्थ, उत्पादक कम्पनियों के संबंध में एक पृथक कानून का अधिनियम करना वांछनीय है, जैसा कि ईरानी समिति द्वारा सिफारिश की गई है। विभिन्न पणधारियों से आयोग को प्राप्त फीडबैक के आधार पर, इसकी राय है कि प्रस्तावित नए विधान में निम्नलिखित परिवर्तन किए जाने की जरूरत है:

- वर्तमान में, उत्पादक कम्पनियों के उद्देश्य प्राथमिक उत्पादों के उत्पादन, प्रसंस्करण, विनिर्माण व अन्य सम्बद्ध कार्यकलापों से संबंधित केवल ग्यारह मदों से संबंधित हैं। उनके विकास और संवृद्धि के हित में, उत्पादक कम्पनियों को कार्यों का एक उदार चार्टर प्रदान

किया जाना चाहिए, उन्हें अपनी तकनीकी और वित्तीय क्षमता के अनुसार कोई भी प्राथमिक कार्यकलाप आयोजित करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

- उनकी कार्यात्मक आवश्यकता और वित्तीय क्षमता पर निर्भर रहते हुए, उत्पादक कम्पनी को कार्यपालक और प्रबंधकीय पद सृजित/समाप्त करने की पूरी आजादी दी जानी चाहिए।
- कम्पनी की लेखा परीक्षा और लेखों के संबंध में अनुपालन आवश्यकताएं भी उसके प्रचालनों के आकार के अनुसार होनी चाहिए।
- कानून के अन्तर्गत निधियों, अधिशेषों/आरक्षितों के निवेश में शिथिलता की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- कानून के अन्तर्गत प्राक्सी मतदान की भी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि चुनाव और आम बैठकें सुचारू रूप से आयोजित हो सकें।

6.6.8 **सिफारिशें :**

क – निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर उत्पादक कम्पनियों के संबंध में एक नया कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए :

i) **उत्पादक कम्पनियों को उनकी तकनीकी तथा वित्तीय क्षमता के अनुसार कोई भी उत्पादक कार्यकलाप आयोजित करने के लिए कार्यों का एक उदार चार्टर उपलब्ध कराया जाना चाहिए ;**

ii) **कानून के अन्तर्गत, निधियों, अधिशेषों/आरक्षितों के निवेश में छूट प्रदान की जानी चाहिए;**

iii) **उत्पादक कम्पनियों को कार्यात्मक आवश्यकताओं और वित्तीय क्षमता पर निर्भर रहते हुए उन्हें कार्यपालक और प्रबंधकीय पदों का सृजन/समाप्त करने में पूरी छूट प्रदान की जानी चाहिए;**

iv) **कम्पनी की लेखा परीक्षा और लेखों के संबंध में अनुपालन आवश्यकताएं उसके प्रचालनों के आकार के अनुरूप होनी चाहिए।**

v) **कानून के अन्तर्गत प्राक्सी मतदान की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि चुनाव और आम बैठकें सुचारू रूप से आयोजित हो सकें।**

ख – कम्पनियों को, कम्पनी अधिनियम, 1956 के भाग IX–क के विद्यमान प्रावधानों के अन्तर्गत और बाद में नए कानून के अन्तर्गत जब उसका अधिनियमन हो जाए, अपने आपको उत्पादक कम्पनियों के रूप में संस्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि वर्तमान परिवेश में यह अधिक व्यवहार्य विकल्प होगा। विद्यमान अन्तर–राज्य सहकारी सोसायटियां अपने आपको उत्पादक कम्पनियों में बदलने की सम्भावना का भी पता लगा सकती हैं।

6.7 सहकारी ऋण और बैंकिंग संस्थान

6.7.1 सहकारी ऋण संस्थान, ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधन एकत्रित करने और ग्रामीण लोगों के लिए सहज ऋण सुलभता प्रदान करने के लिए, एक पद्धति के रूप में अस्तित्व में आए। किन्तु समय के दौरान उनकी वित्तीय स्थिति में काफी गिरावट आ गई। इसके मुख्य कारण हैं : (क) अनुचित राज्य हस्तक्षेप और राजनीति और (ख) प्रबंधन की घटिया कोटि। इस समय, इन संस्थानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे कि - असंतोषजनक संसाधन आधार, बाह्य निधियन पर निर्भरता, अत्यधिक राज्य हस्तक्षेप, नियंत्रणों की बहुलता, विशाल संचयित हानियां, निम्न वसूली, व्यवसाय पहलों का अभाव और क्षेत्रीय असमानता। लगभग आधी प्राथमिक ऋण सोसायटियां (पी ए सी एस), मध्यवर्ती प्रणाली की एक-चौथाई, अर्थात जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक (डी सी सी बी), तथा राज्य-स्तर शीर्ष संस्थानों में 1/6 से कम, अर्थात राज्य सहकारी बैंक (एस सी बी) नुकसान उठा रहे हैं। पद्धति के अन्तर्गत संचयित हानियां कुल 9,100 करोड़ रूपए से अधिक हैं। मार्च 2006 के अन्त में एस सी बी और डी सी सी बी स्तर पर बकाया रहते ऋणों की प्रतिशतता के रूप में गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियां (एन पी ए) क्रमश: लगभग 16 प्रतिशत और 20 प्रतिशत हैं। इसलिए ये संस्थान विद्यमान और सम्भावित सदस्यों, जमाकर्ताओं, उधारकर्ताओं और उधारदाताओं के बीच विश्वास पैदा नहीं करते।[26] इसके अलावा, ग्राम ऋण संस्थान के पुनरूद्धार संबंधी कार्य दल (वैद्यनाथन समिति) ने टिप्पणी की कि "पद्धति की वित्तीय स्थिति कमजोर और गिर रही है। अनुमान है कि 31 मार्च 2003 की स्थिति की अनुसार पी ए सी की संचयित हानियां उपलब्ध अधूरे डाटा के आधार पर लगभग 4595 करोड़ रुपए हैं। डी सी सी बी की स्थिति भी समान रूप से असंतोषजनक है, जहां कुल 4401 करोड़ रुपए की संचयित हानियां हैं और जमाओं में 3100 करोड़ रुपए की कमी आई है। 1990 के दशक प्रारंभ में, कृषि के लिए कुल संस्थागत ऋण में इनकी प्रतिशतता 60 से भी ज्यादा थी, जबकि आजकल उनकी हिस्सा कम होकर लगभग एक -तिहाई हो गया। अपनी स्थिति बहाल करने के उद्देश्य से इन संस्थानों के लिए, (क) विशाल वित्तीय सहायता, और (ख) व्यापक रूप से कानूनी और संस्थागत सुधारों की जरूरत है। "

[26] वित्तीय समावेशन संबंधी डा.सी. रंगानाथन समिति की रिपोर्ट, जनवरी 2008.

6.7.2 सहकारी ऋण संस्थान, अपनी कमजोरियों के बावजूद, अभी भी ग्रामीण भारत (वाणिज्यिक बैंकों (सी बी) और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (आर आर बी) के साथ-साथ) में ऋण और बैंकिंग आवश्यकताओं का एक प्रमुख साधन हैं। नवीनतम "नाबार्ड" सांख्यिकी के अनुसार, वर्ष 2006-07 के दौरान, कृषि क्षेत्रक के लिए कुल ऋण प्रवाह की राशि 2,03,297 करोड़ रुपए (अस्थाई आंकड़े) थी, जिसमें सहकारी ऋण संस्थानों का हिस्सा 42,480 करोड़ रुपए था। इस ऋण प्रवाह में और कैसे विस्तार किया जाए हाल ही के वर्षों में सरकार के लिए एक प्रमुख चिन्ता बनी हुई है। यद्यपि इस दिशा में जोरदार और ठोस प्रयास किए गए हैं तथापि परिणाम निराशाजनक रहे हैं। यह संकट मात्र कृषि क्षेत्रक तक सीमित नहीं है। मुख्यत: असंगठित गैर-कृषि उद्यमों को गम्भीर वित्तीय बहिष्कार का सामना करना पड़ रहा है, जो रोजगार प्रदान करने में भी एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। एन एस एस ओ सर्वेक्षण के 59वें चक्र के अनुसार, सभी ग्रामीण परिवारों में से लगभग 59,98 प्रतिशत, लगभग 51.4 प्रतिशत फार्म परिवार और 78.2 प्रतिशत ग्रामीण गैर-कृषि परिवारों को बैंकिंग सेवाएं सुलभ नहीं हैं।[27] राष्ट्रीय ऋण नीति, 2004 में निर्धारित लक्ष्य की तब से पूर्ति की जा रही है, किन्तु यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ऐसे उधार गैर-निष्पादक परिसम्पत्तियों में न बदल जाएं।

6.7.3 सहकारी ऋण संस्थानों की प्रणाली के अन्तर्गत -अल्पावधिक ग्रामीण सहकारी ऋण प्रणाली (एस टी सी सी एस) और दीर्घावधिक सहकारी ऋण प्रणाली (एल टी सी सी एस) दोनों ही सम्मिलित हैं। अल्प और मध्यावधि ऋण प्रदान करने वाली एस टी सी सी एस, ग्रामीण लोगों के वित्तीय समावेशन के लिए अत्यंत संगत है। इस समय, लगभग एक लाख ग्राम स्तर प्राथमिक कृषि सोसायटियां (पी ए सी एस), 368 जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक (डी सी सी बी), 12858 शाखाओं के साथ हैं जो प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को अल्पावधिक और मध्यावधिक कृषि ऋण उपलब्ध करा रहे हैं। दीर्घावधिक सहकारी प्रणाली के अन्तर्गत, 31 मार्च 2005 की स्थिति के अनुसार, 19 राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण सहकारी बैंक (एस सी ए आर डी बी), 2609 प्रचालन इकाइयों के साथ, सम्मिलित हैं, जिनमें 788 शाखाएं और 772 प्राथमिक सहकारी कृषि और ग्रामीण सहकारी बैंक (पी सी ए आर डी बी) 1049 शाखाओं के साथ सम्मिलित हैं।[28] इस प्रकार, प्रत्येक छ: गाँवों के लिए एक पी ए सी एस है तथा 12 करोड़ ग्रामीण लोगों की कुल सदस्यता के साथ यह विश्व में एक सबसे बड़ी ग्रामीण वित्तीय पद्धति है। यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों और आर आर बी के नेटवर्क में भी तेजी से विस्तार हुआ है और अब उनकी लगभग 50,000 शाखाएं हैं, ग्राहकों की संख्या की और छोटे व सीमान्तिक किसानों व अन्य कमजोर घटकों के लिए सुलभता दोनों ही दृष्टि से उनकी पहुंच सहकारिताओं से भी कम है। कृषि ऋण खातों की संख्या की दृष्टि से एस टी सी सी एस के खाते वाणिज्यिक बैंक और आर आर

[27] "रूरल क्रेडिट स्ट्रक्चर्स नीड्स जेनविन रीवाइटेलाइजेशन, इकानोमिक एण्ड पालिटिकल वीकली" मई 19, 2007,
[28]वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07, कृषि और सहकारिता विभाग

बी सभी को मिलाकर 50 प्रतिशत से अधिक हैं। प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से यह भारत की कुल आबादी के लगभग आधे को करते हैं।[29]

6.7.4 उपरोक्त संकेतकों के आधार पर, सहकारी संस्थान, ग्राहकों की संख्या और छोटे व सीमान्तिक किसानों की सुलभता दोनों ही दृष्टि से, गांवों तक उनकी पहुंच के कारण, ग्रामीण वित्त की बहाली के लिए एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थान बने रहेंगे। तथापि, आजकल सहकारी ऋण और बैंकिंग प्रणाली को प्रबंधकीय और साथ ही वित्तीय दोनों मोर्चों पर अत्यधिक बाधा का सामना करना पड़ रहा है। इनकी कमजोरियों को दूर करने तथा उनका ग्रामीण ऋण और बैंकिंग अवस्थापना के सु-शासित व कम्पायमान साधन के रूप में सुधार करने की तत्काल जरूरत है।

6.7.5 जैसा कि पैराग्राफ 6.2.4 में पहले ही कहा गया है, इन संस्थानों के संबंध में सुधार उपाय सुझाने के लिए विगत में अनेक समितियां गठित की गई हैं, जैसे कि 2000 में कपूर समिति, 2001 में व्यास समिति, 2001 में विखे पाटिल समिति, 2004 में पुन: व्यास समिति, 2004 में अल्पावधिक ऋण सबंधी वैद्यनाथन समिति और 2006 में दीर्घावधिक ऋण संबंधी ऐसी ही एक समिति। अल्पावधिक और दीर्घावधिक सहकारी ऋण प्रणाली की बहाली के संबंध में कार्य बल की रिपोर्टों (प्रो. वैद्यनाथन समिति) में एक कार्यान्वयन योग्य कार्रवाई योजना सुझाई गई है जिसके अनुसार राज्यों को उनके सहकारी संस्थानों के पुन: पंजीकरण के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता का प्रस्ताव किया गया है। यह उनकी ओर से कुछेक महत्वपूर्ण कानूनी और संस्थागत सुधारों की स्वीकृति के अध्यधीन है। कार्य बल की सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया है तथा देश भर में उन्हें एक समयबद्ध ढंग से कार्यान्वित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। मुख्य सिफारिशें हैं:

I. अल्पावधि के लिए 14,839 करोड़ रुपए की एकबारगी वित्तीय सहायता तथा 4837 करोड़ रुपए दीर्घावधि ग्रामीण सहकारी ऋण संस्थानों के लिए। पैकेज का संघ और राज्यों के बीच विभाजन किया जाएगा।

II. पुनरूद्धार पैकेज का उद्देश्य है: (क) पद्धति को स्थिति के स्वीकार्य स्तर तक लाने के लिए कानूनी और वित्तीय सहायता प्रदान करना; (ख) इसके प्रजातान्त्रिक, आत्म-निर्भर और सुचारू कार्यकरण हेतु आवश्यक कानूनी और संस्थागत सुधार कार्यान्वित करना; और (ग) सहकारी संस्थानों की प्रबंधन कोटि सुधारने के लिए उपाय करना।

[29]वित्तीय समावेशन के संबंध में डा. सी. रंगराजन समिति की रिपोर्ट, जनवरी 2008

III. बैंकिंग विनियम अधिनियम और राज्यों के सहकारी सोसायटी अधिनियमों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि भारतीय रिजर्व बैंक जमा स्वीकार करने वाले सहकारी बैंक के लिए विनियम और मार्गनिदेश तैयार करने में समर्थ हो सके।

IV. सहकारी ऋण संस्थानों के प्रबंधन में सुधार करने के लिए राज्यों के सहकारी सोसायटी अधिनियमों, बैंकिंग, विनियमन अधिनियमन और "नाबार्ड" अधिनियम में और व्यापक संशोधन सुझाए गए हैं।

V. राज्यों द्वारा एक माडल सहकारी कानून का अधिनियमन किया जाना है। यदि कोई राज्य माडल अधिनियम पारित न करने का निर्णय लेता है तो माडल कानून की महत्वपूर्ण बातों का समावेश करते हुए कृषि और ग्रामीण ऋण सोसायटियों के संबंध में एक पृथक चेप्टर राज्य के विद्यमान सहकारी विधान में शामिल किया जा सकता है।

VI. पुनरूद्धार पैकेज सशर्त होगा और उससे सम्बद्ध कानूनी व संस्थागत सुधारों को कार्यान्वित करने पर उसे जारी किया जाएगा। राज्यों को इसके लिए दो वर्ष की अवधि का समय दिया गया है।

6.7.6 यह भी निर्धारित किया गया है कि क्योंकि संशोधनों पर अमल करने में समय लगेगा इसलिए राज्य सरकारें निम्नलिखित के जरिए सुधारों की प्रक्रिया में तेजी ला सकती है।[30]

(i) वित्तीय सेवाओं के सभी उपभोक्ताओं के लिए, सहकारी बैंकों के अलावा सहकारिताओं में जमाकर्ताओं सहित, पूर्ण मतदान सदस्यता अधिकार सुनिश्चित करना।

(ii) सहकारिताओं के सभी वित्तीय व आन्तरिक प्रशासनिक मामलों में राज्य हस्तक्षेप को दूर करना।

(iii) सहकारिताओं में राज्य सरकार इक्विटी पर 25 % की अधिकतम सीमा की व्यवस्था करना तथा सहकारी बैंकों के बोर्डों में भागीदारी को एक मनोनीत व्यक्ति तक सीमित करना। कोई भी राज्य सरकार अथवा कोई सहकारिता अपनी इक्विटी में और कमी करना चाहे तो वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र होगी और सहकारिता को ऐसा करने से नहीं रोका जाएगा।

(iv) राज्य सहकारी सोसायटी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत सहकारिताओं को समानान्तर अधिनियम अपनाने की छूट (जहाँ कहीं उसका अधिनियमन किया गया हो)।

[30]http//www.nabard.org/department/period.hkg.pdf2008

(v) वित्तीय मामलों के संबंध में प्रतिबन्धात्मक आदेश वापस लेना।

(vi) सहकारिताओं को सभी तीनों प्रणालियों में किसी भी विनियंत्रित वित्तीय संस्थान से ऋण लेने की अनुमति देना और न कि अनिवार्य रूप से केवली ऊपरी प्रणाली से और उसी प्रकार, अपनी जमाओं को अपनी इच्छानुसार किसी भी विनियंत्रित वित्तीय संस्थान के पास रखना (एक सीमा से अधिक)। ऊपरी सीमा प्रत्येक इकाई अथवा इकाइयों की श्रेणी के लिए राज्य सरकार/ रजिस्ट्रार, सहकारी सोसायटी द्वारा निश्चित की जा सकती है।

(vii) समानान्तर अधिनियम (जहाँ कहीं उसका अधिनियमन किया गया हो) के अन्तर्गत पंजीकृत सहकारिताओं को पुराने सहकारी सोसायटी अधिनियम के अन्तर्गत ऊपरी प्रणाली के सदस्य बनने और इसके विपरीत की अनुमति देना।

(viii) बोर्ड का अतिक्रमण करने की राज्य सरकार की शक्ति को सीमित करना।

(ix) विद्यमान बोर्ड की कार्यावधि समाप्त होने से पहले समय पर चुनाव सुनिश्चित करना।

(x) सहकारी बैंकों पर विनियामक शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए भा. रि. बैंक को सुविधा प्रदान करना।

(xi) भा. रि. बैंक के निदेशानुसार, सभी वित्तीय सहकारिताओं के लिए, पी ए सी एस सहित, विवेकपूर्ण मानदण्ड, पूंजी के अनुपात में जोखिम-भारित परिसम्पत्ति अनुपात (सी आर ए आर) सहित।

6.7.7 बैंकिंग विनियमन अधिनियम, 1949 में सुझाए गए महत्वपूर्ण संशोधन निम्नलिखित हैं :

(i) जहाँ तक विनियामक मानदण्डों का संबंध है, सभी सहकारी बैंक वाणिज्यिक बैंकों के समकक्ष होंगे।

(ii) सहकारी बैंकों के बोर्डों के चयन के लिए भा. रि. बैंक उपयुक्त और उचित मापदण्ड निर्धारित करेगा। तथापि, ऐसा मापदण्ड, प्राथमिक सहकारिताओं की सदस्यता की प्रकृति से भिन्न नहीं होगा जो डी सी सी बी और एस सी बी के सदस्य हैं।

(iii) तथापि, वित्तीय संस्थानों के रूप में उन्हें बोर्ड स्तर पर किसी न किसी प्रकार की सहायता की जरूरत होगी। इसलिए भा. रि. बैंक सहकारी बैंकों के बोर्डों में व्यावसायिकों के लिए मापदण्ड निर्धारित करेगा। यदि, ऐसी व्यावसायिक अर्हताओं अथवा अनुभव वाले सदस्य

सामान्य मतदान प्रक्रिया में नहीं चुने जाते तो बोर्ड द्वारा उसके लिए ऐसे व्यावसायिकों को सहयोजित करना होगा और उन्हें पूर्ण मताधिकार होगा।

(iv) सहकारी बैंकों के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों (सी ई ओ) को संबंधित बैंकों द्वारा खुद नियुक्त किया जाएगा और न कि राज्य सरकार द्वारा। तथापि, क्योंकि ये बैंकिंग संस्थान हैं इसलिए नियुक्त किए जाने वाले सी ई ओ की न्यूनतम अर्हताएं भा. रि. बैंक द्वारा निर्धारित की जाएंगी तथा सहकारी बैंक द्वारा सी ई ओ के पद के लिए प्रस्तावित नाम को भा. रि. बैंक द्वारा अनुमोदित किया जाएगा।

(v) सहकारी बैंकों को छोड़कर, सहकारिताएं भा. रि. बैं. द्वारा यथाअनुमोदित, कोई गैर-वोटिंग सदस्य जमा स्वीकार नहीं करेंगी। ऐसी सहकारिताएं अपने पंजीकृत नाम में "बैंक", "बैंकिंग", "बैंकर" अथवा "बैंक" शब्द से लिए गए किसी अन्य नाम का उपयोग नहीं करेंगी।

6.7.8 एस टी सी सी एस संबंधी कार्य दल की रिपोर्ट पर राज्य सरकारों व अन्य पणधारियों के साथ विस्तृत रूप से चर्चा करने के बाद, केन्द्रीय सरकार ने एक सर्वसम्मत पुनरूद्धार पैकेज तैयार किया है और उसे कार्यान्वयन हेतु राज्यों को भेजा है। दीघावधिक सहकारी ऋण प्रणाली (एल टी सी सी एस) के संबंध में कार्यबल की सिफारिशों पर भी इसी पद्धति के अनुसार चर्चा चल रही है और दीर्घावधिक उधार देने वाले संस्थानों के लिए भी एक पुनरूद्धार पैकेज तैयार किया जा रहा है।

6.7.9 एस टी सी सी एस के लिए उपरोक्त पैकेज के अन्तर्गत कानूनी और संस्थगत सुधार लागू करने पर जोर दिया गया है जिससे सहकारिताओं को स्वायत्त, सदस्य-केन्द्रिक और सदस्य-शासित संस्थानों के रूप में कार्य करने में मदद मिलेगी। इन सुधारों से वित्तीय संसाधनों और निवेश अवसरों की व्यापक सुलभता सुनिश्चित होगी, प्रचालनों में और साथ ही संघीय संरचनाओं के लिए अनिवार्य सम्बद्धन में भौगोलिक प्रतिबंध समाप्त होंगे और सभी स्तरों पर सहकारिताओं को प्रशासनिक स्वायत्तता उपलब्ध होगी। 31 मार्च 2004 की स्थिति के अनुसार एस टी सी सी एस में संचयित हानियों को कवर करने के लिए संसाधन प्रदान करने के पैकेज के अन्तर्गत सहकारिताओं को 7 प्रतिशत के सी आर ए आर के न्यूनतम स्तर तक ले जाने और लेखांकन के कम्प्यूटीकरण और मानीटरन पद्धति की लागत वहन करने तथा एस टी सी सी एस के सभी स्तरों पर विशिष्ट मानव संसाधन विकास पहलों की भी व्यवस्था की गई है। भारत सरकार, राज्य सरकारों और सहकारी ऋण सोसायटियों के बीच संचयित नुकसान का विभाजन, किसी मनमाने अनुपातों की बजाए नुकसान की उत्पत्ति की अवधारणा पर आधारित है।

6.7.10 "नाबार्ड" को, सभी राज्यों में पुनरूद्धार पैकेज को कार्यान्वित करने के लिए जिम्मेदार कार्यान्वयन एजेन्सी के रूप में पदनामित किया गया है। इस प्रयोजनार्थ "नाबार्ड" में "सहकारिता पुनरूद्धार और सुधार विभाग" (डी सी आर आर) नामक एक विशेष विभाग की स्थापना की गई है। "नाबार्ड", ब्योरा तय करने के लिए राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तरों पर कर्तव्यनिष्ठ जनशक्ति भी उपलब्ध करा रहा है। एक राष्ट्रीय कार्यान्वयन और मानीटरन समिति (एन आई एम सी) न केवल पैकेज के कार्यान्वयन का नियमित रूप से मानीटरन करती है बल्कि नीतिगत और प्रचालनात्मक मामलों के संबंध में आवश्यक निर्णय भी लेती है।

6.7.11 किसी राज्य में पुनरूद्धार पैकेज को कार्यान्वित करने की प्रक्रिया, भारत सरकार, भागीदार राज्य सरकार और "नाबार्ड" के बीच सहमति ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से शुरू होती है। सहमति ज्ञापन का मसौदा एन आई एम सी द्वारा तैयार किया गया है। नीति अथवा प्रचालनात्मक मुद्दों के संबंध में किसी नए सुझाव को उसके निष्पादन के समय ज्ञापन में सम्मिलित किया जा सकता है। विभिन्न अधिनियमों, नियमों, उप-नियमों आदि में संशोधन करते समय भी ऐसे सुझावों को कार्यरूप दिया जा सकता है। राज्य विशिष्ट मुद्दे, जो अन्य राज्यों के लिए समान नहीं हैं और सहमति ज्ञापन की भावना के विरूद्ध नहीं हैं अथवा पुनरूद्धार पैकेज को राज्य सरकार के विकल्प पर ज्ञापन में सम्मिलित किया जा सकता है। पन्द्रह राज्यों, यथा आन्ध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालेण्ड, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश और प. बंगाल, में पैकेज का कार्यान्वयन शुरू हो गया है जिन्होंने त्रिपक्षीय ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं।[31]

6.7.12 एक ऐसा भी दृढ़ मत है कि वैचारिक रूप से "सहकारी और "बैंकिंग" इक्ट्ठे नहीं मिलते हैं। सहकारिता, सदस्य-केन्द्रित, सदस्य -उन्मुख और सदस्य-नियंत्रित होती है। इसका उद्देश्य मात्र रूप से अपने सदस्यों की सेवा करना है जो सभी इसके संरक्षक और सेवाओं के उपभोक्ता हैं, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक उपभोक्ता सदस्य होना चाहिए और प्रत्येक सदस्य को एक उपभोक्ता होना चाहिए। इसके विपरीत बैंकिंग संस्थान के कहीं अधिक ग्राहक होते हैं और एक यह ऐसा संगठन है जो सार्वजनिक जनता के क्षेत्र के तहत है।

6.7.13 उपरोक्त चिन्ताओं को समझते हुए आयोग का मत है कि एस टी सी सी एस के संबंध में वैद्यनाथन समिति रिपोर्ट की सिफारिशों के संबंध में तैयार पैकेज के कार्यान्वयन से सहकारी ऋण संस्थानों को बहाल और सुदृढ़ करने में काफी मदद मिलेगी। जिन राज्यों ने अभी तक सहमति ज्ञापन (एम ओ यू) पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं उन्हें बिना कोई समय गवांए ऐसा करने के लिए समझाया जाना चाहिए। आयोग

[31]www.nabard.org.

का यह भी मत है कि केन्द्र और राज्य सरकारों दोनों ही की ओर से उपरोक्त सिफारिशों के कार्यान्वयन पर कडी नजर रखे जाने की जरूरत है।

6.7.14 एल टी सी सी एस संबंधी कार्य बल की रिपोर्ट के सबंध में भी ऐसी ही कार्रवाई शीघ्र पूरी की जानी चाहिए।

6.7.15 सिफारिशें

क – वैद्यनाथन समिति रिपोर्ट के आधार पर तैयार अल्पावधि ग्रामीण सहकारी ऋण प्रणाली (एस टी सी सी एस) के संबंध में पुनरूद्धार पैकेज पर अमल करने की प्रक्रिया तत्काल पूरी की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख उपाय सम्मिलित हैं :

i) जिन राज्यों ने इस प्रयोजनार्थ सहमति ज्ञापन (एम ओ यू) पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं उन्हें बिना कोई समय गवांए ऐसा करने के लिए कहा जाना चाहिए।

ii) बैंकिंग विनियमन अधिनियम, "नाबार्ड" अधिनियम और राज्य सहकारी सोसायटी अधिनियमों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि सहकारी ऋण संस्थानों के प्रबंधन/अधिशासन में सुधार हो सके।

iii) राज्यों द्वारा एक माडल सहकारी कानून अधिनियमित किए जाने की जरूरत है। जो राज्य माडल अधिनियम पारित नहीं करना चाहते उन्हें अपने विद्यमान सहकारी विधान में माडल कानून के महत्वपूर्ण प्रावधानों को शामिल करते हुए, कृषि और ग्रामीण ऋण सोसायटी के संबंध में एक पृथक चेप्टर लागू करना चाहिए।

ख– दीर्घावधिक सहकारी ऋण प्रणाली (एल टी सी सी एस) के संबंध में इसी समिति की सिफारिशों के संबंध में ऐसे ही उपाय एक समयबद्ध ढंग से किए जाने चाहिए।

7 एक एकीकृत सामाजिक नीति की दिशा में

7.1 भारत के लोग भाग्यशाली हैं कि उन्हें अपना भविष्य तय करने में हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान में प्रतिपादित सिद्धान्तों द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त है जो हमारे आजादी के संघर्ष में सबसे आगे रहे थे। उनकी दूरदृष्टि को 15 अगस्त 1947 को पण्डित नेहरू द्वारा भारत के लोगों के समक्ष प्रस्तुत ऐतिहासिक शब्दों से प्रेरणा प्राप्त हुई कि "बहुत साल पहले हमने अपने भाग्य के साथ एक वायदा किया था और अब समय आ गया है कि हम अपने उस वचन को पूरा करेंगे।" यह देश के लोगों के लिए एक संदेश था कि हम भारत की सेवा के प्रति और मानवता के बड़े हित के लिए समर्पित हों। यह सभी नागरिकों के लिए एक आह्वान था "भारत के आम आदमी, किसानों और कामगारों के लिए प्रयास करने का, आजादी और अवसर पैदा करने का; गरीबी, अज्ञानता और बीमारी से संघर्ष और उसे समाप्त करने का; एक समृद्ध प्रजातान्त्रिक तथा प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करने का; तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थान कायम करने का जिससे प्रत्येक आदमी और औरत के लिए न्याय और जीवन की पूर्णता सुनिश्चित हो", विशिष्ट रूप से, इस देश के लिए परिकल्पित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों में शामिल किया गया है जो हमारे संविधान की एक अनूठी विशेषता है। वस्तुत:, इसका उल्लेख एक अहस्तान्तरकरणीय मानव अधिकार के रूप में विकास के अधिकार के संबंध में संयुक्त राष्ट्र अभिसमय के आमुख में किया गया है।

7.2 न्यायोचित और निष्पक्ष समाजार्थिक व्यवस्था के प्रोन्नयन को प्रभावित करने वाले राज्य नीति के निदेशात्मक सिद्धान्तों के कुछेक महत्वपूर्ण और संगत अनुच्छेद निम्नलिखित हैं

अनुच्छेद – 38 : लोगों के कल्याण के प्रोत्साहन के लिए राज्य द्वारा सामाजिक व्यवस्था कायम करना

राज्य, यथासंभव प्रभावी ढंग से सामाजिक व्यवस्था कायम और संरक्षित करके लोगों का कल्याण प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय द्वारा राष्ट्रीय जीवन की संस्थाओं का निर्माण होगा।

राज्य, विशेष रूप से आय में असमानताओं को न्यूनतम बनाने का प्रयास करेगा और विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले अथवा भिन्न-भिन्न व्यवसायों में लगे न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि लोगों

के समूहों के बीच स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 39 – राज्य द्वारा पालन किए जाने वाले नीति के कुछ सिद्धान्त

राज्य, विशेष रूप से, अपनी नीति को निम्नलिखित की प्राप्ति की दिशा में लगाएगा:

क) कि नागरिकों को, पुरूषों और स्त्रियों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधनों को अधिकार होगा;

ख) कि समुदाय के सारवान साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण को सर्वोत्तम ढंग से आम भलाई के लिए विभाजित किया जाएगा;

ग) कि आर्थिक पद्धति के प्रचालन के फलस्वरूप सामान्य के नुकसान के लिए सम्पदा और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण नहीं होगा;

घ) कि पुरूषों और स्त्रियों, दोनों के लिए एकसमान कार्य के लिए एकसमान वेतन होगा;

ड.) कि कामगारों, पुरूषों और महिलाओं की स्थिति और शक्ति तथा बच्चों की अल्प आयु का दुरूपयोग न हो तथा उसके नागरिकों को आर्थिक जरूरत के कारण ऐसे व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य न होना पड़े जो उनकी आयु अथवा शक्ति के लिए अनुपयुक्त हों, और

च) कि बच्चों को स्वस्थ ढंग से और आजादी व सम्मान की स्थितियों में अवसरों और सुविधाओं का विकास करने का अवसर प्राप्त हों तथा कि बच्चों और युवाओं को दोहन के विरूद्ध तथा नैतिक व सारवान परित्याग के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किया जाए।

अनुच्छेद 41 – कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने और कतिपय मामलों में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार

राज्य, अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के अन्दर, कार्य करने, शिक्षा प्राप्त करने और बेरोजगारी, वृद्धावस्था, रूग्णता और अयोग्यता के मामलों में तथा अल्पसेवित जरूरत के अन्य मामलों में सार्वजनिक सहायता का अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रभावी प्रावधान करेगा।

अनुच्छेद 45–बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य

राज्य, इस संविधान की शुरूआत से दस वर्ष की अवधि के अन्दर, सभी बच्चों के लिए उनके द्वारा चौदह वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।

7.3 इन सिद्धान्तों के आधार पर भारत ने आर्थिक विकास का एक माडल अपनाया है और पंचवर्षीय योजनाएं तैयार की हैं। आयोजनाकारों ने एक ऐसी समाजार्थिक व्यवस्था कायम करने की कल्पना की थी जिसमें अर्थव्यवस्था के लाभ गरीब और असुविधाप्राप्त लोगों तक पर्याप्त रूप से पहुंच सकें। अन्तिम उद्देश्य एक ऐसी अर्थव्यवस्था और समाज का निर्माण करना था जिसमें सभी के लिए पर्याप्त आजीविका प्राप्त हो सके, जहाँ दहेज, घरेलू हिंसा और बच्चों का दुरूपयोग जैसी सामाजिक प्रथाएं विद्यमान न हों, और जहाँ लोग सामाजिक तालमेल के साथ जीवन बिताएं। पिछले वर्षों के दौरान हमने बहुत से क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति की है, हम औद्योगिक विकास के लिए एक प्रभावशाली ढाँचा कायम करने में समर्थ हुए हैं, तृतीयक क्षेत्रक ने उल्लेखनीय प्रगति प्रदर्शित की है तथा बहुत से सामाजिक और स्वास्थ्य क्षेत्रक सूचकों में काफी सुधार दर्ज किया गया है किन्तु, कुछ क्षेत्र अभी भी ऐसे हैं जो बड़ी चिन्ता के विषय बने हुए हैं। हमारी लगभग 25 प्रतिशत आबादी आर्थिक तंगी, गरीबी रेखा से नीचे रह रही है, हमारे कार्य बल का एक बहुत बड़ा भाग या तो बेरोजगार है अथवा अल्प-रोजगार प्राप्त है और हमारे सामाजिक सुरक्षा उपाय अपर्याप्त बने हुए हैं और कुल आबादी के केवल एक अंश को कवर करते हैं। बाल अधिकार के दुरूपयोग के मामले लगभग नियमित रूप में देखने को मिलते हैं, घरेलू हिंसा बहुत से परिवारों को ध्वस्त और बरबाद कर रही है और कमजोर वर्गों के खिलाफ अत्याचारों की घटनाएं अभी भी पर्याप्त रूप से घटित हो रही हैं। इस स्थिति का प्रमुख कारण यह तथ्य है कि हमारी विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत अलग-थलग; टुकड़ों और अंशों में मुद्दों का समाधान करने का प्रयास किया गया है। सरकार और आयोजनाकारों ने एक ऐसी मिली-जुली सामाजिक नीति तैयार करने का प्रयास नहीं किया है जिसके तहत उपरोक्त सभी मुद्दों को एक समन्वित व पूरक ढंग से उठाया जा सके। आयोग का मत है कि एक अलग-थलग विकास दृष्टिकोण अपनाने की बजाए, एक एकीकृत सामाजिक नीति पर बल देने की जरूरत है जिसके अन्तर्गत इन मुद्दों पर व्यापक ढंग से काम किया जा सके। इसके अन्तर्गत हमारे आयोजनाकारों और विकास कार्यकर्ताओं, दोनों द्वारा उचित रूप से बल दिया जाएगा। योजना आवंटन के पर्याप्त भाग को ऐसी मिली-जुली सामाजिक नीति के कार्यान्वयन के लिए आवंटित किया जाना चाहिए।

7.4 इस सामाजिक नीति के अन्तर्गत अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित घटकों को शामिल किया जाना चाहिए :

- राजनीतिक घटक, जैसे कि सामाजिक रूप से वंचितों के लिए सकारात्मक कार्रवाई, "कमजोर वर्गों" के लिए साधन उपलब्ध कराने के वास्ते विशेष संस्थागत व्यवस्थाएं।
- आर्थिक घटक, जैसे कि :

1. काम करने का अधिकार अथवा रोजगार गारंटी अथवा आजीविकाओं का संरक्षण।
2. इसके साथ ही निर्धनों में निर्धनता पर एक स्पष्ट प्राथमिकतापूर्ण ध्यान देना, विकास हेतु पहला कदम होना चाहिए।
3. सामाजिक सुविधाओं के लिए एक राष्ट्रीय सामाजिक बीमा नीति सहित, संसाधनों का पर्याप्त रूप में आवंटन, जिससे बेरोजगारी का बचाव होता है।

- सामाजिक घटक, जैसे कि :

1. बाल अधिकारों, दहेज रोधी, घरेलू हिंसा, पीडितों के विरूद्ध अत्याचार आदि के संबंध में कठोर कानून।
2. समाज कल्याण प्रावधान, बाल देख-रेख सेवाओं के लिए सुविधाएं।
3. सामाजिक क्षेत्रकों, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, जनता, समाज कल्याण, जल, विकेन्द्रीकरण से सम्बद्ध सभी अन्य नीतियों की समीक्षा और सामाजिक न्याय व आर्थिक उत्थान की दिशा में परिवर्तन हेतु एक एकीकृत प्रतिबद्धता।

7.6 एक राजतन्त्र में ऐसी एक मिली-जुली सामाजिक नीति की कुल मिलाकर सफलता प्रमुख रूप से तीन कारकों पर निर्भर करती है, यथा (क) शासन पद्धति, (ख) मानव पूँजी की कोटि, और (ग) सामूहिक कार्रवाई की शक्ति और नागरिकों के बीच सहकारी आचरण, जिससे प्रभावी सिविल सोसायटी/सामाजिक पूंजी संस्थानों का निर्माण होता है।

7.7 सिफारिशें:

क) सरकार को एक एकीकृत सामाजिक नीति तैयार करनी चाहिए जिससे सामाजिक न्याय और सशक्तीकरण से संबंधित प्रमुख मुद्दों पर प्राथमिकतापूर्ण राज्य कार्रवाई सुनिश्चित हो सके।

ख) सरकार को अपने योजना आवंटन के एक पर्याप्त मांग की व्यवस्था इस एकीकृत सामाजिक नीति पर अमल करने के लिए करनी चाहिए।

निष्कर्ष

अधिशासन में जन भागीदारी को विश्व भर में उत्तम अधिशासन की एक पूर्वापेक्षा समझा जाता है। समाज की संवृद्धि और विकास इसके आन्तरिक संस्थानों, विशेष रूप से लोगों की पहल और जोश के जरिए सृजित संस्थानों पर पर्याप्त रूप से निर्भर है। इनमें से कुछेक संस्थान गैर-लाभ के लिए हैं। कुछेक एक समूह के लाभ के लिए हैं और कुछ उसके सदस्यों के आय स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए हैं। सामूहिक रूप से ये उत्तम अधिशासन और आर्थिक तथा सामाजिक विकास में योगदान करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

समाजशास्त्रीय संदर्भ में, ये संस्थान सामन्जस्य और परस्पर भरोसे को जन्म देते हैं। आर्थिक क्षेत्र में ये उत्तमताएं मिलकर उत्पादन के चौथे अनिवार्य कारक का निर्माण करती हैं, भूमि, वित्त तथा उद्यमशीलताएं तीन अन्य कारक हैं और सरकारी शासन के क्षेत्र में ऐसे संस्थान जन भागीदारी और पहल का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनसे राज्य के उपायों को शक्ति प्राप्त होती है। आर्थिक और सामाजिक प्रबंधन तथा सार्वजनिक प्रशासन में इनके बढ़ते महत्व को समझते हुए, समाजशास्त्रियों और विकास प्रतिपादक अब उनकी परिभाषा "सामाजिक पूंजी संस्थानों" के रूप में करते हैं।

मजबूत प्रजातान्त्रिक मानदण्डों और परम्पराओं के साथ राज्य, सार्वजनिक कार्यकलाप के अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जैसे कि कल्याण और सेवाएं प्रदान करना, लोगों को संगठित और सक्रिय करने के लिए सामाजिक पूंजी संस्थानों को अधिक अवसर उपलब्ध कराता है। इससे एक बहुतंत्र समाज का निर्माण होता है।

रिपोर्ट के अन्तर्गत ऐसे संस्थानों की सभी श्रेणियों को व्यापक रूप से कवर करने का प्रयास किया गया है जो इस समय देश के भिन्न भागों में विद्यमान हैं (सोसायटियां, सार्वजनिक न्यास, सहकारिताएं, स्वयं सेवी समूह, उत्पादक कम्पनियां और व्यावसायिक स्व:-विनियामक निकाय)। इनमें से प्रत्येक की संरचना, कार्यों और विधायी परिवेश का विश्लेषण विस्तारपूर्वक किया गया है तथा उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए विशिष्ट सुझाव दिए गए हैं ताकि वे भारत के राजतन्त्र और अर्थव्यवस्था के विकास में और अधिक भूमिका निभा सकें। रिपोर्ट के अन्तर्गत "अभिवृत्तिमूलक परिवर्तन लाने की जरूरत पर बल दिया गया है। रिपोर्ट में इन संस्थानों के कार्यकरण में खुलापन और सार्वजनिक संवेदनशीलता में वृद्धि

[38] सच्चर समिति रिपोर्ट, 2007

करने के लिए लोगों की सीधी भागीदारी का भी सुझाव दिया गया है। आयोग का यह पक्का विश्वास है कि यदि इस रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों पर अमल किया गया तो उससे सम्पूर्ण तृतीय क्षेत्रक के कार्यकरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे। इससे (क) धर्मादा संगठन सार्वजनिक हित के करीब आएंगे, (ख) व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के आचरण में सुधार होगा, (ग) तकनीकी प्रबंधन व अन्य व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों का बेहतर अधिशासन होगा, (घ) सहकारिताओं का पुनरूद्धार होगा, (ड.) ग्रामीण ऋण प्रणाली मजबूत होगी, और (च) गरीबों के लिए दक्षता सवंर्धन के अवसर उपलब्ध होंगे और वे अधिक अर्जन करने में समर्थ होंगे। कुल मिलाकर प्रभाव, एक स्वस्थ, कम्पायमान और प्रतिक्रियाशील सिविल सोसायटी का उद्भव होगा। इससे एक देखभालकर्ता सोसायटी का सृजन करने में मदद मिलेगी जो महात्मा गांधी की विचारधारा का पालन करेगी जैसाकि निम्नलिखित लाइनों में अन्तर्निहित है:

"मैं यह सुझाव देने का साहस करता हूँ कि यह बिना किसी अपवाद के "प्रकृति" का मूलभूत नियम है कि प्रकृति हमारी दिन-प्रतिदिन की जरूरतों के लिए पर्याप्त पैदा करती है और यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने लिए पर्याप्त और कुछ अधिक नहीं ले तो इस विश्व में गरीबी नहीं रहेगी, इस विश्व में कोई भी व्यक्ति भूख से नहीं मरेगा। किन्तु जब तक यह असमानता बनी रहेगी तब तक हम अपना मुंह मोड़ते रहेंगे।"

अनेक दशकों से ये संस्थान काफी कार्यात्मक आजादी के साथ काम करते रहे हैं। बहुत से व्यावसायिक निकाय राजनीतिकृत हो गए हैं और अपने मूल उद्देश्य से हट गए हैं। समझा जाता है कि अनेक सोसायटियाँ और न्यास कुछेक के जेबी बन गए हैं जो उनका इस्तेमाल अपने ही लाभ के लिए करते हैं। सहकारी क्षेत्रक भी देश भर में बिलकुल अव्यवस्थित है । आयोग इस बात को समझता है कि जो लोग वर्तमान पद्धति में घुस गए हैं वे अपनी शक्तियां और विशेषाधिकार छोड़ने के लिए आसानी से तैयार नहीं होंगे। आज सरकारों की ओर से सुधारों के संबंध में अटूट प्रतिबद्धता और इन परिवर्तनों के लिए कार्य करने के वास्ते सिविल सोसायटी की ओर से मजबूत इच्छाशक्ति की जरूरत है।

सिफारिशों का सारांश

1 (पैरा 3.1.2.6) भारत में धर्मादाओं के लिए नई कानूनी रूप रेखा

(क) संघ सरकार को समितियों, न्यासों, विन्यासों और पूर्त संस्थाओं, आदि सम्बन्धी मौजूदा कानूनों के स्थान पर न्यासों और समितियों, दोनों के बारे में एक व्यापक माडल विधान का प्रारूप तैयार करना चाहिए।

(ख) मौजूदा पूर्त प्रशासन के स्थान पर, जिसमें पूर्त आयुक्त/पंजीयन महानिरीक्षक शामिल होते हैं, जैसीकि राज्यों में स्थिति है, प्रस्तावित कानून में प्रत्येक राज्य में तीन–सदस्यीय पूर्त संस्था आयोग के रूप में एक नए शासी ढांचे की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिसमें पूर्त संगठनों के निगमन, विनियमन और विकास के लिए आवश्यक सहायक स्टाफ हो। आयोग का अध्यक्ष एक विधि अधिकारी होना चाहिए, जो जिला जजों के संवर्ग से लिया गया हो। अन्य दो सदस्यों में से एक सदस्य स्वैच्छिक क्षेत्रक से लिया जाना चाहिए और दूसरा सदस्य राज्य सरकार का कोई अधिकारी होगा। इसके अतिरिक्त, राज्य में एक पूर्त संस्था न्यायधिकरण होना चाहिए, जो पूर्त संस्था आयोग के आदेशों पर अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करेगा।

(ग) प्रस्तावित माडल विधान को पूर्त संस्था के वार्षिक राजस्व के समबन्ध में एक व्यवच्छेन (कट–आफ) सीमा निर्धारित करनी चाहिए। इस न्यूनतम सीमा से कम वार्षिक आय वाले संगठनों को विवरणियां/रिपोर्टें/अनुमतियां, आदि प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में कम आवश्यकताओं का अनुपालन करना पड़ेगा। लेकिन, यदि उनके कार्यचालन में कोई अनियमितता पायी जाएगी, तो उन संगठनों के खिलाफ कानूनी और दाण्डिक कार्रवाई की जा सकेगी । शुरू में, यह व्यवच्छेदन सीमा 10 लाख रुपए हो सकती है, जिसकी समीक्षा, उसे और ऊ पर बढ़ाने के लिए, पांच वर्षों में एक बार की जा सकती है।

(घ) सरकार को एक समावेशी समिति बनानी चाहिए, जो "पूर्त कार्य (चेरिटी)" और "पूर्त प्रयोजन" की परिभाषा करने के मुद्दे की जांच व्यापक रूप से करेगी, और पूर्त संस्थाओं और सरकार के बीच के सम्बन्धों को, विशेष रूप से करों के मामले में, "मृदु" बनाने के उपायों के सुझाव देगी।

(ङ) माडल विधान को पूर्त प्रशासन के निम्नलिखित मुद्दों के सम्बन्ध में प्रकट किए गए उपर्युक्त विचारों और दिए गए उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखना चाहिए:

i. राज्य सरकार के साथ सम्पर्क

ii. ज्ञापन में परिवर्तन

iii. परिवर्तन रिपोर्ट का अनुमोदन

iv. अचल सम्पत्ति का अन्यसंक्रमण

v. लोक न्यासों द्वारा राज्य सरकारों को अंशदान

2 (पैरा 3.2.6.2.5) कारपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी

(क) जब किसी निगमित निकाय द्वारा कोई सामुदायिक लाभ वाली परियोजना हाथ में ली जाए, तो कम्पनी और स्थानीय सरकार के बीच परस्पर कुछ परामर्श होना चाहिए, ताकि उस क्षेत्र में ऐसे ही किसी अन्य विकास कार्यक्रम के साथ कोई अनावश्यक अतिव्याप्ति न हो।

(ख) सरकार को एक सुविधाप्रदाता के रूप में कार्य करना चाहिए और ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिससे व्यापार और उद्योग को ऐसी परियोजनाएं और ऐसे क्रियाकलाप हाथ में लेने के लिए प्रोत्साहन मिले, जिनसे स्थानीय समुदाय के जीवन की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो।

3 (पैरा 3.2.7.2.8) स्वैच्छिक संगठनों का प्रत्यायन

(क) उन स्वैच्छिक संगठनों के प्रत्यायन/प्रमाणीकरण की कोई प्रणाली होनी चाहिए, जो सरकारी अभिकरणों से निधिपोषण प्राप्त करते हैं।

(ख) सरकार को ऐसे कार्य को हाथ में लेने वाले एक स्वतंत्र निकाय – राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति – की स्थापना करने के लिए एक कानून बनाने के लिए पहल करनी चाहिए। प्रारम्भ में, सरकार के लिए इस संगठन को एक–बारगी धनराशि उपबन्ध कराना जरूरी हो सकता है।

(ग) उपर्युक्त कानून में परिषद के गठन, उसके कार्यों, आवेदकों से उपयुक्त शुल्क उगाहने की उसकी शाक्तियों और अन्य सम्बन्धित मामलों का ब्योरा होना चाहिए।

4 (पैरा 3.3.7) धर्मादा संगठन और कर कानून

(क) धारा 12 क क और धारा 80 छ के अन्तर्गत, आवेदन के दायर किए जाने की तारीख से नब्बे दिन तक की अवधि में पंजीयन अथवा अनुमोदन प्रदान कर दिया जाना चाहिए अथवा आवेदन को रद्द कर दिए जाने का आदेश पारित कर दिया जाना चाहिए, जबकि मौजूदा अवधि 180 दिन की है।

(ख) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अवसंरचना परियोजनांए पूर्त संस्थाओं की महत्वपूर्ण संघटक हैं, अधिशेष के संचय की अवधि को, जो आजकल पांच वर्ष की है, बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

(ग) आयकर अधिनियम की धारा 35 क ग के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को "व्यय पर कटौती" की सिफारिश करने के लिए मौजूदा राष्ट्रीय समिति के स्थान पर चार क्षेत्रीय समितियों बनाई जानी चाहिएं।

5 (पैरा 3.4.4) विदेशी अंशदान का विनियमन

(क) विदेशी अभिदाय (विनियमन) विधेयक, 2006 को संशोधित किए जाने की आवश्कता है, ताकि उसमें अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित सुझाव शामिल किए जाएं:

i. एक ओर कानून के प्रयोजन और दूसरी ओर स्वैच्छिक क्षेत्रक के सुचारू कार्यकरण के बीच बढ़िया सन्तुलन होना चाहिए। कानून के आत्मपरक अर्थनिर्णय और उसके सम्भव दुरूपयोग से बचने के लिए विनियमनकारी विधान के उद्देश्यों का निरूपण उपयुक्त रूप से किया जाना चाहिए।

ii. धारा 11 के अन्तर्गत (विदेशी अभिदाय प्राप्त करने के लिए पंजीयन अथवा पूर्वानुमति प्राप्त करना) प्रक्रियाओं के लिए एक समय-सीमा होनी चाहिए।

iii. अन्तर्अभिकरण परामर्श के लिए, विशेष रूप से (क) दान की न्यूनतम राशि, जिसके लिए अन्तर्अभिकरण परामर्श जरूरी होगा, (ख) प्राधिकारी का स्तर, जो इसे प्राधिकृत करेगा, और (ग) ऐसी प्रक्रियों के लिए समय-सीमांए निर्धारित करने के सम्बन्ध में पारदर्शी नियम/मार्गनिर्देश विहित किए जाने चाहिएं।

iv. (क) पंजीयन/पूर्वानुमति के लिए संगठनों से प्राप्त याचिकाओं के तेजी से निपटान, (ख) उनके क्रियाकलापों के प्रभावकारी मानीटरन, और (ग) उनके द्वारा दायर की गई

विवरणियों की उपयुक्त रूप से संवीक्षा को सुविधाजनक बनाने के लिए विदेशी अभिदाय (विनियमन) अधिनियम के तहत कुछ कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए और वे राज्य सरकारों/जिला प्रशासन को प्रत्यायोजित कर दिए जाने चाहिएं।

v. पैरा 3.4.1.5.3 में यथा उल्लिखित अन्य सरोकारों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

(ख) एक वर्ष के दौरान 10.00 लाख रूपए से कम के बराबर वार्षिक विदेशी अभिदाय (इस राशि पर समय-समय पर पुनर्विचार किया जा सकता है) प्राप्त करने वाले संगठनों को पंजीयन कराने और कानून के अन्तर्गत रिपोर्ट देने की अन्य आवश्यकताओं से छूट दी जानी चाहिए। इसके स्थान पर उनसे यह कहा जाना चाहिए कि वे वर्ष के अन्त में एक वार्षिक विवरणी दायर करें, जिसमें उनके द्वारा प्राप्त विदेशी अभिदाय की मात्रा और उसके उपयोग के बारे में जानकारी दी गई हो। कानून में यह उपबन्ध किया जाना चाहिए कि यदि तथ्यों को छिपाने/गलत रूप से प्रस्तुत करने का कोई तर्कसंगत सन्देह होगा, तो उनके बारे में अन्वेषण किया जा सकता है और यह सिद्ध हो जाने पर कि उनके द्वारा कानून का उल्लंधन किया गया है, उनके खिलाफ कानून के दाण्डिक उपबन्धों का उपयोग किया जाएगा।

6 (पैरा 4.6.10) स्वःसेवी समूह अभियान के मुद्दे

(क) स्व-सहायता समूह आन्दोलन की संवृद्धि और विकास में सरकार की भूमिका एक सुविधाप्रदाता और प्रोत्साहक के रूप में होनी चाहिए। इसका उद्देश्य इस आन्दोलन के लिए समर्थनकारी वातावरण का निर्माण करना होना चाहिए।

(ख) चूंकि देश के उत्तर-पूर्वी राज्यों और केन्द्रीय-पूर्वी भागों के राज्यो (बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान) में ऋण के औपचारिक श्रोतों तक पर्याप्त पहुंच नहीं है, इसलिए स्व-सहायता समूह आन्दोलन के विस्तार पर मुख्य जोर इन क्षेत्रों में दिया जाना चाहिए। इन स्थानों पर नाबार्ड की उपस्थिति बहुत अधिक सुस्पष्ट होनी चाहिए।

(ग) स्व-सहायता समूह आन्दोलन का विस्तार शहरी और शहरों के बाहरी क्षेत्रों में किए जाने की आवश्यकता है। राज्य सरकारों, नाबार्ड और वाणिज्यिक बैंकों को आपस में मिल कर ऐसे क्षेत्रों के लिए संगत क्रियाकलापों और वित्तीय उत्पादों की निर्देशिका तैयार करनी चाहिए।

[39] स्त्रोत: कम्युनिटी पालिसिंग इन आस्ट्रेलिया-एन एप्राइजल, वर्किंग पेपर www.acpr.gov.au

(घ) इस समय, वाणिज्यिक बैंक, परियोजना की वित्तीय सक्षमता के आधार पर, शहरी और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में माइक्रो–ऋणों का संवितरण अपने आप कर सकते हैं। लेकिन ऐसे माइक्रो–ऋण संवितरणों को नाबार्ड से पुनर्वित्त प्राप्त करने की हकदारी नहीं होती। यदि आवश्यक हो, तो शहरी/अर्ध–शहरी क्षेत्रों को नाबार्ड के पुनर्वित्त के अन्तर्गत लाने के लिए नाबार्ड अधिनियम, 1981 को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए।

(ङ) स्व–सहायता समूह – बैंक संयोजन माडल को, जिसका नियंत्रण परामर्शदाता एस.एच.पी.आई. के हाथ में हो, देश भर में वित्तीय मध्यस्थता के तरजीही मोड के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(च) यह जरूरी है कि अनुसुचित बैंक और नाबार्ड राज्य सरकारों के सहयोजन से उन समूहों के लिए नए वित्तीय उत्पादों की खोज करते रहें और उन्हें तैयार करते रहें।

(छ) देश के उन 87 जिलों में, जहां क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की उपस्थिति नहीं है, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के नेटवर्क स्थापित करने के लिए सुनियोजित प्रयास किया जाना चाहिए।

(ज) सरकारी पदाधिकारियों के प्रशिक्षण/उनकी क्षमता के निर्माण के लिए विशेष कदम उठाए जाने चाहिएं, ताकि वे एक सकारात्मक रवैया विकसित करें और गरीब तथा सीमान्त पर बैठे लोगों के साथ सक्षम और जिम्मेदार ग्राहकों और भावी उद्यमकत्ताओं के रूप में व्यवहार करें।

(झ) ग्रामीण ऋण को अक्सर एक सम्भाव्य गैर–निष्पादनकारी परिसम्पत्ति के रूप में देखा जाता है। सरकारी कर्मचारी और बैंकों के कार्मिकों को इस बारे में शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। देश के निर्धनतम लोगों तक पहुंचने की लागत को घटाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा सकता है।

(ञ) नाबार्ड द्वारा एस.एच.पी. संस्थाओं को दिए जाने वाले संवर्धनात्मक अनुदान की मात्रा पर (जो इस समय निर्मित और सक्रिय बनाए गए प्रति स्व–सहायता समूह के लिए 1500/– रुपए है) पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है।

(ट) राष्ट्रीय महिला कोष के प्रचालनों का विस्तार करने के लिए इसकी समग्र निधि (कारपस) को काफी अधिक बढ़ाया जाना चाहिए। राष्ट्रीय महिला कोष की भौगोलिक पहुंच का विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि ऋण के आवेदनों को तेजी से प्रोसेस किया जा सके और दूर–

दराज के क्षेत्रों में स्वीकृत परियोजनाओं का प्रभावकारी मानीटरन किया जा सके। कोष देश के चुने हुए स्थानों पर अपने क्षेत्रीय कार्यालय खोल सकता है, जिनमें पर्याप्त स्टाफ हो, और ऋण की कमी वाले राज्यों की ओर अधिक ध्यान दे सकता है।

(ठ) माइक्रो वित्तीय क्षेत्रक (विकास और विनियमन) विधेयक, 2007 को, निम्नलिखित सुझाव शामिल किए जाने के लिए, संशोधित करने की आवश्यकता है:

(i) माइक्रो–वित्तीय सेवाओं की परिधि का काफी अधिक विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि उसमें ऋण/बचत, बीमा, पेंशन सेवाएं, धन अन्तरण, भाडांगार रसीदों के निर्गम/डिस्काउंट और कृषि जिन्सों और वन उत्पादों के वायदे/विकल्प के संविदाओं को शामिल किया जा सके।

(ii) कम्पनी अधिनियम की धारा 620 क के अन्तर्गत पंजीयित "निधियों", और उत्पादक कम्पनियों को नए विधान के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए।

(iii) धारा 25 की कम्पनियों के क्रियाकलापों को भी, जहां तक उनका सम्बन्ध प्रस्तावित विधेयक मं यथावर्णित माइक्रो–वित्तीय सेवाओं से हो, इस विधान के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। लेकिन, उनके प्रबन्ध और अन्य कार्यों में, वे कम्पनी अधिनियम के उपबन्धों द्वारा नियंत्रित होती रहेंगी।

(iv) माइक्रो वित्त संस्थाओं द्वारा लिए जाने वाले ब्याज की दरों के मुद्दे को उस विनियामक प्राधिकरण के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, जिसकी स्थापना प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत की जा रही है।

(v) यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यदि माइक्रो–वित्त संस्थाओं को मितव्ययता/बचतें और धन अन्तरण सेवाएं संभालने की अनुमति दी जाएगी, तो वे यह कार्य अनुसूचित बैंकों की केवल व्यापारिक सहसम्बन्धियों के रूप में करेंगी। अन्य सरोकारों पर, जिनका उल्लेख पैरा 4.6.9.9.2 में किया गया है, विचार किए जाने की आवश्यकता है।

(ड) प्रस्तावित विधेयक के अन्तर्गत शामिल की गई माइक्रो–वित्त संस्थाओं को राज्यों के साहूकारी सम्बन्धी कानूनों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जाना चाहिए।

7. (पैरा 5.2.13) व्यावसायिक शिक्षा को स्व: विनियामक प्राधिकरणों से अलग करना

(क) व्यावसायिक शिक्षा को विद्यमान विनियामक निकायों के क्षेत्राधिकार से हटा दिया जाना चाहिए और विशेष रूप से सृजित एजेन्सियों को सौंप दिया जाना चाहिए – उच्च/व्यावसायिक शिक्षा के प्रत्येक विषय के लिए एक –एक। इन निकायों को, नेशनल स्टेण्डड्र्स एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार मेडिसिन, नेशनल स्टेण्डड्र्स एण्ड क्वालिटी काउन्सिल फार मेनेजमेंट आदि। इस विभाजन के पश्चात, विद्यमान विनियामक निकायों का कार्य पंजीकरण से संबंधित मुद्दों, दक्षता उन्नयन और व्यावसायिक मानकों व नीतिशास्त्र के प्रबंधन तक सीमित रहेगा। इन पृथक परिषदों की स्थापना हो जाने पर ए आई सी टी ई समाप्त हो जाएगी।

(ख) ऐसी परिषदें कानून के तहत स्थापित की जानी चाहिए तथा उनका कार्य अपने विषय के विकास और संवृद्धि से सम्बन्धित मुद्दो के संबंध में मानदण्ड, मानक और प्राचल निर्धारित करना होना चाहिए यथा (क) नए संस्थान स्थापित करना, (ख) पाठयचर्या डिजाइन करना/ इसे अद्यतन बनाना, (ग) संकाय सुधार, (घ) अनुसंधान/नूतनता आयोजित करना, और (ड.) विषय से सबंधित अन्य प्रमुख मुद्दे।

(ग) इन परिषदों का गठन करते समय प्रस्तावित कानून में निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :

(i) ऐसी परिषदें पूर्णत: स्वायत्त हों।

(ii) इन परिषदों के सर्वोच्च नीति और निर्णय निर्माण निकाय में अधिकांशत: स्वतन्त्र सदस्य होने चाहिए और अधिमानत: 2 अथवा 3 से अधिक सरकारी सदस्य नहीं होने चाहिए जो उनमें पदैन हैसियत से काम कर सकते हैं।

(iii) इन परिषदों में एक मजबूत और प्रभावी शिकायत समाधान तंत्र होना चाहिए।

(iv) परिषदें संसद के प्रति जवाबदेह हों और उनकी रिपोर्टें प्रत्येक वर्ष सदन के समक्ष प्रस्तुत की जाएं। इसके अलावा, आर टी आई अधिनियम के तहत स्वत: प्रकटन के लिए मजबूत मापदण्ड होने चाहिए।

(v) इनमें से प्रत्येक परिषद में, उसे उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले संस्थानों के प्रत्यायन/प्रमाणन के संबंध में सलाह देने के लिए विशेषज्ञों का एक निकाय होना चाहिए।

(vi) ऐसी परिषदों के कुछ सदस्यों का चयन विशेषज्ञता एसोसिएशनों के पदाधिकारियों में से किया जा सकता है (उदाहरणार्थ इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन) क्योंकि इन सदस्यों का चुनाव अभ्यासकर्ता व्यावसायिकों द्वारा उनकी वैयक्तिक विशेषज्ञता के अनुसार किया जाता है।

(घ) ऐसे मानदण्डों, मानकों और प्राचलों के अन्दर विश्वविद्यालयों/स्वायत्त संस्थानों को उनके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत संस्थान स्थापित और संचालित करने के लिए पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जानी चाहिए।

(ङ) विश्वविद्यालयों की सरंचना, अधिशासन और कार्यकरण में सुधारों के सबंध में राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों की जाँच और प्राथमिकता के तौर पर कार्यान्वित की जानी चाहिए। कुलपतियों की नियुक्ति की प्रक्रिया सरकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप से मुक्त होनी चाहिए। कुलपतियों की एक निश्चित कार्यावधि होनी चाहिए तथा उन्हें कार्यकारी परिषद की सलाह और सहमति के साथ विश्वविद्यालयों को शासित करने के लिए पर्याप्त प्रधिकार और शिथिलनियता होनी चाहिए।

(च) संकाय के आदान–प्रदान जैसी पद्धतियों के माध्यम से सरकारी और निजी क्षेत्रकों में शिक्षा संस्थानों के बीच मजबूत संबंध होना चाहिए।

8. (पैरा 5.3.5) सतत व्यावसायिक शिक्षा

(क) प्रत्येक व्यावसायिक विनियामक निकाय को संबंधित राष्ट्रीय गुणवत्ता और मानक परिषद व शैक्षणिक संस्थानों के सहयोग से अपने सदस्यों के दक्षता संवर्धन और उन्नयन हेतु समय–समय पर सतत व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए।

9. (पैरा 5.4.3) नैतिक शिक्षा और प्रशिक्षण

(क) व्यावसायिक शिक्षा के अलग हो जाने के बाद, व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरणों की कार्यसूची में निम्नलिखित पर बल दिया जा सकता है: (1) नए सदस्यों के पंजीकरण/पंजीकरण के नवीकरण हेतु प्रक्रिया ; और (ii) व्यावसायिक नैतिकता मानक और आचरण से संबंधित मामले। विनियामक प्राधिकरणों को ऐसे मुद्दों पर कार्यशालाएं, सेमिनार और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने पर भी अधिक ध्यान देना चाहिए।

10. (पैरा 5.5.4) व्यवसाय में नामांकन

(क) अधिनियम के प्राचलों के अन्दर, संबंधित विनियामक प्राधिकरण को नए सदस्य नामांकित करने के लिए मार्गनिर्देश निर्धारित करने के लिए प्राधिकृत किया जाना चाहिए।

11. (पैरा 5.6.3) पंजीकरण का नवीकरण/पुनर्वैधकरण

क) संगत कानूनों में एक प्रावधान किया जाना चाहिए कि व्यावसायीकरण/लाइसेंस के लिए निर्धारित संख्या में वर्षों के बाद पुनर्वैधकरण की जरूरत होगी। ऐसा, संबंधित व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित एक पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा कर लेने के बाद किया जा सकता है।

12. (पैरा 5.7.6) अनुशासनात्मक तंत्र

क) संगत कानूनों में यह प्रावधान होना चाहिए कि उनके कार्यकरण में उद्देश्यपरकता लाने के उद्देश्य से, विनियामक प्राधिकरणों की राज्य और राष्ट्रीय दोनों ही स्तर पर अनुशासनात्मक समितियों में व्यावसायिक और गैर–व्यावसायिक सदस्य सम्मिलित होने चाहिए। उन्हें क्रमश: 60:40 अनुपात में शामिल किया जा सकता है।

ख) कानून में यह व्यवस्था होनी चाहिए कि ऐसे निकायों को सम्पूर्ण अनुशासनात्मक कार्यवाही एक निर्धारित समयावधिक (अर्थात 90 दिन) के अन्दर पूरी कर लेनी चाहिए।

ग) कानून में ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि राज्य पैनल के निष्कर्षों से पीड़ित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय (शीर्ष) निकाय में अपील कर सकता है जो भी मामले का निपटान निर्धारित समयावधि (अर्थात 90 दिन) के अन्दर करेगा।

13. (पैरा 5.8.10) स्व: विनियामक प्राधिकरणों का विधान और गठन

क) व्यावसायिक विनियामक प्राधिकरणों की साधारण परिषद और कार्यकारी समिति को युक्तिसंगत बनाया जाना चाहिए। जहाँ तक व्यवहार्य हो यह उन सभी के संबंध में एकसमान होना चाहिए।

ख) प्रत्येक प्राधिकरण की पर्याप्त बड़ी और प्रतिनिधिक साधारण परिषद होनी चाहिए (आदर्शत: संख्या 50 हो सकती है; ऐसे निकाय से व्यापक परिदृश्य और मतों की विविधता को बढ़ावा मिलता है।)।

ग) कार्यकारी समिति 10 से 15 सदस्यों वाला एक छोटा निकाय होना चाहिए (एक सुसहत मंच से प्रशासनिक कार्यकुशलता और जवाबदेही सुनिश्चित होती है)।

घ) एक स्पष्ट प्रावधान यह होना चाहिए कि कोई व्यक्ति प्रधान/उप–प्रधान अथवा महासचिव के पद के लिए एक कार्यकाल से अधिक के लिए नहीं चुना जाना चाहिए। तथापि, किसी व्यक्ति को अधिकतम दो कार्यकाल के लिए निकाय का सदस्य चुना जा सकता है।

14. (पैरा 5.8.12.4) ग्राहक/उपभोक्ता–विनियामक प्राधिकरणों में साधारण सदस्य

क) साधारण परिषद और साथ ही कार्यकारी समिति की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि कुल सदस्यों में से 40 प्रतिशत साधारण सदस्य हों।

ख) साधारण सदस्यों का मनोनयन संबंधित मंत्रालय/विभाग द्वारा उपयुक्त विनियामक प्राधिकरण के साथ परामर्श करके, किया जाना चाहिए।

15. (पैरा 5.9.4) जवाबदेही और संसदीय निगरानी

क) स्व:विनियामक प्राधिकरणों को शासित करने वाले कानूनों में एक व्यवस्था होनी चाहिए जिसके अन्तर्गत विनियामक प्राधिकरण द्वारा एक वार्षिक रिपोर्ट छानबीन हेतु संसद को प्रस्तुत की जानी चाहिए।

16. (पैरा 6.4.10) सहकारिताएं: संवैधानिक संदर्भ

क) संविधान के भाग IV में 43 ख के रूप में एक अनुच्छेद जोड़ा जाना चाहिए जिससे कि राज्य को ऐसे कानून बनाने के लिए जिनसे स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य प्रेरित और व्यावसायिक संस्थान सुनिश्चित करने के लिए राज्य को जिम्मेदार ठहराया जा सके। ऐसी स्थिति में भाग–IX और IX क की पद्धति पर, जिसे 73वें और 74वें संशोधनों द्वारा लागू किया गया था, बड़े पैमाने पर संवैधानिक संशोधन आवश्यक नहीं होंगे। प्रस्तावित अनुच्छेद 43 ख को निम्न प्रकार पढ़ा जा सकता है :

अनुच्छेद 43 ख : सहकारिताओं का सशक्तिकरण : "राज्य, उपयुक्त विधान के जरिए, आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य तरीके के जरिए आर्थिक कार्यकलापों, विशेष रूप से कृषि से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त, प्रजातान्त्रिक, सदस्य–प्रेरित और व्यावसायिक संस्थान सुनिश्चित करेगा। "

ख) आयोग, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा सुझाए गए संशोधनों का समर्थन करता है और यह महसूस करता है कि इससे और साथ ही निदेशात्मक सिद्धान्तों में सुझाए गए संशोधन के साथ, सहकारी संस्थानों को स्वैच्छिक, प्रजातान्त्रिक, व्यावसायिक, सदस्य प्रेरित और सदस्य केन्द्रिक उद्यम बनाने की दिशा में सही कदम होगा। तदनुसार, संविधान में निम्नलिखित संशोधन किए जा सकते हैं :

(i) अनुच्छेद 19, 19(1)(ज) के अन्तर्गत निम्न प्रकार जोड़ा जा सकता है:

"(ज)स्वैच्छा और खुली सदस्यता, प्रजातान्त्रिक, सदस्य नियंत्रित, सदस्य–आर्थिक भागीदारी के सिद्धान्तों और राज्य नियंत्रण से मुक्त स्वायत्त कार्यकरण के आधार पर सहकारिता गठित और संचालित करने के लिए। "

(ii) तदनुसार, अनुच्छेद 19(4) को निम्न प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए:

"(4) उक्त खण्ड के उप–खण्ड (ग) और (ज) में कोई बात किस विद्यमान कानून के प्रचालन को प्रभावित नहीं करेगी जहाँ तक यह राज्य को, सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता के हित में भारत की प्रभुत्ता और अखण्डता के हित में आरोपित कोई कानून बनाने से आरोपित अथवा निवारण करेगी, उक्त उप–खण्ड द्वारा प्रदत्त अधिकार का इस्तेमाल करने पर उचित प्रतिबंध लगाती है। "

17. (पैरा 6.5.6) विधायी रूपरेखा

क) सभी राज्यों को (आन्ध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, कर्नाटक और जम्मू तथा काश्मीर को छोड़कर), सहकारी ऋण संस्थानों के पुनरूद्धार संबंधी कार्यबल द्वारा सुझाए माडल कानून की पद्धति पर अपने–अपने परस्पर सहाय्यित/आत्म–निर्भर सहकारी सोसायटी अधिनियम अधिनियमित करने के लिए तत्काल उपाय करने चाहिए। जिन राज्यों में ऐसे अधिनियम पहले से ही विद्यमान हैं उन्हें भी कार्य बल द्वारा सुझाए गए माडल कानून की जाँच करनी चाहिए और, आवश्यक होने पर, विद्यमान विधानों में संशोधन करने चाहिए।

ख) अगले कुछेक वर्षों के लिए, (i) हाल ही के अधिनियमों (1995 के बाद) के अन्तर्गत स्थापित परस्पर सहाय्यित/आत्म–निर्भर सहकारी सोसायटियों, और (ii) पुराने नियमों के अन्तर्गत गठित सोसायटियों, जिनमें अभी भी सरकार की वित्तीय हिस्सेदारी है, के साथ पृथक रूप से

डील करने के लिए समानान्तर कानूनों की जरूरत है। ऊपर (ii) पर संदर्भित सोसायटियों को धीरे–धीरे अपनी देयताएं समाप्त करने और उन्हें परस्पर रूप से सहाय्यित सोसायटियों के रूप में बदलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

18. (पैरा 6.6.8) उत्पादक कम्पनियां

क – निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर उत्पादक कम्पनियों के संबंध में एक नया कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए :

i) उत्पादक कम्पनियों को उनकी तकनीकी तथा वित्तीय क्षमता के अनुसार कोई भी उत्पादक कार्यकलाप आयोजित करने के लिए कार्यों का एक उदार चार्टर उपलब्ध कराया जाना चाहिए;

ii) कानून के अन्तर्गत, निधियों, अधिशेषों/आरक्षितों के निवेश में छूट प्रदान की जानी चाहिए;

iii) उत्पादक कम्पनियों को कार्यात्मक आवश्यकताओं और वित्तीय क्षमता पर निर्भर रहते हुए उन्हें कार्यपालक और प्रबंधकीय पदों का सृजन/समाप्त करने में पूरी छूट प्रदान की जानी चाहिए;

iv) कम्पनी की लेखा परीक्षा और लेखों के संबंध में अनुपालन आवश्यकताएं उसके प्रचालनों के आकार के अनुरूप होनी चाहिए।

v) कानून के अन्तर्गत प्राक्सी मतदान की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि चुनाव और आम बैठकें सुचारू रूप से आयोजित हो सकें।

ख – कम्पनियों को, कम्पनी अधिनियम, 1956 के भाग IX–क के विद्यमान प्रावधानों के अन्तर्गत और बाद में नए कानून के अन्तर्गत जब उसका अधिनियमन हो जाए, अपने आपको उत्पादक कम्पनियों के रूप में संस्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि वर्तमान परिवेश में यह अधिक व्यवहार्य विकल्प होगा। विद्यमान अन्तर–राज्य सहकारी सोसायटियां अपने आपको उत्पादक कम्पनियों में बदलने की सम्भावना का भी पता लगा सकती हैं।

19. (पैरा 6.7.15) सहकारी ऋण और बैंकिंग संस्थान

क – वैद्यनाथन समिति रिपोर्ट के आधार पर तैयार अल्पावधि ग्रामीण सहकारी ऋण प्रणाली (एस टी सी सी एस) के संबंध में पुनरूद्धार पैकेज पर अमल करने की प्रक्रिया तत्काल पूरी की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रमुख उपाय सम्मिलित हैं :

i) जिन राज्यों ने इस प्रयोजनार्थ सहमति ज्ञापन (एम ओ यू) पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं किए हैं उन्हें बिना कोई समय गवांए ऐसा करने के लिए कहा जाना चाहिए।

ii) बैंकिंग विनियमन अधिनियम, "नाबार्ड" अधिनियम और राज्य सहकारी सोसायटी अधिनियमों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि सहकारी ऋण संस्थानों के प्रबंधन/अधिशासन में सुधार हो सके।

iii) राज्यों द्वारा एक माडल सहकारी कानून अधिनियमित किए जाने की जरूरत है। जो राज्य माडल अधिनियम पारित नहीं करना चाहते उन्हें अपने विद्यमान सहकारी विधान में माडल कानून के महत्वपूर्ण प्रावधानों को शामिल करते हुए, कृषि और ग्रामीण ऋण सोसायटी के संबंध में एक पृथक चेप्टर लागू करना चाहिए।

ख– दीर्घावधिक सहकारी ऋण प्रणाली (एल टी सी सी एस) के संबंध में इसी समिति की सिफारिशों के संबंध में ऐसे ही उपाय एक समयबद्ध ढंग से किए जाने चाहिए।

20. (पैरा 7.7) एकीकृत सामाजिक नीति

क– सरकार को एक एकीकृत सामाजिक नीति तैयार करनी चाहिए जिससे सामाजिक न्याय और सशक्तीकरण से संबंधित प्रमुख मुद्दों पर प्राथमिकतापूर्ण राज्य कार्रवाई सुनिश्चित हो सके।

ख– सरकार को अपने योजना आवंटन के एक पर्याप्त मांग की व्यवस्था इस एकीकृत सामाजिक नीति पर अमल करने के लिए करनी चाहिए।

संलग्नक–I(1)

श्री एम. वीरप्पा मोइली
अध्यक्ष, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

द्वारा

सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी पर राष्ट्रीय चर्चा
पर भाषण
19 दिसम्बर 2006

"सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी" पर चर्चा के दौरान यहाँ आकर मुझे बहुत खुशी है। मैं, जब से जेम्स कोलेमन ने "सामाजिक पूंजी" शब्द ने ग्लेन लौरी की 1972 परिभाषा को अपनाया और अवधारणा को 1987 में लोकप्रिय बनाया तथा राबर्ट पुटनम ने अपनी 2000 पुस्तक "बावलिंग अलोन" में इस अवधारणा के संबंध में सार्वजनिक जागरूकता पैदा की, मैं अत्यंत आकर्षित हुआ। मेरे विचार में, सामाजिक पूंजी की अवधारण, जैसा कि उसे आजकल समझा जाता है, विगत कुछेक दशकों के दौरान सामाजिक विज्ञानों और विकास में अत्यंत उत्प्रेरक बौद्धिक खोज रही है। यद्यपि, इसकी जड़ें 19वीं शताब्दी के दार्शनिकों के साथ जुड़ी हैं जिन्होंने अनेकवादी एसोसिएशनों और प्रजातंत्र के बीच संबंध पर बल दिया। सामाजिक पूंजी की प्रचुरता को आधुनिक उदार प्रजातंत्र की एक अनिवार्य शर्त के रूप में देखा जाता है जबकि सामाजिक पूंजी के निम्न स्तरों का अर्थ कठोर, अप्रतिक्रियाशील और प्राय: भ्रष्ट राजनीतिक पद्धतियाँ हैं।

जैसा कि मैं इसे समझता हूँ, सामाजिक पूंजी की दृष्टि से अवधारणा करके हम आर्थिक विश्लेषण -भौतिक, प्राकृतिक और मानव में पूंजी की तीन मानक श्रेणियों में चौथी श्रेणी जोड़ रहे हैं। यह जानना रूचिकर है कि यह कैसे हुआ। पारम्परिक रूप से अर्थशास्त्री बाजारों का अध्ययन करते रहते हैं। राजनीतिक विज्ञानी राज्य का अध्ययन विषय है। मानवशास्त्री और समाज विज्ञानी अन्तर-वैयक्तिक नेटवर्क का अध्ययन कार्य करते हैं। हाल ही के वर्षों में, इनमें से प्रत्येक समूह ने अन्यों के कार्यों को देखना शुरू कर दिया है कि क्या वे उनके रुचि के विशेष विषयों को जोड़ने वाली कड़ियों को बेहतर समझते हैं। इनमें से एक के अध्ययन के फलस्वरूप समाज विज्ञानों में एक आयोजक अवधारणा के रूप में सामाजिक पूंजी के विकास पर जेम्स कोलेमन द्वारा क्लासिक 1987 लेख का प्रकाशन हुआ।

संलग्नक–I(1) जारी

एक ऐसे शैक्षिक विचार के बारे में सोचना कठिन है जो सामाजिक पूंजी के विचार की तुलना में अधिक तेजी के साथ सामाजिक विवेचना की सामान्य शब्दावली में शामिल हो गया। कुछ अन्य हैं जो इसे आचरणात्मक मानदण्डों का समुच्चय समझते हैं। कुछ इसे सामाजिक नेटवर्क कहते हैं और कुछ इसे उन सभी का मिश्रण समझते हैं। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सामाजिक पूंजी भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न चीजें हैं। जो अवधारणा के बारे में उत्साही हैं वे इसे एक पेग के रूप में समझते हैं जिसके ऊपर उन सभी अनौपचारिक कार्यों को डाल देते हैं जिन्हें वे पसन्द करें, उसकी परवाह करें और स्वीकृत करें। इस प्रकार यह बात सुननी काफी आम है कि यदि कोई विशेष सोसायटी फल प्राप्त करने वाले, घूसखोरी और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है, इसका कारण यह है कि उस सोसायटी में समुदाय ने सामाजिक पूंजी के संचयन में पर्याप्त निवेश नहीं किया है।

मैं हार्वर्ड प्रोफेसर राबर्ट पुटनम का समर्थन करना चाहूंगा जिन्होंने 1993 में वह प्रसिद्ध पुस्तक "मेकिंग डेमोक्रेसी वर्क - सिविक ट्रेडीशन्स इन माडर्न इटली" लिखी । पुटनम ने इस बात का विश्लेषण करने के लिए कि उनकी क्या स्थिति थी, इटली के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया। सहाब्दि के शुरू में समकक्ष होने के बावजूद, इटली के उत्तरी हिस्से अनेक शताब्दियों तक दक्षिणी हिस्सों के मुकाबले समृद्ध थे। नागरिक समुदाय, नागरिक भागीदारी और राजकीय कार्यकुशलता की दृष्टि से दोनों क्षेत्रों के बीच बड़ा अन्तर था। पुटनम ने यह निष्कर्ष निकाला कि उत्तरी इटली के क्षेत्र सामाजिक पूंजी की अधिक सम्पत्तियों के कारण उत्पादन के उच्च स्तर कायम और बनाए रखने में अधिक समर्थ थे। राबर्ट पुटनम सामाजिक पूंजी की पहचान "सामाजिक संगठन की उन विशेषताओं, जैसे कि विश्वास, मानदण्ड, और नेटवर्क, जिससे समन्वित कार्रवाई सुकर बनाकर सोसायटी की कार्यकुशलता में सुधार किया जा सकता है" के रूप में करते हैं। उनके लिए शब्द का अर्थ "सभी सामाजिक नेटवर्कों का सामूहिक मूल्य और ऐसी आकांक्षाएं हैं जो एक-दूसरे के लिए काम करने के लिए ऐसे नेटवर्क से उत्पन्न होती हैं" भी है। सामाजिक पूजी के बारे में चर्चा करते समय अधिकांश विश्लेषकों ने विश्वास पर बल दिया है। कुछ अन्यों ने सामाजिक संगठनों के घटकों का अध्ययन किया है जैसे कि बचत और ऋण संगठन, ऋण सहकारिताएं और नागरिक एसोसिएशन तथा व्यावसायिक निकाय, जो सामाजिक पूंजी को एक उत्पादक परिसम्पत्ति में बदलती हैं। स्व: विनियामक व्यावसायिक निकाय, जैसे कि मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया (एम सी आई), बार काउन्सिल और साथ ही स्वतन्त्र विनियामक प्राधिकरण (टी आर ए आई) भी हमारी समाजार्थिक रूपरेखा में अधिकाधिक प्रमुख घटक बनते जा रहे हैं। अन्यों ने विस्तारित संबंध संगठनों, प्रचारक संगठनों और

समर्थक समूहों को शामिल करके इस अवधारणा के एक विस्तृत रूप पर विचार किया है। स्थानीय साझी सम्पत्ति संसाधनों की प्रबंधन पद्धतियों का मामला अध्ययन किया गया है जिसमें स्व: प्रबंधन पद्धतियों का मार्ग अपनाकर परस्पर रूप से लाभप्रद कार्रवाई मार्ग को अपनाया गया है। इन सभी विवरणों में वह कार्रवाई जो सामाजिक पूंजी पर निर्भर करती है, व्यक्तियों और सरकार के बीच कहीं विद्यमान है। उनका आयोजन अनौपचारिक संस्थानों के अन्दर किया जाता है। दूसरे शबदों में, समानान्तर नेटवर्कों के संबंध में, सामाजिक पूंजी की पहचान सिविल सोसायटी के कार्यकरण के साथ की गई है। सामाजिक पूंजी की अवधारणा में वर्तमान हित ज्ञान आधारित संगठनों के उत्थान और साथ ही नेटवर्कड अर्थव्यवस्था और समाज के उदभव द्वारा भी प्रेरित है जिसके लिए महत्वपूर्ण गठबंधनों के विकास, संयुक्त उद्यमों और नवीन संगठन किस्मों की जरूरत है।

इस सभी में मुख्य महत्व विश्वास की धारणा का है। किन्तु विश्वास की किस प्रकार परिभाषा की जाए ? क्या विश्वास एक सार्वजनिक मलाई है ? यदि सृजन हो जाए तो विश्वास को कैसे बनाया रखा जाए ? क्या विश्वास एक नैतिक भलाई है क्योंकि यह प्रयोग करने पर बढ़ता है और प्रयोग न किए जाने पर घटता है ? क्या विश्वास, अन्तर-वैयक्तिक स्तर पर, न्यायालयों और कानून के शासन का एवजी है या यह पूरक है ? विधान मंडल, न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच एक ओर क्या संबंध है और वैयक्तिक नेटवर्क, जिसमें सामाजिक पूंजी अन्तर्निहित है ? क्या इन संस्थानों से एक-दूसरे को बल मिलता है अथवा क्या एक किस्म दूसरे का स्थान ले लेती है ?

इन प्रश्नों का उत्तर दिए जाने की जरूरत है, किन्तु हमें इस बात का संकेत मिलना चाहिए कि भारत जैसे देश में और विशेष रूप से गरीब और मार्जिनकृत के संदर्भ में, सामाजिक पूंजी का क्या अर्थ होगा ? भारत में, विभिन्न समूहों के बीच विश्वास और सामाजिक पूंजी का विकास निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण संदर्भ संबंधी परिवर्तनशील के रूप में जाति-श्रेणी पृथक्करण को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। हमारे संदर्भ में सामाजिक पूंजी का अर्थ वे मानदण्ड और नेटवर्क होंगे जो संकलन कार्रवाई को सम्भव बनाते हैं जिससे गरीब और मार्जिनकृत लोग संसाधनों और अवसरों तक अपनी पहुंच में वृद्धि कर सकते हैं और अधिशासन की प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं। इस सबंध में हमें समुदायों के अन्दर और उनके बीच सामाजिक पूंजी के विभिन्न आयामों के बीच भेद करना होगा। परिवार के सदस्यों, पड़ोसियों और घनिष्ठ मित्रों को जोड़ने वाले मजबूत संबंध "बन्धन सामाजिक पूंजी" कहे जाते हैं। ये वे कड़ियां हैं जो एकसमान जनांकिकीय विशेषताओं वाले लोगों को जोड़ती हैं। विभिन्न वंशानुगत और व्यावसायिक

संलग्नक–I(1) जारी

पृष्ठभूमियों के लोगों को जोड़ने वाली कमजोर कड़ियों का उल्लेख "बन्धनकारी सामाजिक पूंजी" के रूप में किया गया है, इसका अर्थ सामान्य रूप से तुलनीय आर्थिक स्थिति और राजनीतिक शक्ति के साथ लोगों का समानान्तर संबंध है। एक तीसरे आयाम- "सामाजिक पूंजी का संयोजन" के अन्तर्गत गरीब लोगों और औपचारिक संगठनों, जैसे कि सरकारी विभाग और वित्तीय संस्थान वाले लोगों के बीच ऊर्ध्वाधर संबंध सम्मिलित हैं। संयोजन सामाजिक पूंजी के अन्तर्गत गरीब और मार्जिनकृत समुदायों के कागजात की एक महत्वपूर्ण प्रकृति सम्मिलित है, जिसके अन्तर्गत सदस्यों को सामान्यत: उनके जीवन को प्रभावित करने वाली निर्णय-निर्माण प्रक्रिया से अलग कर दिया जाता है।

हमारे अनुभव के अनुसार, गरीब लोग बन्धन सामाजिक पूंजी के रूप में अच्छे होते हैं। वे ऐसा अन्यों के साथ निकट संबंध स्थापित करके करते हैं जो खुद भी ऐसी ही विशेषताओं वाले होते हैं। ऐसे बन्धन से उन्हें अपनी शक्तिहीनता से निपटने में मदद मिलती है। कभी-कभी, वे समूह जिनसे वे संबंधित होते हैं, अपने से विपरीत समूहों के साथ संबंध-स्थापित करके सामाजिक पूँजी की कमी को पूरा करते हैं किन्तु ये संबंध प्राय: असमान होते हैं, जो संरक्षक-ग्राहक संबंधों में बदल जाते हैं। जब गरीब लोग राज्य के संगठन, सिविल सोसायटी अथवा निजी क्षेत्रक से जुड़ते हैं तो वे अतिरिक्त संसाधन जुटाने की स्थिति में हो जाते हैं, और सामाजिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में समर्थ होते हैं। सामाजिक पूंजी को सहकारी सामाजिक समस्या समाधान, प्रभावी सरकार और तीव्र आर्थिक विकास से जुड़ी के रूप में आंका गया है।

अब मेरे जैसे विकास कार्यकर्ता को पेश आने वाला सबसे जटिल प्रश्न क्या का नहीं बल्कि कैसे का है ? किस प्रकार से विकास परियोजनाओं की प्रभावशालिता और सेवा प्रदाय तंत्र में सुधार करने के लिए सामाजिक पूंजी में वृद्धि की जा सकती है ? किस प्रकार कोई सही संस्थागत पद्धतियों का निर्माण करे जिनके जरिए सोसायटी एक सामाजिक और राजनीतिक रूप से संधारणीय और किफायती ढंग से सोसायटी अपने लिए बुनियादी सेवाएं प्राप्त कर सकती है ? एक समय था जबकि सुझाया गया उत्तर था कि आपूर्ति में अपार विस्तार के साथ मिलाकर सरकारी तंत्र। किन्तु, बुनियादी सेवाएं प्रदान करने की इस विधि की असफलता की वजह से गरीबों तक पहुँचने के लिए ऐसे संस्थागत विकल्पों के संबंध में व्यापक भ्रम पैदा हो गया है। गरीबों तक सार्वजनिक सेवाओं की व्यवस्था करने में कुछेक नवीनतम सफल प्रयोगों से कुछ बुनियादी बातों का पता चलता है, जैसे कि सामुदायिक विकास, भागीदारी और स्थानीय संगठनात्मक क्षमता का महत्व। ये सभी विषय, किसी न किसी प्रकार, प्रभावी सार्वजनिक कार्रवाई का सृजन करने में सामाजिक पूंजी की भूमिका पर बल देते हैं। अपने मजबूत सहकारी आचरण और परस्पर

रूप से पुनर्बलन ताकतों के साथ, महिलाओं के माइक्रो-क्रेडिट उन्मुख स्वयंसेवी समूहों की सफलता भी, सर्वाधिक विशिष्ट उदाहरण के रूप में बंगलादेश का ग्रामीण बैंक रोजगार के प्रोत्साहन और आर्थिक विकास में सामाजिक पूंजी के महत्व को प्रदर्शित करता है।

सामाजिक पूंजी का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग गरीबों के लिए संधारणीय बुनियादी सेवाएं प्रदान करना तथा स्थानीय अवस्थापना व प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन का है। पिछले कुछेक वर्षों के दौरान, हमने प्रभारी के रूप में समुदायिक समूहों के साथ समुदाय-प्रेरित विकास में रूचि का पुन: पैदा होना देखा है तथा स्थानीय पहल, स्व: सहायता तथा स्थानीय संगठनात्मक क्षमता में बदलाव पर जोर दिया जाना है। सामान्य हितों को बढ़ाने, अथवा सामान्य लक्ष्य प्रापत करने के लिए पहल, आयोजन करना तथा कार्रवाई करना, इन मामलों में समुदाय समूह सफल रहे हैं। इन प्रयासों में सामाजिक पूंजी एक प्रमुख घटक रहा है।

इन सभी प्रयासों में भागीदारीपूर्ण प्रबंधन एक विशेषता रही है। भागीदारीपूर्ण प्रक्रिया के फलस्वरूप, जिसके जरिए सामुदायिक समूह सुविज्ञ निर्णय लेने में समर्थ होते हैं, सामाजिक पूंजी अथवा स्थानीय संगठनात्मक क्षमता मजबूत हुई है तथा विशिष्ट परियोजनाओं और कार्यक्रमों के कार्यकाल के बाद भी समस्या का और समाधान हुआ है।

स्थानीय संगठनात्मक क्षमता, लोगों की इकट्ठा काम करने, एक -दूसरे पर विश्वास करने और समस्याओं का समाधान करने के लिए संगठित होने, संसाधन जुटाने व उनका प्रबंध करने, विवादों का समाधान करने और अन्यों के साथ कड़ी कायम करने की योग्यता है। जब लोग सहयोग करते हैं और इकट्ठा काम करते हैं, तो वे जोखिम, जानकारी और निपुणताओं से जुड़ी समस्याओं पर काबू पा सकते हैं। दो प्रकार के तत्व हैं जो स्थानीय संगठन निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं (प्रथमत: समूहों को स्व: शासन के लिए नियमों का विकास करना होगा। दूसरे, समूहों को विद्यमान सामाजिक संगठन में सम्मिलित होने की जरूरत है। क्योंकि गरीबों के शायद ही मजबूत संगठन होते हैं जिससे कि उनकी आवाज सुनी जाए, जिन परियोजनाओं का उद्देश्य गरीबों तक पहुंचना है, उनके अन्तर्गत कार्रवाई करने के वास्ते स्थानीय समूहों की क्षमता को सुदृढ़ बनाने में निवेश किया जाना चाहिए। विकास परियोजनाओं में सामाजिक पूंजी में निवेश, सहकारिता और महिला भागीदारी जैसे संकेतकों में सुधारों में परिलक्षित होता है।

संलग्नक–I(1) जारी

इस बात पर चर्चा अनेक वर्षों तक जारी रहेगी कि सामाजिक पूंजी क्या है और क्या नहीं ? किन्तु यह स्पष्ट है कि सामुदायिक समूहों द्वारा सामूहिक कार्रवाई को सुकर बनाने वाली सामाजिक पूंजी का अनुप्रयोग, निर्धनता उपशमन कार्यनीतियों में एक महत्वपूर्ण घटक बना रहेगा। हमारे लिए चुनौती नीतियां और नियमों की रूपरेखा तैयार करने की है जिनसे सामूहिक कार्रवाई करना सुकर हो सके जो स्थानीय संसाधनों के सृजन और प्रबंधन के लिए महत्वपूर्ण हैं तथा भागीदारीपूर्ण निर्णय निर्माण और संगठनात्मक क्षमता विशेष रूप से गरीबों के बीच, सहायता प्रदान करने के लिए स्थितियां कायम हो सकें।

संलग्नक I(2)

सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी पर राष्ट्रीय चर्चा

19 और 20 दिसम्बर 2006

प्रतिभागियों की सूची

1. श्री जोए मदिथ, कार्यपालक निदेशक, ग्राम विकास, उड़ीसा
2. डा. राजेश टन्डन, प्रधान, पार्टिसिपेटरी रीसर्च इन एशिया (पी आर आई ए), नई दिल्ली।
3. श्री अजय एस. मेहता, कार्यपालक निदेशक, नेशनल फाउन्डेशन फार इण्डिया (एन एफ आई), नई दिल्ली।
4. श्री बी. एन. मखीजा, अध्यक्ष, क्रेडिबिलिटी एलाएंस, मुम्बई
5. श्री सचिन ओझा, मुख्य कार्यपालक, डवलपमेंट सपोर्ट सेन्टर (डी एस सी), अहमदाबाद।
6. सुश्री रीमा नानावती, सेल्फ एम्पलायड वीमेन्स एसोसिएशन, अहमदाबाद।
7. श्री क्रिस्पिन लोबो, वाटरशेड आर्गनाइजेशन ट्रस्ट, (डब्ल्यु ओ टी आर), महाराष्ट्र
8. श्री डी. दुर्गा प्रसाद,आर्गनाइजेशन डिजाइन एण्ड रीसर्चर, मुम्बई।
9. प्रोफेसर विद्युत चक्रवर्ती, अध्यक्ष, राजनीतिक विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
10. डा. कुलदीप माथुर, प्रोफेसर, स्टडी आफ लॉ एण्ड गवर्नेन्स, जवाहर नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
11. डा. सत्य पी. गौतम, प्रोफेसर, सेन्टर फार फिलासाफी, स्कूल फार सोशल साइन्सिज, ज. ने. वि., नई दिल्ली।
12. डा. जे.एम. त्रिवेदी, अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर।
13. डा. पी.सी. चूंडावत, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ोदा।
14. डा. मनोज सोनी, कुलपति, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडोदा।

संलग्नक I(2) जारी

15. श्री विनय शाह, वास्तुकार आयोजनकर्ता, "एमारा" , अहमदाबाद।
16. श्री डी.एस. मेशरम, इन्स्टिट्यूट आफ टाउन प्लानर्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली।
17. श्री मनोज पाण्डेय, मुख्य कार्यपालक, शाहबाद मिल्क यूनियन, बिहार1
18. श्री आर.एस. सोढ़ी, मुख्य महाप्रबंधक, गुजरात कोअपरेटिव मिल्क मार्केटिंग फेडरेशन, आनन्द।
19. श्री वाई.वाई. पाटिल, प्रबंध निदेशक, नेशनल कोअपरेटिव डेयरी फाउन्डेशन आफ इण्डिया, आनंद।
20. श्री जे.पी. डागे, प्रधान सचिव, कोअपरेशन एण्ड मार्केटिंग, मुम्बई।
21. श्री विनोद जुत्शी, सचिव (सहकारिता), राजस्थान सरकार, जयपुर।
22. श्री अनिल कुमार, आयुक्त और सचिव, डेयरी फिशरीज एण्ड एनिमल हसबेन्डरी डिपार्टमेंट, बिहार सरकार।
23. श्री बी.एम. व्यास, प्रबंध निदेशक, गुजरात कोअपरेटिव मिल्क मार्केटिंग फेडरेशन, आनंद।
24. फा. ई. अब्राहम, एस.जे., निदेशक, जेवियर इन्स्टिट्यूट आफ मेनेजमेंट, भुवनेश्वर।
25. डा. सत्यनारायण संगीता, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, इन्स्टिट्यूट फार सोशल एण्ड इकानोमिक चेंज, बंगलौर।
26. सुश्री मोहिनी काक, सोसायटी फार पार्टिसिपेटरी रीसर्च इन एशिया (पी आर आई ए) ।
27. श्री एस. सेन, समन्वयकर्ता (विशेष परियोजना), कन्फेडरेशन आफ इण्डियन इन्डस्ट्री।
28. सुश्री कजरी मिश्रा, सिटी एण्ड रीजनल प्लानिंग, स्कूल आफ आर्ट्स, आर्किटेक्चर एण्ड प्लानिंग, कोरनेल यूनिवर्सिटी।
29. श्री विनय आचार्य, कार्यपालक निदेशक, "उन्नति", अहमदाबाद।
30. श्री ए. रामानाथन, मुख्य महाप्रबंधक, नेशनल बैंक फार एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डवलपमेंट।
31. श्री राणा आलोक सिंह, डवलपमेंट सपोर्ट सेन्टर।
32. श्री राजीव कुमार गुप्ता, "बासिक्स", जयपुर।
33. श्री आर. आर. वोरसानी, कलेक्टर, खेड़ा, नडियाड।

34. सुश्री श्रीपर्णा जी. चौधरी, हंगर प्रोजेक्ट, नई दिल्ली।

35. डा. एन.वी. बेलावाड़ी, वरि. महा प्रबंधक (सी एस -1), नेशनल डेयरी डवलपमेंट बोर्ड, आनंद।

36. श्री रवि शंकर, वरि. महा प्रबंधक (सी एस ।।), नेशनल डेयरी डवलपमेंट बोर्ड, आनंद।

ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

37. प्रोफेसर देवीप्रसाद मिश्रा, चर्चा समन्वयकर्ता, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

38. प्रोफेसर अजीत चौधरी, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद।

39. प्रोफेसर अरविंद गुप्ता, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

40. प्रोफेसर एच.एस. शेलेन्द्र, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

41. प्रोफेसर मैत्रेयी कोलेगल, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

42. प्रोफेसर प्रबल के. सेन, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

43. प्रोफेसर अरूण एस. नाथन, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

44. सुश्री नीलिमा खेतान कार्यवाहक निदेशक, ग्रामीण प्रबंधन संस्थान, आनंद

प्रशासनिक सुधार आयोग

45. श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष

46. श्री वी. रामचन्द्रन, सदस्य

47. डा. ए. पी. मुखर्जी, सदस्य

48. डा. ए. एच. कालरो, सदस्य

49. श्रीमती विनीता राय, सदस्य-सचिव

प्रशासनिक सुधार आयोग के अधिकारीगण

50. श्री ए.बी. प्रसाद, संयुक्त सचिव

51. श्री पी.एस. खरोला, संयुक्त सचिव

52. श्री संजीव कुमार, निदेशक

संलग्नक I(3)

सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक सेवा प्रदान करने पर राष्ट्रीय चर्चा

19 और 20 दिसम्बर 2006

कार्य दल द्वारा की गई सिफारिशें

चर्चा के दौरान प्रतिभागियों के पाँच समूहों में वर्गीकृत किया गया था ताकि सामाजिक पूंजी, विश्वास और सार्वजनिक सेवा सुपुर्दगी से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की जा सके। संबंधित समूहों की मुद्देवार सिफारिशें निम्न प्रकार हैं:

I. सरकार के सभी स्तरों पर सामाजिक पूंजी के निवेश और प्रोत्साहित करने के संबंध में उपाय

- शासन के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक पूंजी के प्रोत्साहन को संगठनों के डिजाइन, संगठनों में आवंटित प्राधिकार और शिक्षा तथा सामाजिक पूंजी के विकास के लिए शिक्षा तथा प्रशिक्षण के उपयोग की दृष्टि से समझा जा सकता है।
- चर्चा के उद्देश्य को भावी निदेशन के सामान्य संकेतकों की प्राप्त की दृष्टि से समझा जा सकता है; किन्तु एक उत्पादक परिसम्पत्ति होने के नाते सामाजिक पूंजी को, जिसे हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता, संदर्भ और स्थान विशिष्ट के रूप में समझा जाना है।

(क) शासन में सामाजिक पूंजी में संस्थागत मुद्दे

- प्रमुख मुद्दा अभिवृत्तियों में परिवर्तन का है। प्रभावी कार्यान्वयन हेतु मात्र नए कानून बनाना पर्याप्त नहीं हो सकता क्योकि कानूनों से मात्र निदेशन प्राप्त हो सकता है। "अफसरशाही को दूर किए जाने" पर जोर दिए जाने की जरूरत है, जिसका अर्थ भारतीय शासन पद्धति में अफसरशाहीपूर्ण प्रक्रियाओं के अन्धाधुंध पालन किए जाने के कारण पैदा होने वाली कठोरताओं में कमी लाना है।
- अफसरशाहीपूर्ण कठोरतापूर्ण को दूर किए जाने को एक तरीका प्रत्येक विभाग के लिए "नागरिक घोषणा-पत्र (चार्टर) अपनाना है। तथापि अधिकांश विभागों में "नागरिक चार्टर"

एक मृत पत्र दस्तावेज रहता है क्योंकि लोगों की इसकी जानकारी नहीं होती और इसे अत्यंत निम्न प्राथमिकता के साथ अपनाया जाता है। इसलिए जिस ढंग से "नागरिक चार्टर" को अपनाया जाना चाहिए वह भी बहुत महत्वपूर्ण है। नागरिक चार्टर की विद्यमानता के बारे में जानकारी में भी वृद्धि किए जाने की जरूरत है।

- सरकारी कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के संदर्भ में, मानीटरन और मूल्यांकन में सामाजिक पूंजी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। उदाहरण के लिए विभिन्न स्तरों पर मानीटरन और मूल्यांकन हेतु संयुक्त नागरिक मंचों का इस्तेमाल करने से मूल्यांकन प्रक्रिया को आन्तरिक बनाने तथा कार्यक्रमों की प्रभावशालिता में बढ़ाने में मदद मिल सकती है। ऐसे मंचों की स्थापना करने में विद्यमान सिविल सोसायटी संगठनों और मंचों की जानकारी प्राप्त करना, उन्हें मजबूत बनाना और जहाँ वे विद्यमान नहीं हैं वहाँ उनकी स्थापना करना उपयोगी हो सकता है। संयुक्त नागरिक मंचों से, संगत फीडबैक की व्यवस्था करके संगठनात्मक डिजाइन प्रक्रियाओं में भी योगदान मिल सकता है। तथापि, संयुक्त नागरिक मंचों की स्थापना के लिए उपयुक्त संस्थानों की जरूरत है जो इन्हें आगे बढ़ा सकें।

- अधिकारियों और नागरिकों के बीच विश्वास का माहौल पैदा करने के उद्देश्य से, विभागों द्वारा की गई कार्रवाई के संबंध में रिपोर्टों को प्रकाशित और प्रचारित किया जाना चाहिए । इसके अन्तर्गत की गई अथवा न की गई कार्रवाई के संबध में स्पष्टीकरणों को भी शामिल किया जा सकता है। इससे, विभागों और नागरिकों के बीच उपयोगी विचार-विमर्श के लिए सामाजिक पूंजी की व्यवस्था हो सकती है। उदाहरणार्थ, वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा रात्रि को गांवो में ठहरने से पद्धति में ग्रामवासियों के विश्वास को बढ़ाने में मदद मिली।

- प्रभावी कार्यक्रम कार्यान्वयन से संबधित एक मुद्दा, स्तरों के बीच तथा विभागों के बीच जानकारी बाँटने में समस्याओं के कारण विभिन्न स्तरों पर अपर्याप्त जानकारी की उपलब्धता है। इसका समाधान विभिन्न विभागों के बीच जानकारी भागीदारी हेतु पद्धतियां तैयार करके किया जा सकता है जिससे कि प्रत्येक निर्णय-निर्माण स्तर पर संगत जानकारी उपलब्ध हो सके। विभिन्न विभागों में विद्यमान स्वतन्त्र आयोजना प्रक्रियाओं की वजह से प्रयासों में दोहरापन आता है तथा योजनाएं भी दोहरी हो जाती हैं। इस संदर्भ में, एकीकृत स्थानीय

संलग्नक I(3) जारी

आयोजना पद्धतियों में, जैसे कि जिला आयोजना समिति को सुदृढ़ बनाए जाने की जरूरत है।

- सरकारी एजेन्सियों द्वारा इस समय पालन की जा रही आकलन पद्धतियां वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा गोपनीय रिपोर्टों की है। इससे अविश्वास और साथ ही निचले स्तर के कर्मचारियों और सेवाओं के उपभोक्ताओं के बीच भी असम्मान पैदा हो सकता है। खुली आकलन पद्धतियों का उपयोग करके और साथ ही अन्य पणधारियों द्वारा आकलन को शामिल करके भी इस स्थिति का कुछ सीमा तक समाधान हो सकता है। खुली आकलन पद्धति से, स्व: आकलन और वरिष्ठों के आकलन की मिली-जुली पद्धति के जरिए, जिसमें बातचीत की प्रक्रिया सम्मिलित हो, विश्वास की भावना पैदा करने में मदद मिल सकती है। आकलन प्रक्रिया में अन्य पणधारियों को शामिल करने से अधिकारियों को अन्त्य उपभोक्ताओं के प्रति अधिक संवेदनशील बनाने में मदद मिल सकती है।
- बेहतर जवाबदेही की पद्धतियां, पणधारियों और संयुक्त नागरिक मंचों जैसी पद्धतियों सहित, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, लागू किए जाने की जरूरत है। इससे, संगठनात्मक लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में कार्य करने के लिए अधिकारियों को उचित प्रोत्साहन प्रदान करने में मदद मिलेगी। आकलन करने और प्रोत्साहनों की वर्तमान पद्धति के अन्तर्गत वैयक्तिक निष्पादन और प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने का प्रयास किया जाता है। इससे, दलों की कारगरता को कम करके, संगठन के समग्र निष्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए, संगठन/विभाग/टीम स्तर पर कार्यकुशलता को प्रोत्साहित करने के लिए वैयक्तिक के स्थान पर समूह आधारित प्रोत्साहन पद्धतियों की दिशा में बदलाव करने की जरत है। क्योंकि विभिन्न कामकाजी माहौलों और भिन्न-भिन्न स्तरों पर कार्यरत संगठनों और दलों की आकलन जरूरतें भिन्न-भिन्न होती हैं इसलिए एक ऐसी आकलन पद्धति लागू करना बेहतर होगा जिसके तहत विभागों द्वारा खुद ही मापदण्ड आन्तरिक रूप से तैयार किए जाएं।
- समुदाय समूहों को सौंपी गई बढ़ी हुई जिम्मेदारी के परिवर्तित परिवेश में, प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण रोजगार विवरण के साथ, अधिकारियों की बेहतर स्पष्ट भूमिका की व्यवस्था करना तथा उसका कार्य का ब्योरा प्रदान करना जो उसे निष्पादित करने हैं, बेहतर होगा।

- विद्यमान सरकारी संगठनों में, विभिन्न स्तरों और संवर्गों के बीच विशाल अन्तर हैं। इसे, आन्तर-संस्थागत और अन्तर-संस्थागत खेलों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे अनौपचारिक मंचों की स्थापना करके पाटा जा सकता है, जिनसे सामाजिक पूंजी को प्रोत्साहित करने में मदद मिलेगी।

- वर्तमान सरकारी पद्धतियां, अपनी रूपरेखा के अनुसार, अधीनस्थों के अविश्वास को बढ़ावा देती हैं क्योंकि सभी महत्वपूर्ण निर्णय केन्द्रियकृत हैं। इन पद्धतियों में संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि उपयुक्त स्तर पर लोगों को प्राधिकार को प्रत्यायन/प्राधिकार/जिम्मेदारी के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था हो सके। विकेन्द्रीकृत स्तर पर विश्वास और क्षमताओं का निर्माण करने के लिए, सकारात्मक अनुभवों की व्यवस्था करना आवश्यक है। ऐसे सकारात्मक अनुभवों से ही आधार स्तर पर विकास हेतु सामाजिक पूंजी को बढ़ावा मिलेगा।

- अधिकारियों द्वारा दिन-प्रतिदिन आधार पर निर्णय लिए जाने के समय, प्रत्येक कार्रवाई करने के संबंध में निदेश लेने के लिए नियमों की व्यवस्था सम्भव नहीं है। वास्तविक जीवन स्थितियां हेण्डल करने के लिए कतिपय मात्रा में निदेश की आवश्यकता है। सभी कर्मचारियों के विवेक और उपयुक्त निर्णय लेने के संबंध में उनकी योग्यताओं का सम्मान करना जरूरी है ताकि एक प्रभावी कार्यक्रम कार्यान्वयन पद्धति कायम हो सके।

- प्रजातान्त्रिकरण का एक सामान्य माहौल निर्मित करने की जरूरत है जैसे कि अधिकारियों पर कार्य निष्पादन के लिए लगातार दवाब डाला जाए और सामुदायिक व स्थानीय संगठन इस प्रक्रिया में पूरक रूप से कार्य निष्पादित करने में समर्थ हों। ऐसा करने के लिए, स्थानीय स्व: शासन, पंचायतों, नगरपालिकाओं और निचले स्तर पर आयोजना प्रक्रिया को मजबूत बनाने के लिए सावधानीपूर्वक प्रयास किए जाने की जरूरत है।

- भारतीय शासन प्रणाली में, प्रत्येक विभाग में कतिपय संवर्गों के अधिकारियों का सामान्यत: प्रभुत्त्व है। यह आवश्यक रूप से विभागों द्वारा की जाने वाली विशिष्ट गतिविधियों में विशेषज्ञता के कारण नहीं है। इन संगठनों की कार्यकुशलता में सुधार करने के उद्देश्य से, संवर्गों द्वारा पदों पर एकाधिकार में कमी लाना आवश्यक है। व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित प्रबंधक आवश्यक हो सकते हैं जो निश्चित अवधि के लिए ठेके पर कार्य करें। यह विशेष

संलग्नक I(3) जारी

रूप से संगत है क्योंकि वरिष्ठ स्तरीय अधिकारियों का प्राय: स्थानान्तरण होता रहता है और व्यावसायिक प्रबन्धकों से इन विभागों में सततता बनाए रखने में मदद मिल सकती है। यह सुनिश्चित करना भी उपयोगी होगा कि आई ए एस अधिकारियों को क्षेत्रकों और विभागों में विशेषज्ञता प्राप्त हो और उनका स्थानान्तरण/तैनाती इन्हीं क्षेत्रकों के अन्दर की जाए। इससे यह भी सुनिश्चित होगा कि इन क्षेत्रकों के अन्दर सामाजिक पूंजी में वृद्धि हो क्योंकि एक क्षेत्रक के अन्दर अधिकारियों के बीच लगातार अन्योन्यक्रिया होगी।

- यह भी परिकल्पना की गई कि एक जिले में, जिला कलेक्टर सामान्य रूप से कार्यकलापों की स्थिति तथा विकास परियोजनाओं की दिशा के बारे में भली-भांति जानकार होते हैं किन्तु जिले में अगले स्तर के अधिकारियों के साथ सम्प्रेषण का अन्तराल होता है। इसलिए जिले में सम्बद्ध पहलुओं पर कार्यरत विभागों के बीच अधिकारियों के बीच अन्योन्यक्रिया में वृद्धि करना उपयोगी होगा।

(ख) सामाजिक पूंजी के निर्माण के लिए प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण

- प्राधिकारियों के स्तरों के बीच एक सेतु निर्मित करने के लिए संकेन्द्रित प्रशिक्षण एक उपयोगी साधन है। तथापि, वर्तमान में आयोजित किया जाने वाला प्रशिक्षण- जैसे कि संवर्ग आधारित प्रशिक्षण-इसके लिए उपयोगी नहीं हो सकता। ऐसे लक्ष्य-विशिष्ट और संगठन-विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना बेहतर होगा जिससे कि भिन्न-भिन्न प्रतिभागी (विभिन्न स्तरों और भिन्न-भिन्न विभागों से भी) अपने सामान्य लक्ष्यों और मुद्दों के बारे में परिप्रेक्ष्यों में भागीदारी कर सकें। इससे, एक प्रकार से प्रत्येक विभाग और परियोजना में सरकारी अधिकारियों के विभिन्न स्तरों के बीच अन्तर को पाटने की महत्वपूर्ण समस्या भी हल हो सकेगी। तथापि, इस सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी पारम्परिक मनोवृत्ति पर काबू पाने के लिए उपाय विकसित करने होंगे जो सामान्यत: प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान हस्तान्तरित हो जाती हैं। विभिन्न स्तरों के बीच भिन्न-भिन्न दक्षताएं और निपुणताएं भी, जिन्हें एक साथ प्रशिक्षित किया जाना है, प्रशिक्षण साधनों और पद्धतियों की दृष्टि से एक चुनौती प्रस्तुत करती हैं। फिर भी, आन्तर-संवर्ग प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान भिन्न-भिन्न स्तरों को इकट्ठा करने का कोई विकल्प नहीं है।

- प्रदान किया जाने वाला प्रशिक्षण, कार्यस्थल पर विभिन्न कार्यकर्ताओं द्वारा अपेक्षित ज्ञान, निपुणताओं और अभिवृत्तियों की जरूरतों से जुड़ा होना चाहिए। इसलिए प्रशिक्षण मांग-आधारित होना चाहिए जिससे निपुणताओं, नियमों और भूमिकाओं का अध्ययन सहज होगा। प्रशिक्षण के दौरान टीम और नेतृत्व निर्माण पर और सहकारी अधिकारियों की जोखिम से बचने की प्रवृत्ति और व्यवहार को एक सक्रिय परिणामोन्मुखी व्यवहार और प्रवृत्ति में बदलने पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

II. स्थानीय समुदाय के साथ, विशेष रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों में, सक्रियतापूर्वक भागीदारी करने के लिए प्रशासन की क्षमता में सुधार और उसे सुदृढ़ करना।

(ग) भागीदारियां

- भागीदारियां, जागरूकता, विश्वास के मूल्यों, परस्पर सम्मान, भागीदारीपूर्ण प्रतिबद्धता, पारदर्शिता, स्वामित्त्व और प्रशासन व स्थानीय समुदायों के बीच लक्ष्यों की भागीदारी के साथ, कायम होती हैं।

- भागीदारी को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है, अर्थात अन्योन्यक्रिया, कारोबार और अन्तर्ग्रात जहाँ प्रशासन स्थानीय समुदायों को सम्मिलित करने की एक सक्रिय भूमिका निभानी है। इसकी सफलता, वांछित परिणाम प्राप्त करने के उद्देश्य से सम्मिलित पक्षकारों के उद्देश्यों के सावधानीपूर्वक तालमेल पर निर्भर करती है। यह ऐसी विकासात्मक पहलों में यह सम्भव है जिसके अन्तर्गत प्रशासक और स्थानीय समुदाय एक दूसरे के पूरक हों और तालमेल के साथ कार्य करें।

(ख) भागीदारियों की जरूरत को समझना

- प्रशासन/प्रशासक को उन समुदायों की जानकारी होनी चाहिए जिनके लिए वे अस्तित्व में हैं। इसके साथ ही, स्थानीय समुदायों को उनके संवैधानिक अधिकारों और जिम्मेदारियों तथा विकासात्मक कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्रदान किए जाने की जरूरत है जिससे कि प्रभावी भागीदारी को वहाँ तक पहुंचाया जा सके। इस पहल की स्पष्टता से कि भागीदारी क्यों जरूरी है और इससे क्या लाभ हैं, प्रभावी भागीदारियां कायम करने में मदद मिलती है।

संलग्नक I(3) जारी

- प्रशासन/प्रशासकों द्वारा स्थानीय समुदायों को और उनके अन्दर विभिन्न स्तरों पर सम्मिलित व्यक्तियों के बोध और पहचान का सम्मान किया जाना चाहिए।
- यद्यपि यह स्पष्ट है कि यह बराबरी की भागीदारी नहीं होगी तथापि इसे अधिक कार्य योग्य बनाने के लिए प्रयास करने होंगे।

(ग) स्थानीय समुदायों के साथ सफल भागीदारियों का निर्माण करने के लिए सहायतार्थ सुझाव

i) प्रशासन

- विकास पहलों के आशान्वित परिणामों को ध्यान में रखते हुए प्रोत्साहनों और हतोत्साहनों की पद्धति विकसित करने की जरूरत है।
- प्रशासन में सम्मिलित कार्मिकों को आधारभूत वास्तविकताओं से अवगत कराने के लिए समय-समय पर प्रणालियां कायम की जानी चाहिए। यह, नियमित रूप से दौरों वार्ता और स्थानीय समुदायों के साथ, विशेष रूप से दूरवर्ती इलाकों में, विचार-विमर्श के रूप में हो सकता है।
- स्थानीय समुदायों के साथ नियमित संवाद और विचार-विमर्श सुकर बनाने के लिए क्षेत्रीय अधिकारियों को प्रक्रियाओं को, सरल बनाकर, नेमी प्रशासनिक जिम्मेदारियों से मुक्त किए जाने की जरूरत है।
- व्यक्तिगत स्तर पर परिवर्तन संबंधी प्रशिक्षण : महाराष्ट्र में विपासना और गुजरात में कर्मयोगी अभियान जैसे शिविरों से प्रशासकों को अधिक विचारशील और वैयक्तिक रूप से जिम्मेदार बनने में मदद मिली है। प्रशिक्षण का उद्देश्य मात्र उन पद्धतियों का विकास करना नहीं, जिनमें वह कार्य करता है, बल्कि व्यक्ति का विकास करना होना चाहिए। प्रशिक्षण से भावना के आन्तरीकरण में मदद मिलनी चाहिए कि सेवा स्थानीय समुदायों के साथ भागीदारी में प्रदान की जानी चाहिए।
- प्रशासक और स्थानीय समुदायों के बीच जानकारी/संबंध में विषमता, सफल भागीदारियों के लिए एक महत्वपूर्ण बाधा है। यह विषमता, स्थानीय समुदायों और प्रशासकों के बीच जानकारी और ज्ञान के बीच अन्तरण के कारण उत्पन्न होती है। प्रशासक, स्थानीय समुदायों का सहयोग प्राप्त किए बिना कार्यक्रम के संचालन और संसाधनों के उपयोग को नियंत्रित

करना चाहते हैं। यह, आधार स्तरीय आयोजना के प्रति अभिवृत्ति को प्रभावित करता है और बदले में सरकारी पहलुओं के संबंध में स्थानीय समुदायों के समर्थन को कम करता है। इन महत्वपूर्ण कमियों को दूर करने की जरूरत है।

- प्रशासकों के योगदान में सुधार करने के लिए उनकी आन्तरिक क्षमताओं का विकास करने की जरूरत है। ऐसा नूतनताओं के प्रति व्यक्तियों की क्षमताओं को प्रोत्साहित करके और नूतनताओं के लिए उपयुक्त प्रोत्साहनों की व्यवस्था करके किया जाता है।
- सरकारी सेवकों के बीच मानदण्ड और मूल्य विकसित करने के लिए एक समर्थनकारी परिवेश कायम करना।
- स्थानीय समुदायों के साथ सेतु निर्मित करने में प्रशासन द्वारा सिविल सोसायटी संगठनों को प्रभावी ढंग से शामिल किया जा सकता है।
- और अधिक उद्देश्यपरक आधार पर परिणामों का आकलन।

ii) **स्थानीय समुदाय**

- आधार स्तर पर, विशेष रूप से जानकारी विषमताओं को दूर करने के लिए प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण महत्वपूर्ण है।
- प्रशिक्षण के लिए अधिक धन की व्यवस्था कराकर पंचायती राज का सुदृढ़ीकरण। महिलाओं की सोसायटी में स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनकी प्रशिक्षण जरूरतों का पता लगाने पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
- इस बात को समझना महत्वपूर्ण है कि देशज ज्ञान से सरकारी पहलों के प्रति स्थानीय समुदायों के बीच सकारात्मक मनोवृत्ति का निर्माण करने में मदद मिलती है।
- पंचायत के उपयुक्त स्तरों पर कार्यक्रम आयोजना और कार्यान्वयन के लिए निधियों का विकेन्द्रीकरण और आवंटन ताकि उन्हें कार्यात्मक और प्रभावी बनाया जा सके।
- विकास के लिए वैकल्पिक उपाय सुझाने के वास्ते सिविल सोसायटी संगठनों/स्थानीय समुदायों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संलग्नक I(3) जारी

- विकासात्मक मुद्दों के विनिर्धारण और विकास पहलों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए मिडिया, औपचारिक और अनौपचारिक समूहों जैसे अन्य पणधारियों को शामिल करना।

III. सरकारी तथा सिविल सोसायटी संस्थानों के बीच बेहतर तालमेल और प्रशासनिक दृष्टिकोणों की जन–केन्द्रिकता को बढ़ावा देना

(क) न्यास/सोसायटियां

i) सामान्य शर्तें जिससे कि न्यास/सोसायटियां स्वतन्त्र और आत्म–निर्भर तरीके से कार्य कर सकें:

- न्यास और सोसायटियां संगठनों के रूप हैं जिनके सामान्यत: धर्मादा कार्यकलाप होते हैं, इन स्वैच्छिक क्षेत्रकों की संख्या अनेक हैं और ये बहुत से कार्यकलापों में भाग लेते हैं, जिनमें स्वास्थ्य, शिक्षा और लघु वित्त सम्मिलित हैं। इन कार्यकलापों के लिए वे विभिन्न निधियन एजेन्सियों से धन जुटाते हैं, किन्तु उन्हें अपना बुनियादी उद्देश्य पूरा करने के लिए अधिक मात्रा में आत्मनिर्भरता की जरूरत है। एक प्रमुख मुद्दा समर्थकारी स्थितियां पैदा करना है जिसे विकसित किए जाने की जरूरत है ताकि ये संगठन अधिक आजादी और आत्म निर्भरता के साथ काम कर सकें।

- सरकारी स्वामित्व वाले एन जी ओ - "गोंगो", बाह्य निधियन पर निर्भरता को कम करने के लिए एक विकल्प हो सकता है। दूसरी ओर, "गोंगो" के मामले में, स्वैच्छा की अवधारण और आजादी तथा स्वायत्तता की सीमा एक समस्या है। इसके अलावा, स्वायत्तता और आत्म-निर्भरता बनाए रखने के लिए, एन जी ओ को सरकार से दूर रखने की जरूरत है तथा एन जी ओ को उन मानदण्डों के बारे में बताना महत्वपूर्ण है जिनका उन्हें अनुसरण करना चाहिए।

- भारत में, स्वैच्छिक क्षेत्रक को मुख्य रूप से धार्मिक कार्यकलाप का एक भाग समझा जाता है किन्तु उद्योगों और व्यक्तियों के माध्यम से धर्मादा/दान को प्रोत्साहित करके निधि जुटाने के मुद्दे को न्यूनतम किया जा सकता है।

मुख्यत: राजस्व तंत्र में भ्रष्टाचार को कम करने के लिए विद्यमान प्रचालन को अधिक पारदर्शी बनाने के लिए कर कानूनों में सुधार करना महत्वपूर्ण है।

(ii) न्यासों और सोसायटियों के लिए विनियामक रूपरेखा

- जटिल सहकारी कानूनों की तुलना में, स्वैच्छिक क्षेत्रक को विनियमित करने वाले कानून अत्यंत अस्पष्ट और शिथिल हैं। प्रारम्भिक स्तर पर समुचित छानबीन की पद्धति के अभाव के फलस्वरूप छद्म नाम/कागजी संगठनों की स्थापना होती है जो दाता निधियों के लिए होड़ करते हैं।
- एन जी ओ के कार्यकलापों के आधार पर उनकी छानबीन और प्रत्यायन के लिए सार्वजनिक आडिट की जरूरत है। एन जी ओ का अनिवार्य प्रत्यायन, कर छूट प्राप्त करने का एक साधन हो सकता है। पाकिस्तान और फिलिपीन्स जैसे देशों ने, एन जी ओ की छानबीन करने के लिए पहले ही इस प्रथा को अपनाया है।
- एन जी ओ के प्रत्यायन के लिए, निम्नलिखित घटकों के साथ "पंचशील दृष्टिकोण" को अपनाया जा सकता है:

(i) पहचान - संगठन की पहचान क्या है ? वे किस प्रयोजन के लिए सोसायटी में विद्यमान हैं ? दस्तावेज सही ढंग से होने चाहिए।

(ii) उद्देश्य-संगठन का मिशन और कल्पना क्या है ?

(iii) अधिशासन की आन्तरिक पद्धति- जोरदार प्रचालन नीति, मानव संसाधन प्रबंधन, नियमित बैंठकें, कार्यनीतियां तथा दिशा निर्देश।

(iv) प्रचालन: उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिए। उन्हें सदैव उत्तरजीविता की नीति नहीं अपनानी चाहिए। (धन के पीछे भागना और प्राय: गतिविधियां बदलना)।

(v) पारदर्शिता: लेखों की लेखा परीक्षा की जानी चाहिए तथा वार्षिक रिपोर्ट वित्त वर्ष समाप्त होने के अधिकतम आठ महीने के अन्दर प्रकाशित की जानी चाहिए और सभी पणधारियों को भेजी जानी चाहिए तथा कीमत अदा करने पर प्रत्येक को उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

संलग्नक I(3) जारी

- यद्यपि कुछेक एन जी ओ उपरोक्त दृष्टिकोण (लघु-वित्त) के अनुरूप रेटिंग प्रक्रियाओं के अनुरूप अपने आपको ढाल रहे हैं तथापि उच्च मानदण्ड और सर्वोत्तम प्रथाएं अपनाए जाने की जरूरत है।
- प्रत्यायन के संबंध में भी कुछ कमियां हैं जिनका निम्न प्रकार विनिर्धारण किया जा सकता है:
  - प्रत्यायन हेतु स्वैच्छिक संगठनों/एनजीओ के पास उपलब्ध संसाधनों का अभाव/कमी,
  - प्रत्यायन अपनाने की जरूरत के बारे में जानकारी का अभाव

(iii) **सुझाव**

- सरकार को प्रत्यायन के संबंध में संगठन को जानकारी और संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए। इसी आधार पर "नाबार्ड", लघु-वित्त में सम्मिलित संगठनों को सहायता प्रदान कर रहा है।
- सरकारी मानदण्डों और एन जी ओ बनाम "ठेकेदारों" के बीच सरकारी लेन-देन के बीच स्पष्ट रूप से भेद करने के महत्व पर बल दिया गया । सम्मिलित संगठनों द्वारा बेहतर निष्पादन के लिए "बाधा-रहित प्रशासन लाभों की व्यवस्था की जानी चाहिए"
- राज्य स्तर पर प्रत्यायन एजेन्सियों को विनियंत्रित करने के लिए एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विनियामक/ओमबड्समन की जरूरत है।
- स्वैच्छिक क्षेत्रक के बीच विशाल विविधता को देखते हुए, आकार, क्षेत्र, प्रचालन स्वरूप आदि के आधार पर "प्रणालीबद्ध विनियमन" की जरूरत है। उदाहरण के लिए प्रणालीबद्ध विनियमन के अन्तर्गत सम्मिलित है:
  - छोटे एन जी ओ के संबंध में शीर्ष आडिट
  - बडे एन जी ओ के लिए सार्वजनिक आडिट

- संगठन की वित्तीय सुदृढ़ता और कार्यात्मक शक्ति का इस्तेमाल प्रत्यायन के आधार के रूप में किया जा सकता है। राष्ट्रीय विनियामक द्वारा विभिन्न प्रत्यायन एजेन्सियों के परामर्श से ऐसे ही अन्य बेंचमार्कों के बारे में निर्णय लिया जाना चाहिए।

(iv) **अन्यों के संबंध में विनियमन**

- न्यासों, सोसायटियों और लघु-वित्त के क्षेत्र में कार्यरत एन जी ओ के लिए विनियामक रूपरेखा की व्यवस्था करने वाला एक विधेयक संसद के विचाराधीन है। स्वास्थ्य, शिक्षा आदि जैसे अन्य क्षेत्रों में कार्यरत संगठनों के लिए ऐसा ही विनियामक फ्रेमवर्क तैयार करने की जरूरत है। तथापि "विनियामक" सरकारी क्षेत्रक से बाहर होना चाहिए।

(v) **विवाद निपटान**

- स्वैच्छिक क्षेत्रक में आन्तर तथा अन्तर-स्तर विवादों के समाधान के लिए साधनोपायों पर विचार किया गया।
  - अन्तर: एन जी ओ और भागीदार के बीच
    उदाहरण-गुजरात सरकार और "सेवा", आन्ध्र प्रदेश लघु वित्त विवाद
  - आन्तर: एक एन जी ओ व अन्य के बीच
    उदाहरण-निधियन के लिए एन जी ओ के बीच प्रतिस्पर्धा
- इस संबंध में एक स्वतन्त्र विनियामक पद्धति की जरूरत है, जिसके अन्तर्गत विवादों को स्पष्ट रूप में समझा जा सके और बिना किसी पक्षपात के विवाद का समाधान करने की आजादी दी जा सके।

(ख) स्वयं-सेवी समूह (एस एच जी)

- स्वयंसेवी समूह, 10-20 समरूप सदस्यों का एक अनौपचारिक संगठन है जो बचत करने और औपचारिक संस्थानों से ऋण का लाभ उठाने के लिए इकट्ठे होते हैं।

(i) **वित्तीय संसाधन जुटाने में एस एच जी की अधिक आत्म-निर्भरता के लिए समर्थनकारी स्थितियां**

संलग्नक I(3) जारी

- एस एच जी बचत प्रेरित होते हैं और उनकी बड़ी शक्ति उनकी स्वायत्तता में है जिसे बनाए रखने की जरूरत है। यद्यपि, "संयुक्त देयता" को एस एच जी के बुनियादी सिद्धान्त के रूप में प्रोन्नत किया जाता है, तथापि सिद्धान्त का प्रशासन, कानूनी रूप से सम्भव नहीं है। किन्तु हाल ही के वर्षों में, संगठनों द्वारा सदस्यों की संयुक्त-देयता के आधार पर भागीदारी माडल को अपनाया गया है जिसकी, एस एच जी की आत्म-निर्भरता को बनाए रखने/कायम रखने के लिए सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए।
- वर्तमान स्थिति में एस एच जी की संगतता को समझते हुए सरकार एस एच जी का उपयोग विभिन्न कार्यक्रमों, जैसे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली, मध्याह्न भोजन आदि को कार्यान्वित करने में एक साधन के रूप में कर रही है। किन्तु एक साधन के रूप में एस एच जी का इस्तेमाल करने से पहले सरकार को एस एच जी का इस्तेमाल करने से पहले सरकार को एस एच जी के उपलब्ध संसाधनों (क्षमता, योग्यता) की कमी/ विद्यमानता को समझना चाहिए।
- उन्हें सक्षम एजेन्ट बनाने के लिए, क्षमता निर्माण, तकनीकी सहायता और एस एच जी के प्रशिक्षण की दृष्टि से पर्याप्त निवेश किया जाना महत्वपूर्ण है। अभी तक, एस एच जी के क्षमता निर्माण के लिए बड़ा निवेश, सरकारी संस्थानों की तुलना में, निजी एजेन्सियों और अन्य दाता संगठनों द्वारा किया गया है। इसके साथ ही, सरकारी संस्थानों के साथ-साथ बैंकों की सक्रिय भागीदारी और निवेश की भी जरूरत है।

(ii) **सहकारिताएं**

- प्रथमत: यह समझना आवश्यक है कि सहकारिताएं "नागरिक" उद्यम होने की बजाए "सदस्य" उद्यम हैं। वर्तमान स्थिति में, सहकारिताएं न तो उपभोक्ता स्वामित्व वाली और न ही "उपभोक्ता नियंत्रित" हैं।

- निम्नलिखित मुद्दों के संबंध में जागरूकता और समर्थन जुटाने की जरूरत है:
  - सहकारिताएं क्या हैं ?
  - सहकारिताएं क्या होनी चाहिए ?
- सहकारिताओं के संबंध में प्रस्तावित संवैधानिक संशोधन (106वां संवैधानिक संशोधन विधेयक) तथा बेहतर राज्य सहकारिता कानून के लिए समर्थन प्रदान करने से भारत में सहकारिताओं के कामकाज के लिए और अधिक समर्थनकारी कानूनी परिवेश कायम हो सकता है।
- जटिल सहकारिता कानून और इसके प्रतिबंध का हल निकालने के लिए नूतन समाधानों को अपनाने के महत्व पर समूह द्वारा चर्चा की गई थी तथा निम्नलिखित सुझाव दिए गए:
- और अधिक उदार सहकारिता कानूनों (राज्य हस्तक्षेप से बचने के लिए बहु-राज्य सहकारिता कानून) के अन्तर्गत विनियंत्रित होने के विकल्प का चयन/ इस्तेमाल करना।
- उनकी स्वायत्तता की जोरदार ढंग से सुरक्षा करना, यदि वे हैं तो
- सरकारी इक्विटी का प्रत्यावर्तन करके -अपने कार्यों का प्रबंध करने के लिए प्रचालनात्मक/संगठनात्मक स्वायत्तता प्राप्त करना।
- प्रशिक्षण सहकारिता अधिशासन का एक महत्वपूर्ण घटक है तथा सहकारिता प्रशिक्षण और शिक्षा में निवेश सहकारिताओं के बेहतर निष्पादन के लिए एक प्रमुख प्रेरक बना रहेगा।

IV. सरकार और सिविल सोसायटी संस्थानों के बीच बेहतर सामन्जस्य: उद्योग एसोसिएशन और व्यावसायिक निकाय

- उद्योग एसोसिएशन और व्यावसायिक निकाय, दो भिन्न-भिन्न किस्म के सदस्य-आधारित सिविल सोसायटी संस्थानों का प्रतिनिधित्व करते है। प्रश्न यह है कि किस प्रकार सामाजिक

संलग्नक I(3) जारी

पूंजी और इन संस्थानों के अन्दर विश्वास तथा सरकार के साथ उनकी भागीदारी से नागरिकों के लिए सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने में सुधार करने में मदद मिल सकती है।

- व्यावसायिक निकाय के अन्दर सामाजिक पूंजी, अव्यावसायिक आचरण अथवा किसी व्यावसायिक द्वारा ड्यूटी की अवहेलना से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन हो सकती है।
- व्यावसायिक निकायों के सदस्य इन निकायों से सामूहिक लाभ/उनसे जुड़े लाभ प्राप्त कर रहे हैं किन्तु वे अनुशासनात्मक मानदण्डों का पालन नहीं करते। इसका आंशिक कारण यह है कि दण्ड प्रवर्तित करने की इन निकायों की समर्थता असंतोषजनक है-अभी तक नैतिक मुद्दों के बावजूद किसी भी व्यावसायिक ने अपना लाइसेंस/अभ्यास नहीं खोया है।
  - व्यावसायिक निकायों के संबंध में सामाजिक पूंजी का निर्माण करने के उद्देश्य से निम्नलिखित उपाय सहायक होंगे:
  - एक विशेष एसोसिएशन संबंधी निकाय के चार्टर में संशोधन किया जा सकता है जिससे कि अन्त्य लक्ष्य, सोसायटी के सदस्यों के बजाए उसके वृहद हित की दृष्टि से अनुरूप हो।
  - व्यावसायिकों के लिए प्रोत्साहन/अनिवार्य आवश्यकताएं इस तरह से तैयार की जाएं कि वे आम भलाई के लिए कार्य करें।
  - व्यावसायिकों और नागरिकों दोनों को ही शिक्षित किया जाए-सम्भावित संस्थागत/विधिक संरचना के बारे में नागरिकों और व्यावसायिकों- दोनों ही के बीच जानकारी का अभाव, जिससे व्यावसायिकों से बेहतर अनुपालन और सेवा सुपुर्दगी लागू हो सके (अर्थात वास्तुकार कानून)।
  - व्यावसायिकों की क्षमता/गौण संवर्ग का निर्माण, उनकी सेवा करने के लिए जिनकी आजकल सेवा नहीं की जा रही है।
  - सरकार, सामाजिक पूंजी को बढ़ावा देने के लिए बलात और समझाने बुझाने को मिलाकर कार्रवाई कर सकती है, जैसे कि :
  - व्यावसायिक निकायों को राज्य की सामान्य भुजा समझना (न कि एजेन्ट)।

- सरकार और व्यावसायिक निकायों के बीच विपरीत की बजाए सहयोगात्मक सम्बंध की प्रकृति को बदलने के लिए एसोसिएशनों के साथ बातचीत करना।
  - व्यावसायिक निकायों को और अधिक शक्तियां प्रदान करना जिससे कि चूक करने वाले व्यावसायिकों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए वे पहल कर सकें।
  - कानूनी रूपरेखा/ अवरोधकों का अधिनियमन और व्यवस्था करना(उपभोक्ता अधिनियम, आर टी आई)।
  - व्यावसायिक निकायों को उनके सदस्यों के आचरण के लिए और अधिक जिम्मेदार बनाया जाना चाहिए। कुछेक सम्भावित सुझाव निम्नलिखित हो सकते हैं: इन निकायों के लिए अपने रिकार्डों को, आडिट की तरह, प्रकाशित करने की अनिवार्यता, प्रतिबंधों के संबंध में प्रावधानों को मजबूत बनाना तथा सार्वजनिक छानबीन की पद्धति कायम करना, उदाहरणार्थ सरकार को नियमित रूप से सीधे ही रिपोर्ट की व्यवस्था करना।

V. कार्यक्रमों की अवधारणा और कार्यान्वयन में कुल मिलाकर जन प्रतिनिधियों और समुदाय की अधिक भागीदारी कैसे सुनिश्चित की जाए

- भागीदारी में बाधाएं: जन भागीदारी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाधा उपनिवेशी मनोवृति है जिससे अपने नागरिकों के प्रति राज्य कर्मचारियों के संबंध में कमी आती है। नागरिक राज्य कर्मचारियों से डरते भी हैं जो अपनी ओर से मास्टरों के रूप में बर्ताव करते हैं। परिणाम यह है कि नागरिक जिम्मेदारी से पीछे हटते हैं जिससे वे और उनके प्रतिनिधि कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भागीदारी करने में हतोत्साहित होते हैं। प्रशासनिक सुधारों के अन्तर्गत उपनिवेशी मनोवृत्ति को समाप्त करने और ऐसी प्रणालियां प्रोत्साहित करने के लिए सावधानीपूर्वक प्रावधान किए जाने चाहिए जो जन-अनुकूल हैं और जिनसे नागरिकों के लिए सम्मान पैदा होता है। दूसरे, लोगों को उनकी भूमिका और सुधार प्रक्रिया में भागीदारी की सीमा के बारे में भी जानकारी दी जानी चाहिए।
- समर्थनकारी कानूनी और संस्थागत स्वरूप: इस समय विकास प्रक्रिया में अत्यधिक राज्य एकाधिकार है। एकाधिकार की सीमा इतनी है कि जन पहलों में भी प्रशासन द्वारा इस बहाने

संलग्नक I(3) जारी

से रूकावट पैदा की जाती है कि संसाधनों पर राज्य का स्वामित्व है और केवल राज्य उनके संबंध में कोई कार्रवाई कर सकता है। कानूनों में अस्पष्टताएं भी बहुत हैं जिससे उनका व्याख्या करना अफसरों पर निर्भर रहता है जिससे नागरिकों की राज्य पर निर्भरता में वृद्धि होती है। इससे प्रशासन पद्धति में अत्यधिक मात्रा में असुरक्षा का पता चलता है। सुधारों के अन्तर्गत जन-पहलों को प्रोत्साहित करने की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा कानून व कानूनी प्रक्रिया में स्पष्टता भी होनी चाहिए।

- विकेन्द्रीकरण के लिए और उपाय तथा स्थानीय शासन में सक्रिय भागीदारी : भारत में पंचायती राज संस्थानों को प्रोत्साहित करने के लिए हाल ही में किए गए उपाय उत्साहवर्धक हैं: तथापि, इनके साथ ही दूसरी ओर कुछ प्रतिबंध कायम हुए हैं। प्रशिक्षण और सामुदायिक संगठन के प्रति सिविल सोसायटी की भूमिका को सीमित करने के संबंध में जानबूझकर प्रयास किए गए हैं जबकि पंचायतों ने कार्यपालक की भूमिका सम्भाल ली है। विकेन्द्रीकृत अधिशासन के लिए यह भूमिका एक अनिवार्य शर्त है किन्तु पर्याप्त नहीं है। स्थानीय पहलों की स्वायत्तता तथा सिविल सोसायटी की भागीदारी ने संबंध में और अधिक व्यवस्था की जानी चाहिए । सिविल सोसायटियों द्वारा गठित पंचायत-भिन्न संस्थानों को भी स्वीकारा जाना चाहिए जिनकी अपनी ही भूमिका है।
- और अधिक स्थानीय भागीदारी के लिए विशिष्ट क्षेत्रक:
  - इस संबंध में जिन क्षेत्रकों पर तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है, वे हैं: शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, परिवहन, स्वच्छता और सफाई, संचार और पर्यावरण। इन क्षेत्रकों में से कुछेक के संबंध में (जो स्थान-स्थान पर अलग-अलग हो सकते हैं) मात्र परामर्श की जरूरत है तथा अन्यों के संबंध में दीर्घावधिक लाभों के लिए संस्थानों के साथ नीतिगत सहयोग की जरूरत हो सकती है।
  - देखा गया है कि सिविल सोसायटी पहलों की अवधारणा पर्याप्त नहीं रही है। विकास कार्यक्रम तैयार और निष्पादित करने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासनिक पद्धति और सिविल सोसायटी के बीच और अधिक अन्योन्यक्रिया होनी चाहिए। तथापि, सुधारों

का उद्देश्य राज्य का विकल्प तैयार करने का नहीं होना चाहिए बल्कि इनके द्वारा राज्य को पूरक बनाया जाना चाहिए।

- उद्यमशीलता के एक घटक के रूप में सामजिक पूंजी: यह कहना उपयुक्त नहीं है कि हमारे देश में सामाजिक पूंजी विद्यमान नहीं है। यह विद्यमान है तथा कुछ अनुकरणीय है ; आवश्यकता ऐसी पहलों का पता लगाने और उन्हें समझने की है। तथापि, यह सच है कि व्यावसायिक दक्षताओं और अवस्थापना का अभाव है सुधारों के अन्तर्गत इनका निर्माण करने की जरूरत है। आनुपातिक अनुदानों और ब्लाक अनुदानों के जरिए समर्थनकारी धर्मादा अवस्थापना जैसी पहलें उपयोगी हो सकती हैं। अभी तक, यह माना गया है कि समृद्ध लोगों द्वारा गरीबों को दान दिया जाना चाहिए, किन्तु मध्यम श्रेणी के लोगों द्वारा भी पहलें की गई हैं जो समाज में सामाजिक पूंजी को प्रोत्साहित करने में पूरा जीवन बिता देते हैं। ऐसी पहलों की भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- हमारे समाज में न्यून सामाजिक पूंजी का मुख्य कारण हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में विश्वास और नैतिकता का अभाव है। लोगों को शिक्षित करने और उनमें मूल्य पैदा करने का जानबूझकर प्रयास नहीं किया जाता जिनका पालन गांधीजी, जय प्रकाश नारायण व हमारे समाज में बहुत से अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। न केवल नैतिक शिक्षा प्रदान किए जाने की जरूरत है बल्कि जवाबदेही और पारदर्शिता के सिद्धान्तों को भी सामाजिक जीवन के, विशेष रूप से प्रशासनिक प्रक्रिया में, प्रत्येक क्षेत्र में समाविष्ट किया जाना चाहिए ।

संलग्नक–I (4)

सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सेवा प्रदान करने के संबंध में प्रश्नावली

I. सरकार की प्रभावशालिता में वृद्धि करने के एक साधन के रूप में शासन के सभी स्तरों पर सामाजिक पूंजी का निवेश और प्रोत्साहित करने के उपाय

किसी संगठन की प्रभावशालिता को आंकना कठिन है, विशेष रूप से जबकि संबंधित संगठन, सरकार अथवा राजकीय पद्धति का एक भाग हो। कठिनाई अनेक कारणों से पैदा होती है । प्रथमत:, भिन्न-भिन्न, कभी-कभी विविध आकांक्षाओं वाले अनेक पणधारी होते हैं। दूसरे, सरकारी कार्रवाई सार्वजनिक कानून के सिद्धान्तों के दायरे में होती है, उनके तहत बनाए गए कानून प्राय: पर्याप्त लचीले नहीं होते जिससे कि प्रथागत प्रतिक्रिया प्राप्त हो सके। तीसरे, प्रजातान्त्रिक शासन, अनेक चेकों और सन्तुलनों के माध्यम से होता है, इस प्रकार प्रजातान्त्रिक सरकार की प्रभावी बनने की योग्यता ऐसी प्रक्रियाओं के डिजाइन और प्रचालनों के कारण सीमित होती है।

तथापि, यह व्यापक रूप से स्वीकारा जाता है कि किसी को प्रभावशालिता का पता तभी चलता है जबकि कोई उसे देखता है। सार्वजनिक प्रबंधन के क्षेत्र में अध्ययनों से सिद्ध होता है कि अधिकांश प्रभावी संगठनों की कुछ सांझी विशेषताएं होती हैं। इनमें से कुछेक निम्नलिखित हैं:

- उस स्थान पर कोई भी संगठन के मिशन और मूल्यों के बारे में बता सकता है।
- वह सदा ही नए की खोज में रहता है।
- उसका ग्राहक सन्तुष्टि स्तर उंच्चा है।
- उसके कर्मचारी प्राय: एक टीम के रूप में कार्य करते हैं।
- नेता, स्टाफ सदस्यों का एक हिस्सेदार होता है।
- "असफलता" को एक अध्ययन अनुभव समझा जाता है।
- वह अपने कार्यक्रम परिणामों के संबंध में संगत सूचना दे सकता है।

संक्षेप में, प्रभावशीलता कामकाज के कुछ तरीकों का परिणाम होती है जिनके अन्तर्गत एक समन्वयकारी पद्धति के रूप में मिलजुलकर कार्य, पदक्रम पर अधिक बल दिया जाता है, न कि नियंत्रण करने के लिए एक साधन के रूप में, पदासीन अधिकारी, समर्थनकारी टीम और वैयक्तिक कार्यकुशलता का बुनियादी भार सम्भालते हैं; बाह्य पणधारियों को "ग्राहकों" के रूप में समझा जाता है और न कि वस्तुओं और

सेवाओं (अथवा दान) के मात्र प्राप्तकर्ता के रूप में, और सम्पूर्ण संगठन को अपने अस्तित्व के मूलभूत कारण की जानकारी होती है, वह "लक्ष्य संकेन्द्रित" होता है तथा सतत रूप से पुन: निवेश करता है और अपना नवीकरण करता रहता है।

उपरोक्त सभी "संगठनात्मक संस्कृति" की धारणा के अन्तर्गत मात खा जाते हैं। जबकि संगठनात्मक सदस्य, पारस्पारिकता और अपने बीच विश्वास प्रदर्शित करते हुए एक अन्तर-निर्भरता और सहकारी ढंग से कार्य करते हैं तथा सतत रूप से संगठन के समग्र और विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करते हैं। संस्कृति की यह धारणा "सामाजिक पूंजी" की कुछ परिभाषाओं के तहत उपयुक्त है; इस प्रकार कहा जाता है कि ऐसे संगठनों/एजेन्सियों में उच्च मात्रा में सामाजिक पूंजी है।

यदि सरकार के सभी स्तरों पर सामाजिक पूंजी का निवेश और उसे प्रोत्साहित किया जाए तो निम्नलिखित प्रश्न स्पष्ट हो जाते हैं :

1. कुल मिलाकर सरकार और पृथक इकाइयों के रूप में प्रत्येक भाग कैसे इस ढंग से कार्य करने में समर्थ होगा कि आधारभूत और प्रचालन लक्ष्य उसकी आन्तरिक प्रक्रियाओं, निर्णयों और कार्रवाईयों की जानकारी प्रदान करें।
2. यह करने के लिए क्या करना होगा कि सरकार, विशेष रूप से वे भाग जो नागरिकों के साथ सीधे ही अन्योन्यक्रिया करते हैं, ऐसे ढंग से कार्य करें जैसे कि वे "ग्राहकों" के साथ डील कर रहे हैं। यह समझा जाता है कि ग्राहक सन्तुष्टि सरकारी इकाई की उत्तरजीविता के लिए महत्वपूर्ण है।
3. सरकारी कार्यकर्ता किस प्रकार से यह कार्य करने में समर्थ होंगे जैसे कि वे एक "व्यावसायिक अफसरशाही" के भाग हैं, जिसके अन्तर्गत प्राथमिकता, स्थिति-विशिष्ट जानकारी और दक्षता को दी जाती है, न कि पदक्रम में पदों को ?
4. सरकारी संगठन, आन्तरिक समन्वय के लिए विश्वास और पारस्परिकता पर अधिक निर्भर किस प्रकार रहेंगे और न कि पदस्थ प्राधिकारी पर ?
5. किस प्रकार की शिक्षा और/अथवा प्रशिक्षण से कार्यकर्ता "व्यावसायिक जैसी" विशेषताएं प्राप्त करने में समर्थ होंगे ?
6. उपयुक्त संस्थागत अवस्थापना कैसी होगी जिसके अन्दर ऐसा प्रशिक्षण/शिक्षा दी जानी चाहिए?

संलग्नक–I (4) जारी

II. स्थानीय समुदाय के साथ, विशेष रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों में, सक्रियतापूर्वक भागीदारी करने के लिए प्रशासन की क्षमता में सुधार और उसे सुदृढ़ करना ।

कोई व्यक्ति तभी भागीदारी करना चाहता है जबकि वह यह समझता है कि किए जाने वाले कार्य ऐसे हैं जिन्हें अकेले करना असम्भव है अथवा उन्हें पूरा करना कम से कम कठिन तो है ही। यह समझने पर कि प्रसंगाधीन व्यक्ति के अन्दर ऐसे कार्यों को करने का उत्साह है, इस समझ से वह अन्यों के साथ पारस्परिकता और पूरकता की खोज करता है। ऐसे "अन्यों" का विनिर्धारण हो जाने पर भागीदारी कायम करने के प्रयास किए जाते हैं। यह बात और समझ लेने पर कि विनिर्धारित "अन्यों" के बीच भी अपेक्षित अभिप्रेरण और जरूरत है, भागीदारी का निर्माण होता है। संगठनों के संबंध में भी यह बात सही है।

इस प्रकार, स्थानीय समुदाय के साथ सक्रिय रूप से भागीदारी करने के लिए प्रशासन की क्षमता में सुधार करने के वास्ते पहली आवश्यकता प्रशासन की ओर से ऐसी जरूरत को समझने की है। यदि निर्माण करने के लिए पहले निर्धारित स्थितियां प्रथम "टी ओ आर" के तहत स्पष्ट हो जाती हैं, तो प्रशासन के लिए ऐसी जरूरतों को स्वीकारना स्पष्ट हो जाएगा। उसके बाद, प्राथमिक कार्य यह होगा कि भागीदारियां कायम करने के लिए किस प्रकार प्रशासन की क्षमता में वृद्धि की जाए।

1. स्थानीय समुदायों के साथ भागीदारियो कायम करने की जरूरत को समझने के लिए "प्रशासन" के वास्ते क्या अतिरिक्त मानदण्ड और मूल्य जरूरी हैं ? इनका समावेश कैसे किया जाए ?
2. यह मानते हुए कि ऐसे मानदण्ड आन्तरीकृत हैं, प्रशासन को स्थानीय समुदायों के साथ सामन्जस्यपूर्ण संबंध कायम करने में सफल बनाने में समर्थ बनाने के लिए क्या क्षमताएं विद्यमान होनी चाहिए ? इन क्षमताओं का किस प्रकार निर्माण किया जा सकता है ?
3. प्रारम्भिक स्तर पर प्रशासनिक कार्मिकों के प्रशिक्षण में उपयुक्त पुनर्स्थापन उपरोक्त की प्राप्ति का एक साधन हो सकता है। मध्य क्रम वाले और वरिष्ठ प्रशासनिक कार्मिकों के लिए और किसी प्रकार के अन्य अनुस्थापन/प्रशिक्षण के बारे में सोचा जा सकता है।

III. सरकार तथा सिविल सोसायटी संस्थानों के बीच बेहतर तालमेल

(क) न्यासों/सोसायटियों और स्वयंसेवी समूहों से संबंधित

न्यास, सोसायटियां तथा एस एच जी उन संगठनों के रूप हैं जिन्हें एक समूह के लोगों द्वारा अपने उद्देश्य को बढ़ावा देने के लिए एक संगठन (अथवा एसोसिएशन) कायम किया

जाता है। फिर भी, वे निधियन के बाह्य ाोतों पर अत्यधिक निर्भर रहते हैं जिनमें उनके लिए स्वायत्तता को कम करने की क्षमता होती है। यह वांछनीय समझा जाता है कि उन्हें इस ढंग से समर्थ बनाया जाए कि वे अपने स्वायत्त कामकाज को बनाए रखें तथा सामाजिक विकास और सिविल सोसायटी निर्माण के हित को बढ़ावा देने में सरकार के साथ तालमेल करें।

1. वे सामान्य शर्तें क्या होंगी जिनसे न्यास, सोसायटियां और एस एच जी स्वतन्त्र रूप से और आत्म-निर्भर ढंग से कार्य करने में समर्थ होंगे ?
2. न्यासों, सोसायटियों और एस एच जी के लिए कौन सी उपयुक्त विनियामक रूपरेखा होगी जिससे बाह्य जवाबदेही की न्यूनतम जरूरतों को भी पूरा करते हुए उनकी स्वायत्तता को बनाए रखा जा सके।
3. जहाँ तक वित्तीय संसाधनों का संबंध है, किन समर्थनकारी शर्तों के साथ न्यास, सोसायटियां और एस एच जी अधिक आत्म-निर्भरता प्राप्त कर सकते हैं ?
4. क्या कर कानूनों में ऐसे प्रावधान हैं, जिन्हें उपयुक्त रूप से संशोधित करने पर वे अधिक वित्तीय सुरक्षा प्राप्त कर सकते हैं ? वे क्या हैं ?
5. सरकार/प्रशासन के दृष्टिकोण और/अथवा कामकाज के ढंग में किन परिवर्तनों/संशोधनों से सरकार/प्रशासन और न्यासों, सोसायटियों और एस एच जी के बीच तालमेल में बढ़ोतरी होने की सम्भावना है ?

(ख) सहकारिताओं से संबंधित

सहकारिताओं से अर्थ "नागरिकों का उद्यम" से है। फिर भी, सहकारिताओं के निर्माण और कामकाज में सरकार की भूमिका इतनी व्यापक है कि उनमें से अधिकांश सदस्यों की उद्यमी ऊर्जा को बढ़ावा देने में असमर्थ रहते हैं। हाल ही के दशकों में स्थापित अधिकांश एस एच जी और अन्य समुदाय आधारित संगठनों की स्थापना सहकारी संरचना के अन्तर्गत की जानी चाहिए थी। फिर भी, "सरकारी नियंत्रण/हस्तक्षेप" की आशंकाओं के कारण उन्होंन अन्य विधिक स्वरूपों का सहारा लिया जो उनके सदस्यों के हितों को बढ़ाने के लिए अत्यधिक अभिप्रेरक नहीं है।

संलग्नक–I (4) जारी

1. "नागरिक उद्यमों " के रूप में सहकारिताओं के स्वतन्त्र कामकाज के संबध में वर्तमान स्थिति क्या है ?
2. वे कौन से कारक हैं जो सहकारिताओं के स्वायत्त कार्यकरण में बाधक हैं। क्या ये सहकारिताओं से संबंधित तीन भिन्न-भिन्न विधानों, यथा राज्य सहकारी अधिनियमों, बहु-राज्य सहकारी अधिनियमों और परस्पर सहाय्यित सहकारी अधिनियमों (विभिन्न राज्यों के) के अन्तर्गत पंजीकृत सहकारिताओं के लिए भिन्न हैं ? यदि हां तो वे क्या हैं ?
3. सहकारिताओं के पंजीकरण, और क्षेत्रक के विनियमन/प्रशासन की सामान्य संरचना में किन परिवर्तनों से सहकारिताओं की स्वायत्तता में वृद्धि होगी ?
4. वे क्या शर्तें होंगी जिनके अन्तर्गत अपने स्वायत्त कार्यकरण को बनाए रखते हुए बाह्य जवाबदेही की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकेगा ?

(ग) उद्योग एसोसिएशनों से संबंधित

उद्योग एसोसिएशन वे वाहन हैं जिनके माध्यम से सामान्य हितों और सदस्यों के हितों को बढ़ावा दिया जाता है। वे सदस्यों के हित का प्रतिनिधित्व करते हैं और सरकार व अन्य निकायों के साथ उद्योग को बढ़ावा देने के लिए समर्थनकारी स्थितियां कायम करने के लिए बातचीत करते हैं। कुछ लोगों की दलील है कि ऐसी एसोसिएशनों ने ऐसी स्व: नियामक भूमिका निभाई है अथवा ठीक ही निभा सकते हैं कि सदस्य सच्चे "कारपोरेट नागरिक" के रूप में उभरे।

1. उनके द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका वर्तमान स्थिति क्या है और उद्योग एसोसिएशनों की क्या कार्यकुशलता है ?
2. एक ओर सरकार/विनियामक संस्थानों के साथ और दूसरी सदस्यों के साथ एसोसिएशनों के संबंध की प्रकृति क्या है ?
3. कार्यकरण के कतिपय सहमत मानकों को प्रवर्तित करने में उद्योग एसोसिएशनों की भूमिका कितनी सक्षम रही है। सरकार ऐसी एसोसिएशनों के लिए कौन सी समर्थनकारी

स्थितियां पैदा कर सकती हैं जिनसे वे अपने सदस्यों के बीच उत्तम "कारपोरेट नागरिक" निर्माण के सुनिश्चित करने में अधिक उपयोग भूमिका निभा सकती हैं ?

(घ) व्यावसायिक निकायों से संबंधित

कहा जाता है कि व्यवसाय में कम से कम चार प्रमुख तत्व होते हैं : [32] (क) ज्ञान का एक स्वीकृत निकाय, (ख) यह प्रमाणित करने की एक पद्धति कि व्यवहार में लाने से पहले व्यक्तियों ने ज्ञान के निकाय में निपुणता प्राप्त कर ली है, और (ग) नीतिशास्त्र की एक प्रवर्तनीय संहिता। व्यावसायिक निकाय न केवल ज्ञान को बढ़ावा देने में और व्यवसाय के पालन करने में भूमिका निभाते हैं बल्कि उनमें व्यावसायिकों को "विनियंत्रित" करने में अपार महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इसलिए, व्यावसायिक प्रथा का और इस प्रकार व्यावसायिकों का यह विनियमन, अनिवार्य है क्योंकि ऐसे व्यवसायों/प्रथाओं के उपयोगकर्ताओं के पास उन्हें प्राप्त होने वाली सेवा की कोटि/मात्रा तय करने के लिए जानकारी अथवा क्षमता नहीं होती।

1. व्यावसायिक निकायों, जैसे कि मेडिकल काउन्सिल आफ इण्डिया, इन्स्टियूशन आफ इंजीनियर्स, इन्स्टिटयूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्टस, इन्स्टिटयूट आफ कोस्ट एण्ड वर्क्स एकाउन्टेन्टस, काउन्सिल आफ आर्किटेक्चर, इन्स्टिट्यूट आफ टाउन प्लानर्स आफ इण्डिया, बार काउन्सिल/बार एसोसिएशन्स (आदि)।

2. एक ओर सरकार के साथ और दूसरी ओर अलग-अलग व्यावसायिकों के साथ व्यावसायिक निकायों के संबंध की प्रकृति क्या है ?

3. व्यवसाय के ज्ञान और प्रथा को बढ़ावा देने में व्यावसायिक निकायों की भूमिका कितनी सक्षम रही है ?

4. किन स्थितियों में व्यावसायिक निकाय स्व: विनियामक मंच कायम करने में कौन सी स्थितियां उपयुक्त होंगी कि (i) व्यवसाय के ज्ञान और अभ्यास को बढ़ावा देने के हित की सिद्धी हो सके, और (ii) अलग-अलग व्यावसायिकों का नैतिक आचरण सुनिश्चित करने में निकाय की भूमिका और अधिक कार्यकुशल बनाया जा सके ?

[32] राकेश खन्ना (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी) "वारेन जी बेनिस, जेम्स ओ टूले, हाऊबिजनिस, स्कूल्स लास्ट देअर वे", हार्वर्ड बिजनिस रीव्यु मई 2005, खण्ड 83, अंक में उद्धरित निभाई जाने वाली भूमिका की दृष्टि से उनकी छवि क्या है ?

संलग्नक–I (4) जारी

5. व्यावसायिकों के बीच नैतिकता प्रवर्तित करने में व्यावसायिक निकायों की भूमिका कितनी कुशल रही है।

6. सरकार क्या कर सकती है कि व्यावसायिक निकायों की भूमिका में परिवर्तन अथवा ऐसी भूमिका निभाने की समर्थता प्राप्त हो सके ?

(ii) स्व: विनियामक प्राधिकरणों (एस आर ए) के रूप में व्यावसायिक निकाय

क – वैधता (विश्वास और भरोसा)

व्यावसायिक निकाय और व्यावसायिकों में नागरिकों का विश्वास और भरोसा, सुलभता, कोटि, विश्वसनीयता और लागत की दृष्टि से सेवा प्रावधान पर निर्भर करता है।

- क्या नागरिक को दक्षता और प्रतबद्धता की दृष्टि से व्यावसायिकों में भरोसा है? क्या व्यावसायिक अपने व्यावसायिक निकायों पर भरोसा करते हैं ?
- जनता के अनुसार कौन से व्यावसायिक अधिक भरोसेमंद हैं ?
- क्या स्व:विनियामक प्राधिकरण (एस आर ए), सरकार और स्वतन्त्र विनियामक प्राधिकरणों की तुलना में अधिक भरोसेमंद हैं ?
- अन्य देशों में ऐसे ही संस्थानों की तुलना में भारत में एस आर ए कितने भरोसेमंद और प्रभावी हैं ?
- यदि व्यावसायिक और एस आर ए नागरिकों की उम्मीद पर खरे नहीं उतरते तो इसके लिए कौन से कारक जिम्मेदार हैं ?

ख– स्वायत्तता (सरकार और एस आर ए के बीच अन्योन्यक्रिया)

एस आर ए, विश्वास पाने के लिए, सार्वजनिक हित में स्वतन्त्र शक्तियों का इस्तेमाल करते हैं। जनता को इस बाबत आश्वस्त किया जाना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों की उत्तम सेवा प्रदान करने लिए , एस आर ए, व्यावसायिक शिक्षा (कालेज/पाठ्यक्रम/शिक्षण और मूल्यांकन पद्धतियां) और अभ्यास (पंजीकरण प्रदान करने और रोकने) के संबंध में मानक तय करने में बिना किसी सेक्शनल हित की बाधा के बोलेंगे और कार्य करेंगे। इसके साथ ही, सरकार

बिना शोषण और मानवाधिकार के उल्लंघन के समाज के सभी वर्गों के लिए इन सेवाओं की सहज सुलभता प्रदान करने के लिए जिम्मेदार होगी।

- क्या एस आर ए को, समाज की दक्षतापूर्वक और ईमानदारी के साथ सेवा करने के लिए व्यावसायिकों के बीच दक्षताएं और मूल्य पैदा करने की पर्याप्त स्वायत्तता और स्वतन्त्रता प्राप्त है ?
- क्या एस आर ए को, व्यावसायिक दक्षताएं विकसित करने के लिए शिक्षा (नए संस्थान शुरू करने के लिए अनुमति) प्रशिक्षण (पाठ्यचर्या, पद्धतियां तथा संकाय) और परीक्षण (आकलन) में मानकों को विनियंत्रित करने और बनाए रखने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्राप्त हैं ?
- क्या विद्यमान सरकारी कानूनों/विनियमों/अधिनियमों/नीतियों/संस्थानों से एस आर ए के स्वतन्त्र कामकाज में सुविधा मिलती है ?
- क्या, एस आर ए को समावेशी और कुशल बनाने के लिए सरकारी नियंत्रण को बढ़ाने/कम करने के लिए इन नीतियों और कानूनों में कोई परिवर्तन किया जाना है ?
- क्या सही एस आर ए को विनियंत्रित करने के लिए विभिन्न व्यवसायों और हित समूहों से प्रख्यात व्यक्तियों के साथ हमें शिखर विनियामक प्राधिकरणों की जरूरत है ?

ग– शासी प्रणालियां (विधान, गठन, शक्तियां, कार्यकरण और कार्यकुशलता)

विद्यमान शासन प्रणालियां मूलत: एक ऐसे युग में की गई थी जबकि स्व नियमन को वास्तविक अर्थ व्यावसायिकों द्वारा विनियमन से था, जैसे कि मात्र डाक्टर, जबकि रोगी डाक्टरों की सेवाओं के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता थे और प्रौद्योगिकीय विकास बहुत कम था। अब डाक्टर और रोगी, वैश्विक युग और प्रौद्योगिकीय क्रान्ति के संदर्भ में, रोगियों, व्यावसायिकों और जनता के हितों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आकांक्षाओं और मानकों की एक सहमत रूपरेखा के साथ, भागीदार हैं। ग्राहकों की आवाज को मजबूत बनाने के उद्देश्य से, यू के मेडिकल काउन्सिल में आम आदमियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। यू.के. मेडिकल

संलग्नक–I (4) जारी

काउन्सिल में 104 सदस्यों में से 40 प्रतिशत गैर-व्यावसायिक हैं और इसका अध्यक्ष एक आम आदमी है। इसी प्रकार, जनता की आवाज उठाने के लिए इण्डियन मेडिकल काउन्सिल में सरकारी मनोनीत व्यक्तियों की संख्या में हाल ही में वृद्धि की गई है।

- क्या एस आर ए की विद्यमान शासन प्रणालियां (सामान्य, कार्यकारी व अन्य निकायों/समितियों की संख्या, गठन और आकार), वैश्वीकरण के (प्रतिस्पर्धा, निजीकरण और कोटि) तथा प्रौद्योगिकी क्रान्ति के इस युग में (सूचना और संचार प्रौद्योगिकी), संगत हैं।
- क्या एस आर ए की ये शासी प्रणालियां (साधारण निकाय/कार्यकारी परिषद/चेप्टर्स/संघ) और प्रतिनिधित्व (व्यावसायिक, ग्राहक, पणधारी, हित समूह) की दृष्टि से समावेशी और कार्य कुशल हैं ?
- शिक्षा, अभ्यास, आचरण और निष्पादन हेतु मानक निर्धारित और प्रवर्तित करने जैसे कार्यों को निष्पादित करने के लिए उच्च नैतिक मानक सुनिश्चित करने के वास्ते समितियां कितनी प्रभावी और सक्षम हैं ?
- क्या आप समझते हैं कि एस आर ए, व्यावसायिक मामलों से सम्बद्ध सरकारी नीतियों को प्रभावित करने में समर्थ रहे हैं ?

घ – समावेशन और आन्तरिक प्रजातन्त्र

1. क्या विभिन्न शासी निकायों के लिए सक्षम व्यक्तियों का चयन किया जाता है ? इन निकायों में चयन प्रक्रिया कितनी निष्पक्ष और पारदर्शी है ? क्या एस आर ए में चुनाव खुले और निष्पक्ष होते हैं ?
2. शिक्षा और अनुशासन जैसी महत्वपूर्ण समितियों की अध्यक्षता के लिए सक्षम व्यावसायिकों का चयन करने के वास्ते क्या मापदण्ड होना चाहिए ?
3. एस आर ए में आन्तरिक प्रजातन्त्र को सुदृढ़ करने के लिए क्या पद्धतियां हैं जिससे कि सक्षम व्यावसायिकों और ग्राहकों/नागरिकों की आवाज को सुविधा प्रदान की जा सके ?

ड़ पारदर्शिता और जवाबदेही

एक सांविधिक निकाय के रूप में एस आर ए उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य के लिए जिम्मेदार होता है। जनता, संसद, सरकार, व्यवसाय को यह जानने का अधिकार है कि एस आर ए अपने कार्यों को किस प्रकार निपटान कर रहे हैं। सामान्यत:, एस आर ए प्रमुख रूप से संसद के प्रति जिम्मेदार होते हैं जो जनता की ओर से शक्तियों और जिम्मेदारियों का निर्धारण करती है (नियम बनाकर, सदस्य मनोनीत करके और समाज की भलाई के लिए व्यावसायिक शिक्षा व अभ्यास को विनियंत्रित करने के लिए मानकों के संबंध में उनके निर्णयों पर विचार करते हुए)।

- मानकों के निर्माण और उनके प्रवर्तन में एस आर ए कितने खुले और पारदर्शी हैं ? कालेज, संस्थान, नए पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए मानक स्थापित करने के वास्ते प्रक्रियाएं कितनी पारदर्शी हैं ?
- विद्यमान शिकायत समाधान और शिकायत प्रक्रियांए कितनी प्रभावशाली हैं ? उन्हें किसी प्रकार और अधिक पारदर्शी व जवाबदेह बनाया जाए? क्या गलत कार्य और आचरण के लिए व्यावसायिकों के विरूद्ध ग्राहकों से शिकायतों पर विचार करने के लिए पद्धति के अन्तर्गत कोई ठोस तंत्र हैं ?
- दक्षता/निष्पादन/आचरण/शारीरिक स्वस्थता की दृष्टि से व्यावसायिक अभ्यास के लिए लाइसेंस/प्रमाण-पत्र/पंजीकरण मंजूर करने और रोकने के संबंध में व्यावसायिकों की जवाबदेही सुनिश्चित करने पद्धतियां कितनी प्रभावी हैं ? व्यावसायिकों को अनुशासनबद्ध करने की पद्धतियां कितनी प्रभावी है जिनका निष्पादन बार-बार स्वीकार्य मानक से नीचे रहता है?
- व्यावसायिकों को किस प्रकार समुदाय के प्रति प्रतिक्रियाशील और जवाबदेह बनाया जाए ? एस आर ए में कर्त्तव्य निष्ठा और उच्च नैतिक मूल्य सुनिश्चित करने के लिए नैतिक संहितांए कितनी प्रभावी हैं ? ग्राहकों, जनता, व्यावसायिकों और शासन के प्रति एस आर ए की जवाबदेही किस प्रकार सुनिश्चित की जाए ?

संलग्नक–I (4) जारी

च – एस आर ए नागरिक/ग्राहक और सामाजिक दायित्व

- सामान्यत: ऐसा विश्वास किया जाता है कि व्यावसायिक ग्राहकों का शोषण करते हैं क्योंकि ज्ञान और उसके अनुप्रयोग पर उनका एकाधिकार होता है। व्यावसायिकों द्वारा प्रदत्त सेवाओं की लागत और गुणवत्ता के बारे में निर्णय करने में ग्राहकों की बहुत कम आवाज होती है। व्यावसायिकों के निष्पादन और संचालन में न्यूनता के संबंध में क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में गरीबों और अनपढ़ों की कोई आवाज नहीं होती। इन कमियों को दूर करने के उद्देश्य से उन्नत देशों ने कुछ उपाय किए हैं जैसेकि शासी निकायों में गैर-व्यावसायिकों को संरक्षण प्रदान करने वाले कानून।
- क्या व्यावसायिक अपने ग्राहकों के कल्याण के लिए विश्वसनीय एजेन्टों के रूप में कार्य करते हैं ? नागरिकों के अधिकारों को कितने प्रभावी ढंग से संरक्षित किया जाता है ? (प्रशासनिक गलतियों और निम्न मानकों के लिए क्षतिपूर्ति के अधिकार)। व्यावसायिकों से अधिक मेद्य उपभोक्ताओं के शोषण को रोकने के लिए पद्धतियां कितनी प्रभावी हैं ?
- उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए एस आर ए में सामाजिक विनियम कितनी प्रभावी हैं ?
- सामाजिक दायित्वों, जैसे कि पर्यावरण और असुविधाप्राप्त समूहों (बच्चे, वृद्ध, महिलाएं, अनु. जाति/अनु.जनजाति, गरीब) को संरक्षण प्रदान करने में वे कितनी प्रभावी हैं) ?

(ङ) स्वायत्त क्षेत्राधिकार कायम करने और तालमेल से संबंधित

यदि सिविल सोसायटी में एसोसिएशन और संगठन स्व: विनियमन की दिशा में कार्य करें तो दो दिशाओं में संचलन करना आवश्यक होगा। प्रथमत: ऐसी एसोसिएशनों/संगठनों को अपनी-अपनी भूमिकाओं में पुनर्निवेश करना चाहिए और दूसरे, सरकार को उपयुक्त विधायी समर्थन और सोसायटी के इन क्षेत्रों की तुलना में अपनी भूमिका के पुन अनुस्थापन द्वारा ऐसी

भूमिका निभाने के लिए समर्थ बनाना चाहिए।

1. व्यावसायिक निकायों और उद्योग/व्यापार एसोसिएशनों द्वारा स्व: विनियामक भूमिका निभाने के लिए उन्हें सहायता प्रदान करने के लिए सरकार क्या उपाय कर सकती है ?

2. एक प्रजातान्त्रिक सोसायटी में नागरिकों की एसोसिएशनों के रूप में कार्य करने की अपनी-अपनी भूमिका निभाने के लिए सोसायटियों, न्यासों और सहकारिताओं की सहायता करने के लिए सरकार को क्या कार्रवाई करनी चाहिए ?

3. ऐसे कौन से उपाय हो सकते हैं जिनसे सरकार और विभिन्न स्तरों पर इसके कार्यकर्ताओं को पुनर्गठित करने में मदद मिलेगी और नागरिकों की एसोसिएशनों व समूहों/संगठनों के साथ संबंधों में तालमेल कायम करने में समर्थ बनाया जा सकता है।

4. "सामाजिक पूंजी" जुटाने के लिए सरकार की क्षमता में वृद्धि करने के सम्बन्ध में कोई अन्य सामान्य सुझाव जिससे कि सोसायटी निर्माण और विकास में मदद मिले ?

IV. कार्यक्रम की अवधारणा और कार्यान्वयन में कुल मिलाकर जन प्रतिनिधियों और समुदाय की भागीदारी कैसे सुनिश्चित की जाए

स्थानीय स्तर पर अधिकांश सार्वजनिक सेवाएं, जो नागरिकों के दैनिक जीवन को प्रभावित करती हैं तथा उनकी जीवन की कोटि के अनुभव को प्रभावित करती हैं, सरकार द्वारा (और एजेन्सियां) स्थापित की जाती हैं। 173वें और 74वें संवैधानिक संशोधनों के परिणामस्वरूप स्थानीय सरकारों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इससे उन्हें "जीवन का अधिकार" प्राप्त करने में मदद मिली। संस्थागत रूपरेखा के अन्तर्गत समाज और महिलाओं के कमजोर वगोढह का प्रतिनिधित्व अनिवार्य है; इसके अन्तर्गत स्थानीय सरकारों के बुनियादी कार्यों को आयोजित करने में "साधारण सभा" (ग्राम सभा और वार्ड सभा) की बैठकें बुलाना भी निर्धारित है। अनुच्छेद 243 जी और 243 डब्ल्यु के अन्तर्गत, स्थानीय सरकारों को आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजना तैयार करने की भी जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस

संलग्नक–I (4) जारी

प्रकार, भागीदारीपूर्ण आयोजना तैयार करना, स्थानीय सरकार में प्रतिनिधित्व और साधारण सभा के माध्यम से निगरानी की प्रक्रियाएं अब संवैधानिक रूप से अनिवार्य हैं। प्रावधानों के वास्तविक कार्यान्वयन की स्थिति एक मिली-जुली स्थिति प्रस्तुत करती है। कुछ सफलताएं हैं किन्तु इस संबंध में संवैधानिक स्कीम का कार्यान्वयन अभी विकास की प्रक्रिया में है।

1. समुदायों, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में, के बीच रूचि/उत्साह पैदा करने में, स्थानीय सरकार की प्रक्रिया में भागीदारी करने में क्या बाधाएं हैं ? ऐसे बाधाओं को दूर करने में किन उपायों से मदद मिल सकती है ?
2. स्थानीय सरकार निकायों को सच्चे विचार-विमर्शी मंचों के रूप में बदलने के लिए किन विधिक और संस्थागत समर्थनकारी उपायों से मदद मिल सकती है ?
3. किन और उपायों से विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है कि जन प्रतिनिधि और पूरा समुदाय सार्थक रूप से भाग ले सकता है और कार्यक्रम आयोजना व कार्यान्वयन प्रक्रिया तैयार कर सकता है ?
4. किन विशिष्ट उपायों से समुदायों को स्थानीय सरकारों के मामलों में और अधिक सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है ?

संलग्नक III(I)

(स्रोत: www.asianlilan.org)

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
1.	सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 इंग्लिश लिटरेरी एण्ड साइंटिफिक इन्स्टीट्यूशन्स एक्ट, 1854 के माडल के अनुसार बुनियादी उद्देश्य था : (i) राज्य में कार्यरत ऐसी एसोसिएशनों का एक रजिस्टर रखना, और (ii) उन्हें विधिक इकाई बनाना, (iii) मूल अधिनियम में किसी नियंत्रण/ विनियमन का अभाव था। आजादी के बाद यह विषय अनुसूची 7 की राज्य सूची के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। इण्डियन अडेपटेशन्स आर्डर के अन्तर्गत यह विधान वस्तुत: एक माडल अधिनियम बन गया जिसे राज्य सरकार द्वारा ही संशोधित किया जा सकता है। बाद के वर्षों में बहुत सी सरकारों ने निम्नलिखित रूप में इस अधिनियम में भिन्न-भिन्न मात्रा में अभिवृद्धियाँ की; (क) वार्षिक आडिट व अन्य रिपोर्टें साधारण सभा और साथ ही सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना; (ख) जाँच-पड़ताल करने की रजिस्ट्रार की शक्ति; (ग) अतिक्रमण की शक्ति; (घ) प्रबंधन सम्भालना।	विनियमन, संस्थापन, सोसायटियों की विधिक स्थिति सुधारना	साहित्य, विज्ञान, ललितकलाओं, ज्ञान के प्रसार, शिक्षा, दान, राजनीतिक शिक्षा, पुस्तकालयों के प्रोत्साहन के लिए पंजीकृत सोसायटियां गैर-लाभ वाले निकाय	पंजीकरण के लिए शर्तें -शासी निकाय के संबंध में वार्षिक विवरण -सोसायटी की विधिक स्थिति	-प्रयोजन कानूनी होना चाहिए -प्रयोजन में बदलाव अथवा विघटन केवल विशेष मत के जरिए साधारण सभा द्वारा	राज्य द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप -कानून की सुविधाकर्ता की भूमिका को स्वीकारा गया	- प्रजातान्त्रिक संरचना का उल्लेख शिथिल है -प्रयोजन अनुपालन तंत्र और वित्तीय अनुशासन स्कीम अप्रभावी

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
	आन्ध्र प्रदेश सोसायटी पंजीकरण (एस आर) अधिनियम, 1959, कर्नाटक एस आर अधिनियम 1960, मेघालय एस आर अधिनियम, 1983 राजस्थान एस आर अधिनियम, 1958 म. प्र. एस आर अधिनियम, 1973 तमिलनाडु एस आर अधिनियम 1975 त्रावणकोर-कोचीन साहित्यिक, वैज्ञानिक और धर्मादा सोसायटी अधिनियम, 1955 उ. प्र. एस आर अधिनियम, 1976 प. बं. एस आर अधिनियम, 1963	विनियमन, स्थापना, राज्य के अन्दर सोसायटी की कानूनी स्थिति सुधारने के लिए	दान, शिक्षा, विज्ञान, साहित्य, ललित कलाएं, खेल, पुस्तकालयों की स्थापना, अनुरक्षण, वाचनालय प्राकृतिक इतिहास का संकलन प्रोत्साहित करने के लिए स्थापित सोसायटियां - गैर लाभ वाला निकाय	- पंजीकरण की आवश्यकता, - प्रबंधन समिति की प्रजातान्त्रिक संरचना, -प्राधिकार साधारण सभा में विहित -सम्पत्ति के हस्तान्तरण और निधियों के उपयोग पर नियंत्रण। -रजिस्ट्रार की व्यापक शक्ति -वित्तीय अनुशासन	-साधारण निकाय नियंत्रण और समिति दायित्व -वार्षिक लेखा परीक्षाओं और अन्य रिपोर्टें साधारण सभा के समक्ष प्रस्तुत करना। -जाँच, पूछताछ, अतिभार और प्रशासक को अतिक्रमित व नियुक्त करने की रजिस्ट्रार की शक्ति -पंजीकरण रद्द करने और विघटन की न्यायालय अथवा रजिस्ट्रार की शक्ति	-व्यवस्थित प्रजातान्त्रिक संगठन -सुविचारित वित्तीय अनुशासन - प्रयोजन अनुपालनार्थ प्रभावी स्कीम - कानून की सुविधाकर्ता और विनियामक दोनों रूपों में भूमिका	-अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप जिससे रेजिमेन्टेशन होता है। - अलग होने की आजादी का इस्तेमाल कठिन है।
2.	धार्मिक धर्मादा अधिनियम, 1863 मूलत: एक निजी धर्मादा अधिनियम, जिसके अन्तर्गत धार्मिक और दान प्रयोजनार्थ एक वसीयत के जरिए न्यासी/न्यासियों के प्रबंधन के तहत सम्पत्ति को रखा गया। यह एक प्रकार का वसीयतकर्ता और न्यासी के बीच एक संविदा है।	प्रबंधन मात्र रूप से न्यासियों के हाथों में था।	-मस्जिदों, मन्दिरों व अन्य धार्मिक स्थापनाओं के धर्मादा	न्यासियों के अधिकार; क्षेत्रीय समितियों की नियुक्ति; क्षेत्रीय समितियों के सदस्य; न्यासियों की ड्यूटियां	-न्यासियों को लेखा-जोखा देना है - पर्यवेक्षण के लिए समिति - क्योंकि यह वसीयतकर्ता और न्यासियों के बीच एक संविदा है इसलिए केवल न्यायालय में सिविल मुकदमा दायर करके हस्तक्षेप सम्भव है, - न्यास भंग के लिए मुकदमा	-धर्मादा को स्वायत्तता -समिति के चुने हुए निकाय की अवधारणा -न्यासियों पर नियंत्रण	-समिति सदस्य का आजीवन कार्यकाल

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
3.	मर्यादा और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 सार्वजनिक न्यास की अवधारणा पक्की बन गई। न्यासियों को न्यास की आय और मूल्य प्रकट करने के लिए जवाबदेह बनाया गया। सिविल न्यायालयों को न्यास के समुचित प्रबंधन के लिए आदेश पारित करने की स्वमेव शक्तियां प्रदान की गईं। किन्तु सरकार के हस्तक्षेप का बिलकुल इरादा नहीं था। आजादी के बाद स्थिति आमूल रूप से बदल गई। बहुत से राज्यों ने मन्दिर प्रबंधन के क्षेत्र में अपने धार्मिक और धर्मादा अधिनियम पारित किए। राज्य सरकार के अधिकारियों को (राज्य सरकार न्यासियों और कार्यकर्ताओं की नियुक्ति) व्यापक प्रशासनिक और पर्यवेक्षी शक्तियां प्रदान की गईं	धर्मादा और धार्मिक न्यासों पर प्रभावी नियंत्रण	धर्मादा और धार्मिक न्यास	- न्यास का उद्देश्य, आय और मूल्य प्रकट करने के लिए न्यासी बाध्य - उचित प्रबंधन के संबंध में न्यायालय द्वारा आदेश पारित करना।	- उचित प्रशासन हेतु न्यायालय हस्तक्षेप - न्यास भंग के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत उपचार	- विवरण प्रकट करके पारदर्शिता सुनिश्चित - न्यायालय की विनियामक भूमिका	- व्यापक संस्थागत अथवा प्रशासनिक -नियंत्रण विद्यमान नहीं है। - निवारक तन्त्र पर्याप्त नहीं है।
	क- मद्रास धर्मादा और धार्मिक अधिनियम 1951 ख- त्रावणकोर - कोचीन हिन्दू धार्मिक संस्थान अधिनियम, 1950	संबंधित राज्य में हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान और धर्मादाओं का प्रशासन और शासन	हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान और धर्मादा मठ सहित	गठन, न्यासियों के अधिकार और डयूटियों जैसे कि आयुक्त, उपायुक्त, सहायक आयुक्त, लेखा समिति आदि	प्राधिकारियों की पर्यवेक्षी शक्तियां। न्यासी और सेवकों की धार्मिक अर्हताएं और डयुटियां समुचित उपयोग हेतु वित्तीय जवाबदेही	-मन्दिर प्रशासन में व्यवस्था करना -प्रयोजन अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए व्यापक शक्तियां	- भक्तों की भागीदारी हेतु प्रजातान्त्रिक रूपरेखा का अभाव

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
	ग) आन्ध्र प्रदेश धर्मादा और हिन्दू धार्मिक संस्थान व धर्मादा अधिनियम, 1966	राज्य में सभी हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान और धर्मादाओं का प्रशासन और शासन	हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान और धर्मादा मठ सहित	पंजीकरण संस्थान के सम्पत्ति विहित करना न्यासी बोर्ड की नियुक्ति अधिकार न्यासियों को अपात्र घोषित करना। प्राधिकारियों की शक्तियां	-लेखे, लेखा परीक्षा, बजट प्रस्तुत करने की आवश्यकता - निधियों के निवेश और अधिशेष निधियों के उपयोग के संबंध में विनियमन	-ट्रस्टी बोर्ड का अध्यक्ष ट्रस्टी बोर्ड द्वारा चुना जाता है। - तिरूपति मन्दिर के लिए व्यापक उपाय	भक्तों द्वारा भागीदारी के लिए प्रजातान्त्रिक रूपरेखा का अभाव
घ)	कर्नाटक हिन्दू धार्मिक संस्थान और धर्मादा न्यास अधिनियम, 1997	कर्नाटक में हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान और धर्मादाओं का प्रशासन और शासन, मठ और धार्मिक नाम वाले संस्थानों को छोड़कर	हिन्दू धार्मिक संस्थान और धर्मादा, मठ और धार्मिक नाम वाले संस्थानों को छोड़कर	- प्रत्येक अधिसूचित संस्थान की प्रबंधन समिति का गठन -राज्य स्तर पर सलाहकार समिति - प्राधिकारियों की शक्तियां	-लेखे, लेखा परीक्षा, बजट प्रस्तुत करने की आवश्यकता -निधियों के निवेश और अधिशेष निधियों के उपयोग के संबंध में विनियमन -अनुचित कार्यकरण समिति को निलम्बित करने की शक्ति -सांझी समूह (पूल) निधि का उचित प्रशासन	-वित्तीय अनुशासन हेतु व्यापक उपाय	- मठों व धार्मिक नाम वाले संस्थानों का निष्कासन - भक्तों द्वारा भागीदारी के लिए प्रजातान्त्रिक रूपरेखा का अभाव

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
4.	वक्फ अधिनियम, 1995 विशेष किस्म का धार्मिक और धर्मादा अधिनियम मुस्लिम न्यास सम्पत्तियों (वक्फ) का प्रबंध करने के लिए। यह भी वसीयत द्वारा मार्गदर्शित होगा। सरकार की बहुत कम विनियामक शक्तियां किसी विवाद की स्थिति में उसे केवल सिविल न्यायालय द्वारा तय किया जाएगा।	वक्फों का बेहतर प्रशासन, वक्फों का अधीक्षण और पर्यवेक्षण	वक्फ अथवा मुस्लिम द्वारा किसी सम्पत्ति का किसी प्रयोजनार्थ, जिसे मुस्लिम कानून द्वारा पवित्र, धार्मिक अथवा धर्मादा के रूप में माना जाए, स्थायी समर्पण	-वक्फ का गठन - वक्फ बोर्ड और वक्फ आयुक्त के बीच शक्ति का विभाजन। -कार्यपालिका अधिकारी की नियुक्ति -वक्फ बोर्ड के वित्त का सुदृढ़ीकरण -मुतावली की शक्तियों पर प्रतिबंध -वक्फ अधिकरण -सम्पत्ति के दुरूपयोग अथवा अनुचित हस्तांतरण पर रोक	-मुतावली की शक्तियों पर प्रतिबंध - सम्पत्ति के दुरूपयोग पर प्रतिबंध -कार्यपालक अधिकारी की भूमिका -वक्फ अधिकरण का हस्तक्षेप	-वक्फ बोर्ड का अर्ध-प्रजातान्त्रिक गठन - सम्पत्ति के दुरूपयोग के विरूद्ध संरक्षण, प्रयोजन अनुपालन के संबंध में पद्धति प्रभावी है।	लाभार्थियों को निर्णय-निर्माण में कोई अवसर नहीं दिया जाता है।
5.	पूर्व धर्मादा अधिनियम, 1890 सरकार ने, ऐसी पूर्व धर्मादाओं के कामकाज पर नजर रखने के लिए प्रत्येक राज्य में एक खजान्ची का पद स्थापित करके कुछ मात्रा में विनियमन लागू किया। दान के क्षेत्र में राज्य हस्तक्षेप का यह पहला कदम था।	धर्मादा प्रयोजनार्थ न्यास में धारित सम्पत्ति का प्रशासन सौंपकर	धर्मादा प्रयोजनार्थ सार्वजनिक न्यास	-धर्मादा प्रयोजन परिभाषित किया गया है। - धर्मादा प्रयोजनार्थ खजान्ची का पद -सम्पत्ति का प्रशासन सौंपकर	ट्रस्ट प्रलेख में वर्णित प्रयोजनार्थ सम्पत्ति का उपयोग करने की जिम्मेदारी खजान्ची की है।	ट्रस्ट सम्पत्ति का उचित उपयोग सुनिश्चित करने में राज्य की भागीदारी	जन भागीदारी के लिए व्याख्या के बगैर नाममात्र का विधान

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
6.	भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 देश में धर्मादा कानूनों की शुरूआत। मूलत:, एक निजी न्यास, किसी व्यक्ति द्वारा वसीयतकर्ता और न्यासियों के बीच एक संविदे के रूप में वसीयत के जरिए स्थापित। इरादा केवल वसीयत में वर्णित परिवार सदस्यों को लाभ पहुंचाना था। केवल सिविल न्यायालय के जरिए ही हस्तक्षेप हो सकता है।	पंजीकरण/स्थापना न्यासियों और लाभार्थियों के अधिकार और कर्त्तव्य	निजी ट्रस्ट या तो धर्मादा अथवा अन्य कानूनी प्रयोजनार्थ	-ट्रस्ट की स्थापना, न्यासियों की ड्यूटियां, देयताएं, अधिकार और शक्तियां। लाभार्थियों के अधिकार और देयताएं	कानूनी कार्यवाही के जरिए लाभार्थी और न्यास भंग से बचने के लिए बाध्य कर सकते हैं।	-न्यास की स्थापना सुकर होती है। -न्यासों और लाभार्थियों के अधिकारों और डयुटियों को संहिताबद्ध किया गया है। -व्यापक राज्य नियंत्रण की व्यवस्था नहीं है।	-न्यायलयों से बाहर उपचारों का अभाव - राज्य पर्यवेक्षण का अभाव
	क) बोम्बे पब्लिक ट्रस्ट एक्ट, 1950: सार्वजनिक धर्मादाओं के लिए पहला अधिनियम: राज्य सरकार की मजबूत विनियामक उपस्थिति कायम की (धर्मादा आयुक्त) ट्रस्टियों के निलम्बन और बर्खास्तगी के लिए प्रावधान।	महाराष्ट्र राज्य में सार्वजनिक न्यासों के अधिशासन के लिए विस्तृत उपाय	सार्वजनिक न्यास	-धर्मादा आयुक्त द्वारा अधीक्षण - धर्मादा आयुक्त द्वारा अर्ध-न्यायिक अधिनिर्णयन	-हानिकारक कार्यों के लिए धर्मादा आयुक्त द्वारा न्यासी का निलम्बन अथवा बरखस्तगी। -न्यास सम्पत्ति की बरबादी , क्षति अथवा अनुचित हस्तान्तरण की रोकथाम। -लेखों की विशेष लेखा परीक्षा और कानूनों के बारे में जाँच	-पारदर्शिता -धर्मादा आयुक्त द्वारा अन्तर-निर्मित चेक -प्रयोजन अनुपालन प्रभावी है। -आर्थिक दृष्टि से अधिक प्रभावी	-प्रजातान्त्रिक शासन पर कोई खास जोर नहीं -धर्मादा आयुक्त के लिए अधिक कार्य -धर्मादा आयुक्त पर अत्यधिक निर्भरता

क्रम संख्या	विधान	अधिनियम का प्रयोजन	कवर किए गए संगठन	कवरेज	प्रयोजन अनुपालन के लिए उपाय	शक्ति	सीमाएं
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.	8.
7.	ट्रेड यूनियन्स अधिनियम, 1926	ट्रेड यूनियनों का पंजीकरण, अधिकार और देयताएं	ट्रेड यूनियन	ट्रेड यूनियनों के पंजीकरण के लिए व्यवस्था और आवश्यकताएं -सिविल मुकदमों और आपराधिक देयता से छूट -निधियां विलयन विघटन	-पंजीकरण रद्द करने की रजिस्ट्रार की शक्ति - वार्षिक विवरणी - रजिस्ट्रार तक पहुँच	पदाधिकारियों के चुनाव की गुंजाइश और प्रजातान्त्रिक संरचना	-बाहरी/ राजनीतिक हस्तक्षेप के खिलाफ कोई चेक नहीं। - प्रयोजन खण्ड सामान्यत: अस्पष्ट
8.	भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 धारा 25	गैर-लाभ कम्पनियों/संस्थानों का पंजीकरण	लाभ के लिए नहीं कम्पनियां	-पंजीकरण के लिए व्यवस्था और आवश्यकता - कारपोरेट अस्तित्व - एक लिमिटेड कम्पनी के विशेषाधिकार	-संस्था-ज्ञापन पत्र के उल्लंघन में किए गए कार्य अवैध हैं। निदेशक जवाबदेह हैं।	-कारपोरेट अस्तित्व सम्भव है। - साधारण सभा की बैठकें नीतियों और नेतृत्व को नियंत्रित करती हैं।	

संलग्नक –III(2)

सोसायटियों के संबंध में विभिन्न राज्य विधानों के बीच तुलनात्मक विश्लेषण

1. सोसायटियों के गठन का प्रयोजन

(क) सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अन्तर्गत, किसी साहित्यिक, वैज्ञानिक अथवा धर्मादा प्रयोजनार्थ अथवा ऐसे किसी अन्य प्रयोजनार्थ, जिसका उल्लेख अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत किया गया है, एक सोसायटी का गठन करने की व्यवस्था है। धारा 20 के अनुसार निम्नलिखित सोसायटियों को इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत किया जा सकता है :

"धर्मादा सोसाटियाँ, सैनिक अनाश्रित निधि अथवा भारत की अनेक प्रेसीडेन्सियों में स्थापित सोसायटियां, विज्ञान, साहित्य अथवा शिक्षण हेतु ललित कलाओं के प्रोन्नयन, उपयोगी ज्ञान के प्रसार (राजनीतिक शिक्षा का प्रसार), सदस्यों के बीच सामान्य उपयोगार्थ अथवा जनता के लिए खुले पुस्तकालयों अथवा वाचनालयों अथवा सार्वजनिक संग्रहालयों और चित्रकला वीथियों व कला की अन्य कृतियों, प्राकृतिक इतिहास के संग्रहों, यांत्रिकी और दार्शनिक आविष्कारों, यंत्रों अथवा डिजाइन हेतु स्थापित और अनुरक्षित करने के लिए सोसायटियाँ"

(ख) राज्य संशोधन -

(i) आन्ध्र प्रदेश - कला, ललित कला, दान, शिल्पकला, धर्म, खेल-कूद, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान, राजनीतिक शिक्षा, दर्शन के प्रोन्नयन अथवा किसी ज्ञान के प्रसार अथवा किसी सार्वजनिक कार्य के लिए सोसायटी पंजीकृत की जा सकती है।

(ii) कर्नाटक - सोसायटियों की स्थापना निम्नलिखित प्रयोजनार्थ की जा सकती है: दान, शिक्षा, विज्ञान, साहित्य, ललित कलाओं अथवा खेल-कूद का प्रोत्साहन, वाणिज्य अथवा उद्योग अथवा किसी अन्य उपयोगी ज्ञान का प्रसार, राजनीतिक शिक्षा का प्रसार, पुस्तकालयों, वाचनालयों, सार्वजनिक संग्रहालयों और वीथियों की स्थापना अथवा अनुरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों और दुर्लभ अवस्थापना संबंधी सुविधाओं, जैसे कि भूमि, विद्युत, जल, वन आदि के संरक्षण और उचित उपयोग का प्रोन्नयन और प्राकृतिक

इतिहास, यांत्रिकी और दार्शनिक आविष्कारों, यंत्रों और डिजाइनों का संकलन। यह इस प्रावधान के अध्यधीन है कि ऐसी सोसायटियां अपने लाभों व अन्य आय का उपयोग अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करेंगी और अपने सदस्यों के बीच किसी लाभांश की अदायगी अथवा किसी आय अथवा लाभों का वितरण नहीं करेंगी।

(iii) मध्य प्रदेश - सोसायटियों का गठन निम्नलिखित प्रयोजनार्थ किया जा सकता है: विज्ञान, शिक्षा, साहित्य अथवा ललित कलाओं का प्रयोन्नयन, उपयोगी ज्ञान अथवा राजनीतिक शिक्षा का प्रसार, पुस्तकालयों, चित्रकला वीथियों और कलाओं, सार्वजनिक संग्रहालयों की स्थापना अथवा प्रसार, प्राकृतिक इतिहास, यांत्रिकी और दार्शनिक आविष्कारों, यंत्रों और डिजाइनों का संकलन, समाज कल्याण का प्रोत्साहन, धार्मिक और धर्मादा प्रयोजन का प्रोत्साहन, सैनिक अनाश्रितों, राजनीतिक पीड़ितों के कल्याण व ऐसों ही के कल्याण हेतु निधियों की स्थापना सहित, व्यायाम का प्रोन्नयन, राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित विभिन्न स्कीमों का प्रोन्नयन और कार्यन्वयन और वाणिज्य, उद्योगों और खादी का प्रोन्नयन।

(iv) राजस्थान- किसी भी साहित्यिक, वैज्ञानिक अथवा धर्मादा प्रयोजन, सैनिक अनाश्रित निधियों, साहित्य, विज्ञान अथवा ललित कलाओं के प्रोन्नयन, ज्ञान अथवा राजनीतिक शिक्षा के प्रसार, पुस्तकालयों, वाचनालयों, संग्रहालयों, वीथियों की स्थापना और अनुरक्षण, प्राकृतिक इतिहास के संकलन, यांत्रिकी और दार्शनिक आविष्कारों, यंत्रों अथवा डिजाइनों के लिए।

(v) तमिलनाडु- सोसायटी के गठन के उद्देश्य हैं: अनिवार्य वस्तुओं की आपूर्ति और वितरण में उपभोक्ताओं का हित, बस, टेक्सियों और ऐसे ही सार्वजनिक वाहनों का इस्तेमाल करने वाले यात्रियों का हित, शारीरिक विकलांगों, कामकाजी महिलाओं और बेरोजगारों का कल्याण, सिविक सुविधाएं प्रदान करने के मामले में निवासियों का हित, तीर्थयात्रियों और पर्यटकों का हित, पशुओं, नसलों व ऐसे ही प्राणियों का कल्याण, विस्थापित और आर्थिक रूप से कमजोर व सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों का कल्याण।

संलग्नक –III(2) जारी

(vi) पश्चिम बंगाल: साहित्य, कला, विज्ञान अथवा धर्म का प्रोन्नयन; कोई धर्मादा प्रयोजन, अनाथों, वृद्धों, बीमार, लाचार अथवा कठिन परिस्थितिग्रस्त व्यक्तियों की देखभाल अथवा राहत सहित; पशुओं की कठिनाइयों का उपशमन, ज्ञान का प्रसार; सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शिक्षा का प्रसार; सदस्यों अथवा जनता के लिए पुस्तकालयों अथवा वाचनालयों की स्थापना और अनुरक्षण; पाण्डुलिपियों, चित्रकलाओं, मूर्तियों, कलाकृतियों, पुरावशेषों, प्राकृतिक इतिहास नमूनों, यांत्रिकी और वैज्ञानिक यंत्रों और डिजाइनों का संकलन और परिरक्षण; कोई अन्य विषय जिसे राज्य सरकार द्वारा जनता अथवा जनता के किसी खण्ड के लिए लाभप्रद के रूप में अधिसूचित किया जाए।

(vii) उत्तर प्रदेश- सोसायटी पंजीकरण अधिनियम में सूचीबद्ध उद्देश्यों के अलावा, खादी और ग्रामोद्योग तथा ग्रामीण विकास के लिए भी सोसायटियों का गठन किया जा सकता है।

1. पंजीकरण

(क) सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अनुसार, रजिस्ट्रार, संस्था ज्ञापन-पत्र और नियमों व विनियमों की एक प्रमाणित प्रतिलिपि उसके पास फाइल किए जाने के बाद, सोसायटी को पंजीकृत करेगा।

(ख) राज्य संशोधन

(i) आन्ध्र प्रदेश - रजिस्ट्रार के पास संस्था ज्ञापन-पत्र और विनियमों की प्रतिलिपि फाइल किए जाने के बाद सोसायटी का पंजीकरण किया जा सकता है। यदि अधिनियम के सभी प्रावधानों का अनुपालन करते हुए पंजीकरण हेतु आवेदन-पत्र का 60 दिन के अन्दर निपटान नहीं किया गया तो समझा जाएगा कि सोसायटी पंजीकृत हो गई है तथा रजिस्ट्रार इस बाबत एक प्रमाण-पत्र जारी करेगा। पंजीकरण नामंजूर हो जाने के मामले में, महापंजीयक के पास अपील की जा सकेगी।

(ii) कर्नाटक- रजिस्ट्रार के पास संस्था ज्ञापन-पत्र (एम ओ यू) और नियमावली फाइल किए जाने के आधार पर पंजीकरण किया जाएगा। नामंजूरी के मामले में, कर्नाटक अपीलीय अधिकरण के पास अपील की जा सकती है।

(iii) मध्य प्रदेश - एम ओ यू और नियमावली की एक प्रतिलिपि के आधार पर पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी किया जाएगा।

(iv) राजस्थान- एम ओ यू की एक प्रमाणित प्रतिलिपि के आधार पर पंजीकरण किया जाता है।

(v) तमिलनाडु- एम ओ यू और नियमावली की एक प्रतिलिपि के आधार पर पंजीकरण प्रमाण पत्र जारी किया जाएगा।

(vi) प. बंगाल- एम ओ यू और नियमावली की एक प्रतिलिपि के आधार पर पंजीकरण प्रमाण-पत्र जारी किया जाएगा। पंजीकरण प्रमाणित करने की मनाही करने वाले रजिस्ट्रार के आदेश के विरूद्ध राज्य सरकार को अपील की जा सकती है तथा ऐसी अपील पर दिया गया निर्णय अन्तिम होगा।

(vii) उत्तर प्रदेश - पंजीकरण प्रमाण पत्र उसके जारी होने की तारीख से दो वर्ष की अवधि के लिए वैद्य रहेगा और उसके बाद उसका नवीकरण कराना होगा। यदि पंजीकरण हेतु सोसायटी की हकदारी के संबंध में कोई प्रश्न उठता है तो मामले को राज्य सरकार को भेजा जाएगा और राज्य सरकार का निर्णय अन्तिम होगा।

2. संस्था ज्ञापन–पत्र और उप–नियमों में परिवर्तन

(i) गुजरात - संस्था ज्ञापन-पत्र में, सोसायटी की कुल सदस्यता में से कम से कम 3/5 बहुमत द्वारा पारित एक विशेष संकल्प के जरिए बदली की जा सकती है तथा ऐसी बदली रजिस्ट्रार द्वारा मंजूर की जाएगी।

(ii) आन्ध्र प्रदेश - एक "विशेष संकल्प" द्वारा सोसायटी निम्नलिखित के संबंध में ज्ञापन के प्रावधानों में बदली कर सकती है:

(क) सोसायटी के उद्देश्यो में परिवर्तन ;

(ख) किसी अन्य सोसायटी के साथ अपना विलयन, अथवा

संलग्नक –III(2) जारी

(ग) अपना विभाजन दो अथवा अधिक सोसायटियों में करना।

"विशेष संकल्प" का अर्थ है, सोसायटी की कुल सदस्यों के कम से कम 3/5 सदस्यों के बहुमत द्वारा, जो बैठक में उपस्थित हों और मतदान करें, पारित एक सकंल्प।

"उप-नियमों" में, बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले कम से कम आधे सदस्यों द्वारा पारित एक साधारण संकल्प द्वारा बदली जा सकती है।

(iii) कर्नाटक- एम ओ यू में बदली, प्रस्ताव के पक्ष में दिए गए मतों द्वारा सहमत प्रस्ताव के जरिए की जा सकती है, तथा ऐसे मतों की संख्या उस संकल्प के विरूद्ध मतों से, यदि कोई हो, तीन गुणा से कम नहीं होनी चाहिए। संकल्प की, पहली बैठक के बाद तीस दिन के अन्तराल के बाद बुलाई गई दूसरी विशेष आम बैठक में मतों के साधारण बहुमत द्वारा पुष्टि किए जाने की जरूरत है।

(iv) मध्य प्रदेश- पंजीकृत सोसाटी में एम ओ यू अथवा विनियमों में प्रत्येक संशोधन को रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत किया जाएगा। विकल्प के तौर पर यदि रजिस्ट्रार समझे कि ऐसा संशोधन आवश्यक है तो वह सोसायटी को ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट समय के अन्दर संशोधन करने के लिए निदेश देगा। यदि कोई सोसायटी निर्धारित समय के अन्दर ऐसा संशोधन करने में असमर्थ रहती है तो रजिस्ट्रार खुद ऐसे संशोधन को पंजीकृत करेगा और ये संशोधन सोसायटी व उसके सदस्यों के लिए बाध्यकर होंगे।

(v) तमिलनाडु- एम ओ यू और उपनियमों में सोसायटी द्वारा एक विशेष संकल्प के जरिए संशोधन किए जा सकते हैं तथा ऐसे संशोधनों को रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत किया जाएगा।

(vi) पं. बंगाल - कोई भी सोसायटी अपने ज्ञापन-पत्र में, रजिस्ट्रार की लिखित में पूर्व अनुमति और अपने 3/4 सदस्यों के मतों के बिना, बदली नहीं करेगी। सोसायटी के विनियम में अधिनियम और उसके ज्ञापन-पत्र के प्रावधानों के अध्यधीन सदस्यों के 3/4 मतों द्वारा , बदली की जा सकती है।

3. वार्षिक विवरणी फाइल करना

(क) सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अनुसार उम्मीद की जाती है कि रजिस्ट्रार के पास एक वार्षिक सूची फाइल की जाएगी जिसमें गवर्नरों, परिषदों, निदेशकों, समिति अथवा

सोसायटी के प्रबंधन मामलों से संबंधित अन्य शासी निकाय के नाम, पते और व्यवसाय का उल्लेख होगा।

(ख) राज्य संशोधन

(i) कर्नाटक - ऊपर वर्णित सूची के साथ-साथ, सोसायटी द्वारा कर्नाटक में कम्पनियों के लेखा परीक्षक के रूप में कार्य करने हेतु पंजीकृत, कम्पनी अधिनियम की धारा 226 के अन्तर्गत प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा परीक्षित तुलन-पत्र और आय व व्यय लेखे की एक प्रतिलिपि फाइल की जाएगी।

(ii) मध्य प्रदेश - शासी निकाय की एक वार्षिक सूची के अतिरिक्त, प्रत्येक सोसायटी, लेखा परीक्षक द्वारा यथापूर्वक परीक्षित पूर्ण विवरण के साथ आय और व्यय विवरण लेखा परीक्षा रिपोर्ट और सभी वित्तीय कार्यकलापों के ब्योरों के साथ-साथ, पिछले वर्ष के तुलन-पत्र की प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजेगी। एक लाख रुपए से अधिक का कारोबार करने वाली ऐसी सोसायटी के लेखे, रजिस्ट्रार को, चार्टर्ड लेखाकार द्वारा यथापूर्वक रूप से परीक्षित रूप में भेजे जाएंगे। रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि वह किसी सोसायटी के लेखों की लेखा परीक्षा स्वंय अथवा उसके द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति से करा सकता है।

(iii) प. बंगाल - शासी निकाय की सूची के अतिरिक्त, प्रत्येक सोसायटी, सोसायटी के पिछले वर्ष के कामकाज के संबंध में शासी निकाय द्वारा एक वार्षिक रिपोर्ट और एक यथापूर्वक अर्हताप्राप्त लेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित लेखा परीक्षक की रिपोर्ट के साथ, जिसका अर्थ चार्टर्ड लेखाकार अथवा इस संबंध में रजिस्ट्रार द्वारा अनुमोदित व्यक्ति से है, रजिस्ट्रार को भेजेगी।

(iv) लगभग सभी राज्यों में रजिस्ट्रार को, सोसायटी से ऐसी कोई भी जानकारी मंगाने के लिए समर्थ बनाया गया है, जिसे वह चाहे।

4. सोसायटी की सम्पत्ति

(क) सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 की धारा 5 के अनुसार, सोसायटी की सम्पत्ति, यदि न्यासियों में विहित नहीं हो, तो ऐसी सोसायटी के शासी निकाय में विहित समझी जाएगी।

संलग्नक –III(2) जारी

(ख) राज्य संशोधन

(i) उत्तर प्रदेश - किसी सोसायटी के शासी निकाय अथवा उसके किसी सदस्य के लिए न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना, ऐसी सोसायटी से संबंधित किसी अचल सम्पत्ति को हस्तान्तरित करना वैद्य नहीं होगा।

(ii) मध्य प्रदेश - सोसायटी द्वारा रजिस्ट्रार की पूर्व अनुमति के बिना, कोई अचल सम्पत्ति प्राप्त अथवा हस्तान्तरित नहीं की जाएगी तथा ऐसी सम्पत्ति का उपयोग, रजिस्ट्रार की पूर्व अनुमति के बिना और भेंट के मामले में दाता की लिखित सहमति के बिना, सोसायटी के उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जाएगा।

5. सोसायटी का विलयन और विघटन

(क) सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत, सोसायटी के विघटन के बारे में कम से कम 3/5 सदस्यों द्वारा निर्णय लिया जाएगा तथा बाद में सम्पत्ति का निपटारा उस पर लागू सोसायटी के नियमों के अनुसार किया जाएगा। यदि ऐसा कोई नियम अस्तित्व में नही हो तो ऐसा शासी निकाय के निर्णय के अनुसार किया जाएगा। शासी निकाय और सदस्यों के बीच किसी विवाद के मामले में मामले को सिविल न्यायालय को संदर्भित किया जाएगा। बाद में, इस प्रयोजनार्थ बुलाई गई साधारण सभा की बैठक में उपस्थित 3/ 5 सदस्यों के मत द्वारा स्वीकृति की आवश्यकता होगी। इसके साथ ही, यदि सरकार एक सदस्य है अथवा एक अंशदाता है अथवा अन्यथा उसका किसी अन्य सोसायटी में हित है, तो ऐसी सोसायटी को सरकार की पूर्व सहमति के बिना भंग नहीं किया जाएगा।

भंग हो जाने पर, सोसायटी के कर्ज और देयताओं का निपटान करने के बाद, उसे सोसायटी के सदस्यों के बीच वितरित/अदायगी नहीं की जाएगी बल्कि उसे किसी अन्य सोसायटी को सौंपा जाएगा जिसके बारे में कम से कम 3/4 सदस्यों द्वारा निर्धारित किया जाएगा । तथापि, यह ऐसी किसी सोसायटी पर लागू नहीं होगा जिसकी स्थापना एक संयुक्त स्टाक कम्पनी की प्रकृति के रूप में शेयरधारकों के अंशदान द्वारा की गई है।

(ख राज्य संशोधन

(i) उत्तर प्रदेश - सोसायटी के शासी निकाय द्वारा उसे भंग करने के प्रस्ताव के अलावा रजिस्ट्रार अथवा कुल सदस्यों में से कम से कम 1/10 सदस्य भी, अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने, सदस्यों की संख्या सात से कम रह जाने, सोसायटी द्वारा तीन से भी अधिक वर्षों तक काम न करने, सोसायटी अपने कर्ज और देयता की अदायगी करने में असमर्थ रहने और इस आधार पर कि सोसायटी के कार्यकलाप एक सार्वजनिक शरारत बन गई है अथवा अन्यथा सार्वजनिक नीति के खिलाफ हैं, रजिस्ट्रार द्वारा सोसायटी का पंजीकरण रद्द कर दिए जाने के आधार पर भंग किए जाने के आदेश के लिए न्यायालय में मामला दायर किया जा सकता है।

(ii) कर्नाटक - सोसायटी के विलयन के प्रस्ताव को सदस्यों के मतों द्वारा, जो प्रस्ताव के विरूद्ध मत देने वाले सदस्यों की संख्या से तीन गुणा से कम न हों, अनुमोदित किए जाने की जरूरत है। प्रस्ताव की, शासी निकाय द्वारा 90 दिन के अन्तराल के बाद बुलाई गई दूसरी विशेष आम बैठक में पुन: पुष्टि की जानी चाहिए। भंग किए जाने के लिए सोसायटी के 3/4 सदस्यों के अनुमोदन की जरूरत है। तथापि, यदि राज्य सरकार सोसायटी की एक सदस्य, अंशदाता अथवा किसी अन्य सोसायटी में अन्यथा रुचि रखती है, तो ऐसी सोसायटी को राज्य सरकार की सहमति के बिना भंग नहीं किया जाएगा। अपने कर्ज और देयताओं की सन्तुष्टि करने के बाद सोसायटी के पास बची रहती सम्पत्ति को किसी अन्य सोसायटी को दे दिया जाएगा जिसका निर्धारण कम से कम 3/5 सदस्यों के मतों के आधार किया जाएगा। सदस्यों के बहुमत द्वारा ऐसी सम्पत्ति का उपयोग अन्य सोसायटी गठित करने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार को सौंपे जाने के बारे में भी निर्णय लिया जा सकता है।

(iii) मध्य प्रदेश: भंग किए जाने के बारे में 3/5 सदस्यों द्वारा निर्णय और इस प्रयोजनार्थ बुलाई गई आम बैठक में इतनी ही संख्या में मतों द्वारा पुष्टि। सम्पत्ति के बारे में प्रावधान वही है जो कर्नाटक में लागू है, जिन पर ऊपर चर्चा की गई है। तथापि, रजिस्ट्रार को, इस बात से सन्तुष्ट हो जाने पर कि सोसायटी के जारी रहने पर कोई

संलग्नक –III(2) जारी

उपयोगी प्रयोजन सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है, पंजीकरण रद्द करने की शक्ति प्रदान की गई है। ऐसी स्थिति में, सोसायटी की चल और अचल सम्पत्तियां, संघ अथवा राज्य सरकार अथवा किसी सांविधिक निकाय से प्राप्त सहायता/अनुदान की सीमा तक, राज्य सरकार में विहित होंगी। यह उस जिले के कलेक्टर की ड्यूटी होगी, जहां सम्पत्ति स्थिति है कि रजिस्ट्रार द्वारा रद्द किए जाने की सूचना दिए जाने पर, उसे अपने कब्जे में ले ले।

(iv) तमिलनाडु - पंजीकृत सोसायटियों का विलयन, विभाजन और भंग किया जाना विशेष प्रस्ताव द्वारा तथा उप-नियमों के अनुसार हो सकता है। किन्तु, विलयन और विभाजन के लिए रजिस्ट्रार की पूर्व अनुमति आवश्यक है।

(v) प. बंगाल - दो अथवा अधिक सोसायटियों का विलयन किया जा सकता है यदि ऐसी प्रत्येक सोसायटी द्वारा ऐसा निर्णय लिया जाए और प्रस्ताव को प्रत्येक संबंधित सोसायटी के 3/4 सदस्यों द्वारा मतों द्वारा अनुमोदित किया जाए और अगली आम बैठक में इतनी ही मतों द्वारा पुष्टि की जाए। किन्तु, रजिस्ट्रार की पूर्व अनुमति की जरूरत होगी जो प्रस्ताव में संशोधन करने का आदेश दे सकता है। रजिस्ट्रार के ऐसे आदेश के विरूद्ध राज्य सरकार से अपील की जा सकती है।

किसी सोसायटी को 3/4 सदस्यों द्वारा मतों द्वारा इस प्रयोजनार्थ बुलाई गई आम बैठक में भंग किया जा सकता है। भंग होने पर किसी सदस्य को कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा और 3/4 सदस्य अथवा चूक होने पर रजिस्ट्रार द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से, अधिशेष सम्पत्ति को किसी अन्य सोसायटी को देने के विषय में निर्णय लिया जा सकता है। न्यायालय द्वारा भी रजिस्ट्रार अथवा सोसायटी द्वारा अधिनियम के किन्ही प्रावधानों का उल्लंघन किए जाने के मामले में कम से कम 1/10 सदस्यों द्वारा आवेदन किए जाने पर, यदि सदस्यों की संख्या सात से कम है, यदि सोसायटी ने तीन वर्ष से भी अधिक समय से काम करना बन्द कर दिया है, यदि सोसायटी अपना कर्ज अदा करने अथवा अपनी देनदारियां पूरी करने में असमर्थ हो और यदि यह उचित हो कि सोसायटी को भंग कर दिया जाए।

इसके साथ ही, यदि रजिस्ट्रार के मत में, यह विश्वास करने के उचित कारण हों कि सोसायटी अपने मामलों का उचित रूप से प्रबंधन नहीं कर रही है अथवा कार्य नहीं कर रही है, रजिस्ट्रार, सोसायटी को भंग करने के लिए एक आदेश देने के वास्ते न्यायालय से अनुरोध कर सकता है।

6. राज्य सरकार और रजिस्ट्रार की अन्य शक्तियां

(i) कर्नाटक : (क) रजिस्ट्रार, अपने ही प्रस्ताव पर और शासी निकाय के बहुमत सदस्यों अथवा सोसायटी के कम से कम 1/3 सदस्यों के आवेदन पर जाँच आयोजित कर सकता है अथवा अपने द्वारा प्राधिकृत किन्हीं सदस्यों द्वारा सीधे ही पंजीकृत सोसायटी के विधान, कार्यकरण और वित्तीय स्थिति की जाँच करा सकता है। ऐसा करते समय, उसे दस्तावेजों का निरीक्षण करने, किसी भी व्यक्ति को सम्मन जारी करने, साधारण बैठक बुलाने आदि के संबंध में सभी शक्तियां प्राप्त होंगी। ऐसी जाँच के दौरान, यदि सोसायटी से सम्बद्ध किसी व्यक्ति को अपकरण अथवा विश्वास भंग का दोषी पाया गया तो रजिस्ट्रार उसे ब्याज के साथ धन अथवा सम्पत्ति वापस करने अथवा क्षतिपूर्ति के रूप में सोसायटी की सम्पत्तियों में ऐसी राशि का अंशदान अदा करने का आदेश दे सकता है। यह अधिनियम के तहत की गई आपराधिक देयता के अलावा होगा।

(ख) रजिस्ट्रार, कतिपय सोसायटियों का पंजीकरण रद्द करने अथवा उन्हें भंग करने का भी आदेश दे सकता है यदि वह इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसी सोसायटी कोई गैर-कानूनी कार्यकलाप चला रही है अथवा अपने परिसर के अन्दर उसने किसी अवैध कार्यकलाप की अनुमति दी है।

(ग) राज्य सरकार को, सोसायटी द्वारा साधारण बैठक आयोजित करने में असमर्थ रहने, शासी निकाय का गठन नहीं किया गया है, और यदि ऐसा करना सार्वजनिक हित में हो, ऐसी अवधि के लिए, जो एक समय में छ: मास से अधिक नहीं होगी (कुल मिलाकर अवधि चार वर्ष से अधिक नहीं होगी), एक प्रशासक नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है। प्रशासक, सोसायटी के सभी कर्त्तव्य और कार्य निष्पादित करेगा। वह, चुनाव आयोजित करने, शासी निकाय का गठन करने और साधारण सभा की बैठक बुलाने के लिए आवश्यक कार्रवाई करेगा किन्तु

संलग्नक –III(2) जारी

उसके नियंत्रण से बाहर करणों की वजह से, यदि वह ऐसा करने में समर्थ नहीं रहता तो राज्य सरकार उसकी सिफारिशों के आधार पर सोसायटी को भंग करने का आदेश दे सकती है।

(ii) मध्य प्रदेश (क) रजिस्ट्रार को, यदि वह इस बात से सन्तुष्ट हो कि दस्तावेजों में फेर-बदल अथवा उन्हें नष्ट किए जाने की सम्भावना है, सोसायटी के रिकार्डों, दस्तावेजों को अपने कब्जे में लेने की शक्ति प्राप्त है।

(ख) रजिस्ट्रार अपनी ही पहल पर अथवा सोसायटी के शासी निकाय के बहुमत सदस्यों द्वारा किए गए आवेदन पर, जिनकी संख्या सोसायटी के कुल सदस्यों के 1/3 से कम नहीं हो, या तो अपने आप अथवा उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा, सोसायटी के गठन, कार्यकरण अथवा वित्तीय स्थिति की जाँच करा सकता है।

(ग) राज्य सरकार, राज्य सहाय्यित सोसायटी के किसी शासी निकाय के अतिक्रमण के संबंध में आदेश दे सकती है यदि वह उचित रूप कार्य नहीं कर रही है अथवा ऐसा कार्य करती है जो सोसायटी के हित के विरूद्ध हो, और सोसायटी के मामलों का प्रबंधन करने के लिए, प्रारंभ में अधिकतम दो वर्ष की विनिर्दिष्ट अवधि तक के लिए किसी व्यक्ति को अथवा व्यक्तियों को नियुक्त कर सकती है। किन्तु इस अवधि को राज्य सरकार के विवेक पर समय-समय पर बढ़ाया जा सकता है।

(iii) तमिलनाडु: (क) राज्य सरकार को किसी सोसायटी की समिति का अतिक्रमण का आदेश देने और सोसायटी के मामलों का प्रबंधन करने के लिए किसी व्यक्ति को विशेष आधिकारी के रूप में नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है और जिसकी अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं होगी। इस अवधि को राज्य सरकार के विवेक पर तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है।

(ख) जैसा कि अन्य राज्यों के मामले में है, रजिस्ट्रार को किसी पंजीकृत सोसायटी के गठन, कार्यकरण और वित्तीय स्थितियों की जाँच करने की शक्ति प्राप्त है। ऐसी जाँच करने का आदेश जिला कलेक्टर द्वार प्रस्तुत किए गए आवेदन के आधार पर भी दिया जा सकता है। रजिस्ट्रार को, ऐसी जाँच के परिणाम के आधार पर पंजीकरण को रद्द करने का प्राधिकार है।

(ग) रजिस्ट्रार, पंजीकरण को रद्द करने का भी आदेश दे सकता है यदि कोई सोसायटी कोई अवैध कार्यकलाप आयोजित कर रही है या अपने परिसर के अन्दर किसी अवैध कार्यकलाप की अनुमति देती है। पंजीकरण रद्द हो जाने के बाद, सोसायटी एक विशेष संकल्प द्वारा भंग हो जाएगी और ऐसा करने पर असमर्थ रहने पर, रजिस्ट्रार सोसायटी के समापन के लिए एक समापक नियुक्त कर सकता है।

(घ) रजिस्ट्रार को, अप्रचलित सोसायटियों के नाम रजिस्टर से हटाने की भी शक्ति प्राप्त है।

7. अपराध और दण्ड

सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के विपरीत, लगभग सभी राज्य अधिनियमों में, इन अधिनियमों के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए सोसायटी के पदाधिकारियों और सदस्यों पर अपराध और दण्ड आरोपित करने के संबंध में प्रावधान सम्मिलित हैं।

8. अपील

कुछ राज्यों के अधिनियमों में, जैसे कि तमिलनाडु और मध्य प्रदेश में, रजिस्ट्रार के आदेश के विरूद्ध अपील करने के प्रावधान दिए गए हैं। मध्य प्रदेश में, रजिस्ट्रार के आदेश के विरूद्ध राज्य सरकार से अपील की जा सकती है, अधीनस्थ अधिकारियों के आदेश के विरूद्ध अपील रजिस्ट्रार के पास की जा सकती है। तमिलनाडु में, महानिरीक्षक, पंजीकरण के आदेश के विरूद्ध अपील राज्य सरकार के समक्ष की जा सकती है। किसी अन्य व्यक्ति के आदेशें के मामले में महानिरीक्षक, पंजीकरण के पास अपील की जा सकती है तथा समापक द्वारा किए गए किसी आदेश द्वारा पीड़ित व्यक्ति द्वारा न्यायालय में अपील की जा सकती है।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अगस्त 2008 तक प्रस्तुत रिपोर्टों की सूची

1. प्रथम रिपोर्ट : *सूचना का अधिकार: सुशासन की मास्टर कुंजी*
2. द्वितीय रिपोर्ट : *मानव पूंजी का प्रकटन : हकदारियाँ तथा शासन - एक मामला अध्ययन*
3. तृतीय रिपोर्ट : *संकट प्रबंधन : निराशा से आशा तक*
4. चतुर्थ रिपोर्ट : *शासन में नैतिकता*
5. पाँचवी रिपोर्ट : *सार्वजनिक व्यवस्था - सभी के लिए न्याय .. सभी के लिए शान्ति*
6. छठी रिपोर्ट : *स्थानीय अधिशासन: भविष्य के लिए एक प्रेरणादायक यात्रा*
7. सातवीं रिपोर्ट : *संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण*
8. आठवीं रिपोर्ट : *आतंक से निपटना - न्यायसंगतता द्वारा संरक्षण*